द्रौपदी

अशेत भूमौ सह पाण्डुपुत्रै
पादोपधानीवकृता कुशेषु ।
न तत्र दु खमनसाऽपि तस्या
न चावमेने कुरुपुङ्गवा स्तान् ॥
—महाभारते ।

पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी

द्रौपदी

(पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी का चरित्र)

लेखक —

दिल्ली के साप्ताहिक पत्र "हिन्दी समाचार" के
भूतपूर्व सम्पादक, आनरेबिल राजा सर
रामपाल सिंह साहब बहादुर के० सी०
आई० ई०, सी० आई० ई०, कुर्री-
सुदौली नरेश के प्राइवेट
सेक्रेटरी

पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी।

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी

कलकत्ता

२०१, हरिसन रोड के "नरसिंह प्रेस" में
बाबू रामप्रताप भार्गव द्वारा
मुद्रित।

सन् १९२१ ई०

द्वितीय बार ३००० } { मूल्य २।)



स्वर्गीय श्रीमान् ठाकुर शिवनारायण सिंहजी,
तालुकदार, गौरारास्य, ज़िला रायबरेली।

समर्पण

जिन की दान वारिधारा ने अनेक दुःख तप्त हृदयों को सिञ्चित किया है, जिन के हृदय में करुणा का स्रोत निरन्तर बहा करता है, जिन की अपने स्वर्गीय पति पदों में अविचल श्रद्धा है, उन्हीं श्रीमती

रानी सुजानकुँवरि महोदया,

तालुकेदारिया,

गौरा राज्य, जिला रायबरेली की अनुमति से यह छोटीसी पुस्तिका उन्हीं श्रीमती के स्वर्गीय पति, स्वनाम धन्य

श्रीमान् ठाकुर शिवनारायण सिंहजी

की पवित्र स्मृति में, लेखक द्वारा सादर और सानुराग समर्पित है।

भूमिका

द्रौपदी के चरित की चर्चा अनेक लोगों ने अनेक प्रकार से की है। उसके पञ्चपतित्व के विषय में भिन्न लोगों की भिन्न भिन्न सम्मतियाँ हैं। सुना है, किसी सज्जन ने उसे केवल अर्जुन की ही अर्द्धाङ्गिनी सिद्ध करने की चेष्टा की है। परन्तु हम कुछ भी क्यों न करें, पुरानी बातें जैसी हैं, वैसी ही रहेंगी। कम से कम प्रसिद्धि को कोई नहीं रोक सकता। यदि द्रौपदी के सम्बन्ध में यह प्रसिद्धि मिथ्या है, तोभी इसका निवारण नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिकों की दृष्टि में चन्द्रमा की कालिम कुछ भी हो, पर वह उसकी कलङ्क कालिमा ही रहेगी।

एक श्रीमती ने अपनी जाति के ऊपर होने वाले अत्याचार का वर्णन करते हुए लिखा है—"माता की अनजानी आज्ञा पर द्रौपदी को मिठाई की तरह बाँट लेने वालों की बातें हमें क्य सुनाते हो ?" मैं श्रीमती के दुःख में सहानुभूति प्रकट करता हूँ परन्तु स्मरण रहे, हम सब बातों को अपने ही समय की कसौट पर नहीं कस सकते। उदाहरण के लिये, सती प्रथा की ही बा लीजिये। एक समय इस पर गर्व किया जाता था, किन्तु इस समय यह अमानुषी प्रथा समझी जाती है। प्रत्येक समय क आदर्श एकसा नहीं हो सकता।

इस कहने से मेरा यह आशय नहीं, कि मैं द्रौपदी के समय

पञ्चपतित्व की प्रथा का समर्थन करता हूँ। नहीं, उस
यह बात विधि-विरुद्ध समझी जाती थी और इस पर र
भी हुआ था। मेरी राय में बहुधा जहाँ कोई प्राचीन :
ओर हीन होता हुआ दिखायी देता है, वहाँ दूसरी ओर
की अपेक्षा भी अधिक ऊँचा हो जाता है। अतएव,
श्रीमती एक ओर द्रौपदी के इस अपमान पर क्रुद्ध होतं
दूसरी ओर वे कुन्ती के सम्मान पर गर्व भी कर सकती
भी तो स्त्री ही थीं, जिनकी आज्ञा—और वह भी अन:
यह कठोर कर्म किया गया था। यदि एक ओर पत्नी
यह स्त्री जाति का अपमान था, तो दूसरी ओर माता
उसका सम्मान भी इतना था कि, कदाचित् वर्तमान सम
कल्पना भी नहीं कर सकता।

जो हो, इतना होने पर भी द्रौपदी का चरित आदर्श
जिस योग्यता से अपने कर्तव्य का पालन किया, उस
नहीं की जा सकती। वह सच्ची गृहिणी और सच्ची क्षत्र
हमारी कुल ललनायें उसके चरित से बहुत कुछ सीख स
अतएव उसके चरित का एकत्र समावेश करके पण्डित
नीदत्तजी ने प्रशसनीय कार्य किया है, इसका कहना
आशा है, उनके लिखने का ढङ्ग भी सब को रुचेगा औ
यह परिश्रम सफलता प्राप्त करेगा।

श्रीप्रयाग,)
महामहावारुणी, १९७५) *मैथिलीशर*

पूर्व-कथन ।

किसी भी जाति, देश या समाज की प्रगति के लिये, उसके साहित्य का सर्वाङ्ग पूर्ण होना अत्यन्त आवश्यक है। किसी साहित्य में उपन्यासों, कथा कहानी, गल्पों और आख्यानों की अधिकता होनी कुछ बुरी नहीं—दुनिया में कौनसी ऐसी भाषा है, जिस के साहित्य का अधिकाश इससे नहीं भरा है और दिन दिन अधिकाधिक भरा नहीं जा रहा है? परन्तु जिन लोगों ने अच्छे उद्देश्य को सामने रखकर, कथा के मिप से बहुमूल्य शिक्षा देने तथा उच्चभाव से पाठकों एव पाठिकाओं की मनोवृत्ति को उद्भासित, विकसित एव सुप्रवृत्त करने की सदभिलाषा से उपन्यास, नाटक और कहानियाँ लिखी हैं उन्होंने जितनी लोक जागृति एव सदाचार प्रचार किया और भावुकता के विस्तार द्वारा लोगों में देश-प्रेम विश्व-प्रेम, जाति प्रेम और भगवद्भक्ति का उन्मेष किया है, उतना बडे-बडे वेदान्त शास्त्री न कभी कर सके और न आगे कर सकेंगे। बाबू हरिश्चन्द्र के नाटकों ने, बङ्किम के उपन्यासों ने, द्विजेन्द्र बाबू के दृश्य काव्यों ने, रवीन्द्रबाबू की कहानियों ने, भारतवर्ष की वर्तमान जागृति को जितना

सहारा पहुंचाया है, उतना शायद ही अन्य-विषयों की पुस्तकों से हुआ हो। इसीलिये हम गप्पों और उपन्यासों के प्रचार को—यदि उनका उद्देश्य केवल समय को हत्या और मनोरञ्जन मात्र न हो, तो—साहित्य की उन्नति का कारण समझते हैं। हिन्दी में यदि अन्य भाषाओं के उपन्यासों के अनुवाद मौजूद न होते, तो शायद ही दो चार ऐसे उपन्यास या गल्पग्रन्थ निकलते, जिन्हें हम अकुण्ठित-चित्त से अपने बालकों को पढ़ने के लिये दे सकें अथवा जिन्हें हमारी मा बहनें पढ़कर शिक्षा लाभ कर सकें। यही सोचकर हमने कुछ पुस्तकें महाभारत के आधार पर लिखनी आरम्भ की थीं—उनका आधार पुराण होने पर भी उनको उपन्यास का रूप देकर रोचक बनाने का प्रयत्न किया था। 'पतिव्रता सुनीति' और 'पतिव्रता गान्धारी' नाम की पुस्तकें हमारे इसी प्रयत्न के फल हैं और हमें यह लिखते आनन्द होता है कि, हिन्दी पठित समाज ने हमारे प्रयत्न को प्रशंसा कर, हमें उत्साहित एवं उपकृत किया है। उक्त दोनों पुस्तकें लिखते समय ही हमने विचार किया था कि, द्रौपदी पर कोई बड़ासा चरित्रात्मक निबन्ध लिखेंगे, पर उस सङ्कल्प को कार्य रूप में परिणत करने का अवसर, हम जैसे 'गृह कारज नाना जञ्जाला' के सिवाय रियासत के कामों में फँसे रहने वाले व्यक्ति को, न जाने कब मिलता, परन्तु धर्म परायणा, हिन्दी हितैषिणी श्रीमती रानी सुजानकुँअरि (गौरा-राज्येश्वरी) ने जब 'द्रौपदी' पर एक पुस्तक लिखने का हम से अनुरोध किया, तब तो हमारा सोया हुआ सङ्कल्प मानों जग पड़ा और हमने

द्रौपदी का यह जीवन चरित्र, जैसा कुछ बन पड़ा, लिख कर तैयार कर दिया। द्रौपदी के जन्म के पहले से आरम्भ कर उसके महा प्रस्थान तक का सारा चरित, महाभारत से सङ्कलित कर, इसमें सन्निविष्ट कर दिया गया है।

द्रौपदी आर्य भूमिका रत्न थी, ललना कुल की शिरोमणि थी, हमारे प्राचीन गौरव की प्रकाशमयी विद्युल्लतिका थी। पति-प्रेम, क्षमा, दया, शौर्य आदि सद्गुणों का वह आकर थी। हमारे विचार से तो उसकासा उज्ज्वल चरित्र पुराण इतिहास में अतीव विरल है। भगवती जानकी के समान, इस राजकन्या, राजवधू और वीरमाता ने भी कभी सुख का नाम न जाना। थोड़े दिनों के लिये खाण्डव प्रस्थ में बसायी हुई नगरी के मय निर्मित महलों में भले ही सुख की नींद सोयी हो, परन्तु अपने धर्मभीरु पतियों के धर्म मार्गानुसरण के कारण उसके जीवन का अधिकांश दुःख में ही बीता। सीताजी परमात्मावतार पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की पत्नी, आद्याशक्ति थीं—उनका चरित लोकोत्तर, उनकी लीला मानव-बुद्धि से परे थी—अतएव सोलहों आने सीता का अनुकरण द्रौपदी नहीं कर सकी—पति का अनुगमन किया, आज्ञा मानी, दुःख में साथ दिया, धर्मपर सदा दृढ रही, पर जब कभी साधारण मनुष्योपादान से गठित उस क्षत्राणी को दुःख-शोक का भार असह्य हो उठता, तब जो वीर-दर्प उसके मनमें जाग्रत हो आता, जो क्षात्र तेज उसके अङ्ग अङ्ग में व्याप जाता था, वह भारत के सम्पूर्ण अव पतन के पूर्व मेवाड़ की महीयसी महिलाओं में ही देखा गया, फिर नहीं दिखाई दिया।

द्रौपदी आदर्श पत्नी, आदर्श गृहिणी, आदर्श क्षत्राणी और मान के लिये प्राण को कुछ न समझने वाली आदर्श नारी थी। भगवान् व्यास के इस आदर्श चरित्र को भली भाँति परिस्फुट कर दिखलाना हमारे लिये सम्भव नहीं—उसके लिये लोकोत्तर शक्ति और भारी पुण्य सञ्चय चाहिये, तो भी हमने उसकी अलौकिक छटा दिखलाने का शक्ति भर प्रयत्न किया है। हमने व्यास के पदाङ्क का ही आँख मूँद कर अनुसरण किया है। हमारी द्रौपदी कोई नयी नही, व्यास देव की ही द्रौपदी है। हमने न तो उसके पञ्च पतित्व पर शङ्का की है, न टीका की है और न हम चाहते हैं कि, व्यास भगवान् जो कुछ लिख गये हैं, उस पर अपना कलम-कुल्हाडा चलायें। जैसा कि इसकी भूमिका में कविवर बाबू मैथिली शरणजी ने लिखा है, इस घटना को उस समय के समाज के अनुकूल मान लेना पड़ेगा और जो यथार्थ घटना है, उसको छिपाने से कोई लाभ भी नही। इस एक बात के सिवाय, द्रौपदी के चरित्र में और कोई ऐसी बात नही मिल सकती, जिस पर हिन्दू-भिन्न पाठकों को भ्रू कुञ्चन करने का अवसर मिले। इसके निवारण के लिये भी उसके पूर्वजन्म का वृत्तान्त, माता की आज्ञा का गुरुत्व, पाण्डवों का नियम, उनकी अकपट समहृदयता आदि विषय आगे आ जाते हैं और पाठकों की रही सही ग्लानि को मन से हटा देते हैं।

अस्तु, जैसा कि हमने पहले लिखा है, हमने व्यास की द्रौपदी का वह रूप, जो उन्होंने उसे दिया है, विकृत नहीं किया है।

घटनाओं में भी कोई परिवर्त्तन नहीं किया है। हाँ, इस जीवन-चरित को उपन्यास के ढङ्ग पर लिखा है। एक प्रकार से यह सारे महाभारत का सार है, अतएव उसकी प्राय समस्त प्रधान घटनायें, जिन के साथ द्रौपदी का किञ्चित भी साक्षात् या परोक्ष सम्बन्ध है, इसमें आ गयी हैं। इस लिये यह पुस्तक आबालवृद्ध-वनिता सब के पढ़ने योग्य हो गयी है। महाभारत की परम पुनीत सरस कथा को ही पढ़ने के व्याज से यदि पाठक इसे पढ़ेंगे, तो हमारा सारा श्रम सार्थक हो जायगा। हमने तो शक्ति भर इसे रोचक, शिक्षाप्रद एव स्त्री पुरुष सब के लिये उपयोगी बनाने की चेष्टा की है, पर उसमें हम असफल हुए हैं कि सफल, इसका निर्णय तो आप लोग ही कर सकते हैं।

हम अपने परमस्नेहास्पद अभिन्न मित्र बाबू हरिदासजी को धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने इसका अन्तरङ्ग अलङ्कृत करने में विशेष यत्न और व्यय किया है और ऐसी सजधज से इसे निकाला है, जैसी सजधज से आज तक हिन्दी में बहुत कम पुस्तकें निकली होंगी। इतने चित्र शायद ही किसी हिन्दी पुस्तक में लगे हों।

आरम्भिक भूमिका लिखने के लिये हमारा अनुरोध मानकर, बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त ने हमें जैसा आभारी किया है उसके लिये उन्हें किन शब्दों में धन्यवाद दें, यही समझ में नहीं आता।

कात्यायनीदत्त त्रिवेदी।

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

पहला परिच्छेद ।

दूसरा परिच्छेद ।

तीसरा परिच्छेद ।

चौथा परिच्छेद ।

पाँचवाँ परिच्छेद ।

छठा परिच्छेद ।

सातवाँ परिच्छेद।

आठवाँ परिच्छेद।

नवाँ परिच्छेद।

दसवाँ परिच्छेद।

ग्यारहवाँ परिच्छेद।

बारहवाँ परिच्छेद।

तेरहवाँ परिच्छेद।

चौदहवाँ परिच्छेद।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद।

चित्र-सूची

चित्र

श्री

द्रौपदी

पहला परिच्छेद ।

राजा द्रुपद और ऋषिपुत्र द्रोण ।

प्राचीन समयमें भरद्वाज ऋषि और पाञ्चाल देश के राजा महाराज पृषत में बडी घनिष्ट मित्रता थी। भरद्वाज के पुत्र द्रोण और राजा पृषत के पुत्र द्रुपद भरद्वाज के आश्रम में साथही खेलते और साथ ही पढ़ते थे। इन दोनों में भी परस्पर उतनीही मित्रता हो गई, जितनी उनके पिताओं में थी। कुछ दिनों के बाद राजा पृषतका परलोकवास



द्रौपदी चीर हरण ।

"दुरात्मा दुःशासन ज्यों-ज्यों साड़ी खींचने लगा, त्यों-त्यों वह

चलाना सीखते थे, तब द्रुपद ने द्रोणका बडा सत्कार करने का वादा किया था द्रुपद ने यहाँ तक कहा था कि, हम तुम दोनों मित्र मिल कर अपने राज्य में साथ ही रहेंगे और राज्य भोग करेंगे। द्रोण ने यह बात अपनी स्त्री कृपी से कही और अन्त में उन्हीं की सलाह से वे द्रुपद के पास गये।

द्रुपद के पास जाकर द्रोण ने पुरानी मित्रता का स्मरण कराते हुए कहा —

"हम आप के लडकपन के साथी द्रोण हैं,—क्या आप को स्मरण नहीं है कि, हम और आप पिता के आश्रम में साथ ही पढते और अस्त्र चलाना सीखते थे? उस समय घनिष्ट मित्रता के कारण आपने हमपर जो स्नेह प्रकट किया था, उसे हम अभी तक भूले नहीं। हम आपके साथ अब भी उतना ही और वैसा ही स्नेह करते हैं।"

ऐश्वर्य के मद में मत्त होकर, द्रुपद वे बातें न भूल कर भी भूल से गये थे। राजसुख भोग करने के कारण उनका मिजाज आस्मान पर चढ़ गया था। उन्हें उचित था कि, वे अपने लडकपन के मित्र और वेद पारगामी महर्षि तनय महात्मा द्रोण के चरण छूते और उनका सत्कार करते। पर चरण छूने और सत्कार करने की कौन कहे, द्रुपद ने द्रोण की बातें सुनते ही आँखें लाल कर ली और क्रोध में भौंहें तान कर द्रोण से कहा —

"अरे ब्राह्मण! तुम क्या बकते हो? तुम हमें अपना मित्र कहते हो! यह बात तुम्हारे ऐसे दरिद्र ब्राह्मण के मुह से भली नहीं

हुआ , उनके मरनेपर महाबाहु द्रुपद पाञ्चाल देश के राजा हुए। इधर महर्षि भरद्वाज ने भी शरीर छोडा , और महात्मा द्रोण पिता के उसी आश्रम में रह कर तपस्या करने लगे। धीरे-धीरे उन्होंने वेद और वेदाङ्ग सब कण्ठस्थ कर लिये। कुछ दिनोंके बाद पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से महर्षि शरद्वान् की कन्या कृपी के साथ उन्होंने विवाह किया। कृपी देवी बडी सुशीला थीं , अग्निहोत्र उन्हें बहुत प्रिय था और धर्म में उनकी बडी निष्ठा थी। उनके गर्भ से अश्वत्थामा नामक तेजस्वी पुत्र की उत्पत्ति हुई। महात्मा द्रोण पुत्र होने से बहुत प्रसन्न हुए।

एक दिन अश्वत्थामा बालकों के साथ खेलने गया। वहाँ पर उसने अन्य बालकों को गऊ का दूध पीते देखा, इससे उसकी भी इच्छा दूध पीने की हुई। वह महात्मा द्रोण के पास आया और गऊ के दूध के लिये मचल कर रोने लगा। इससे महात्मा द्रोण को बडा कष्ट हुआ और वे इस आशा से कई जगह बाहर गये कि, उन्हें कोई धर्मात्मा ऐसा मिल जाय, जो उन्हें एक गऊ दे दे पर भाग्य में यह न बदा था, इससे द्रोण को निराश होकर वापस आना पडा। लौट कर उन्होंने देखा, कि अश्वत्थामा को थोडा सा आटा पानी में घोल कर दे दिया गया है और उससे कह दिया गया है कि, यह दूध है उसे ही वह दूध समझ कर पी रहा और आनन्द में कूद रहा है। द्रोण को अपनी इस दरिद्रता पर बडा क्षोभ हुआ। दुःखाग्नि से हृदय जल उठा। उसी समय उनको द्रुपद की याद आई। द्रुपद जब उनके साथ पढते और हथियार

न सुभी और द्रुपद के साथ उनकी मित्रता शत्रुता में परिणत हो गई। द्रोण ने जीमें ठान लिया कि, यदि यह जीवन बना है, तो किसी दिन द्रुपद के इसी राज्य पर अधिकार करके इसका अभिमान चूर करूँगा।

यह सोच कर द्रोण अपने आश्रम को लौट आये और वहाँ से अपने साले कृपाचार्य के पास हस्तिनापुर चले गये। आचार्य कृप हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्रों को अस्त्र शिक्षा देते थे, उन्हीं के साथ द्रोण अज्ञातभावसे रहने लगे। उन्होंने कृपाचार्य से कह दिया कि, वे अभी उनका परिचय किसी को न दें।

कुछ दिनों के बाद उन्होंने एक दिन नगर के बाहर देखा कि, बहुत से बालक एक कुएँ पर जमा हैं। वे कुएँ से किसी वस्तु के निकालने की युक्ति करते हैं, पर उनका वश नहीं चलता। इन्हीं बालकों में राजघराने के भी सब बालक थे। गुली डण्डा खेलते-खेलते, ये इतनी दूर निकल आये थे और संयोगवश उनकी गुली इस कुएँ में गिर पड़ी थी। द्रोण ने अपनी शक्ति, अपनी चातुरी और अपना कौशल दिखाने के लिए,इस अवसर को उपयुक्त समझा और बालकों के पास जाकर उन्होंने हँसकर कहा —

"हे बालको! तुम्हें धिक्कार है, तुम्हारे क्षात्रबल को धिक्कार है और तुम्हारी अस्त्र शिक्षा को भी धिक्कार है। तुमने भरतवंश में जन्म लिया है और तुम एक मामूली काम भी नहीं कर सकते! इस कुएँ से अपनी गुली को बाहर कर लेने की शक्ति भी तुम में नहीं। देखो, हम अपनी यह अँगूठी भी इस कुएँ में डाले देते हैं,

लगती। लडकपन में हमारी तुम्हारी मित्रता भले ही रही हो, पर अब समय ने पलटा खाया है, न अब हम वे द्रुपद हैं और न अब वे बातें। किसी की मित्रता किसी के साथ सदैव एकसी नहीं रहती। अवस्था के अनुसार उसमें परिवर्त्तन हुआ करता है। जिस तरह किसी विद्वान् पण्डित के साथ मूर्ख की मित्रता नहीं हो सकती और जिस तरह किसी शूरवीर, पराक्रमी के साथ साहस हीन नपुंसक की मैत्री असम्भव है, ठीक वही दशा हमारी और तुम्हारी मित्रता की है। हम इस समय पाञ्चाल राज्य के अधिपति हैं और तुम एक दीन ब्राह्मण—भिक्षुक मात्र हो। अब तुम्हें हमारे साथ मित्रता करने की इच्छा न करनी चाहिये। हे ब्राह्मण! जो धन और ज्ञान में समान हों, उन्हीं के साथ मित्रता करना कर्त्तव्य है, समान ही में विवाह सम्बन्ध भी होता है। उच्च का नीच के साथ और नीच का उच्च के साथ न तो विवाह सम्बन्ध ही होना उचित है और न मैत्री भाव ही। जैसे किसी श्रोत्रिय के साथ अश्रोत्रिय की और किसी महारथी के साथ युद्ध कला विहीन मनुष्य की मित्रता नितान्त असम्भव है, वैसे ही एक राजा का सखा एक दरिद्र कभी नहीं हो सकता। फिर तुम पहले की तरह आज भी हमारे साथ मित्रता करने की इच्छा क्यों करते हो?"

द्रुपद की ये बातें सुन कर, महातेजस्वी ब्राह्मण द्रोण क्रोध से जल उठे। उस समय वे चाहते तो द्रुपद को शाप देकर उन्हें उनके इस बुरे व्यवहारका बदला चुका देते, पर द्रोण बडे क्षमा शील थे, वे चुप ही रहे। चुप तो ही रहे, पर उनके हृदय की आग

न वुझी और द्रुपद के साथ उनकी मित्रता शत्रुता में परिणत हो गई। द्रोण ने जीमें ठान लिया कि, यदि यह जीवन बना है, तो किसी दिन द्रुपद के इसी राज्य पर अधिकार करके इसका अभिमान चूर करूँगा।

यह सोच कर द्रोण अपने आश्रम को लौट आये और वहाँ से अपने साले कृपाचार्य के पास हस्तिनापुर चले गये। आचार्य कृप हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्रों को अस्त्र शिक्षा देते थे, उन्हीं के साथ द्रोण अज्ञातभावसे रहने लगे। उन्होंने कृपाचार्य से कह दिया कि, वे अभी उनका परिचय किसी को न दें।

कुछ दिनों के बाद उन्होंने एक दिन नगर के बाहर देखा कि, बहुत से बालक एक कुएँ पर जमा हैं। वे कुएँ से किसी वस्तु के निकालने की युक्ति करते हैं, पर उनका वश नहीं चलता। इन्हीं बालकों में राजघराने के भी सब बालक थे। गुली डण्डा खेलते-खेलते, ये इतनी दूर निकल आये थे और सयोगवश उनकी गुली इस कुएँ में गिर पडी थी। द्रोण ने अपनी शक्ति, अपनी चातुरी और अपना कौशल दिखाने के लिए,इस अवसर को उपयुक्त समझा और बालकों के पास जाकर उन्होंने हँसकर कहा —

"हे बालको! तुम्हें धिक्कार है, तुम्हारे क्षात्रबल को धिक्कार है और तुम्हारी अस्त्र शिक्षा को भी धिक्कार है। तुमने भरतवंश में जन्म लिया है और तुम एक मामूली काम भी नहीं कर सकते! इस कुएँ से अपनी गुली को बाहर कर लेने की शक्ति भी तुम में नहीं। देखो, हम अपनी यह अगूठी भी इस कुएँ में डाले देते हैं

महामति भीष्म ने कहा —

"हे ब्रह्मर्षे! आपने यहाँ पधार कर हम पर बड़ी ही कृपा की है। यह हमारा परम सौभाग्य है कि, हम आपकी चरण सेवा कर सकेंगे। हमारी आपसे विनीत प्रार्थना है कि, आप अब यहीं रहें और कृपा करके इन छोटे छोटे बालकों को अस्त्र-शिक्षा दें। हम सब आपकी पूजा करेंगे और कौरवों का समस्त राज्य आपके अधीन रहेगा। हम लोगोंको आप जो कुछ आज्ञा देंगे, उसका पालन करना हम अपना कर्त्तव्य समझेंगे।"

ब्राह्मण लोग धन के लोभी नहीं होते, धन देने से वे उतने प्रसन्न नहीं होते, जितने कि सत्कार से। भीष्म के सत्कार से द्रोण बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने राजकुमारोंको अस्त्र शिक्षा देना स्वीकार कर लिया।

राजकुमारों के साथ ही साथ अधिरथ के पुत्र कर्ण भी द्रोण से अस्त्र शिक्षा प्राप्त करने लगे। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव—ये पाँचों पाण्डव और दुर्योधन, दुःशासन आदि सौ भाई कौरव, बाण चलाने, गदा युद्ध करने और तलवार चलाने में अपने अपने हाथकी सफाई दिखाने लगे। कुरुवंशी राजकुमारों के आचार्य होने के कारण महात्मा द्रोण, द्रोणाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। कर्ण का अभ्यास भी बाण-विद्या में अच्छा था और अर्जुन का भी। इससे दोनों में कुछ स्पर्द्धा रहने लगी। भीम और दुर्योधन दोनों ही गदा चलाने में प्रवीण थे, इससे वे दोनों भी खिंचे रहते। भीमका स्वभाव कुछ कटुवादी था, वे दुर्योधन इत्यादि से

बातें करते हुए तानेज़नी किया करते, इससे दुर्योधन इत्यादि उनसे औरभी नाराज रहने लगे। यह बात बढ़ते बढ़ते यहाँ तक बढ़ी कि, दुर्योधन पाण्डवों से ही नाराज रहने लगा। कर्ण, अर्जुन की बराबरी के तीरन्दाज थे और अर्जुन से उनकी बनती भी न थी, इसीसे दुर्योधन ने उनको अपना मित्र बना कर अपनी ओर मिला लिया। द्रोणाचार्य के सब शिष्योंमें बाण विद्या में अर्जुन ही सब से बढ़ कर निकले। द्रोणाचार्य ने प्रेम पूर्वक उनको सब करतब सिखला दिये, यहाँ तक कि ब्रह्मशिरा नामक अस्त्र का प्रयोग और संहार भी बतला दिया। अर्जुन के बाण चलाने के कौशल से द्रोणाचार्य कभी कभी प्रसन्न होकर यहाँ तक कह उठते कि, पुत्र! तुम्हारी बराबर अचूक निशाना मारने वाला अब जन्म ही न लेगा।

जब सब राजकुमार अस्त्र शिक्षा प्राप्त कर चुके, तब एक दिन उनसे द्रोणाचार्य ने कहा —"हे शिष्यगण! तुम अब अस्त्र चलाना सीख गये अब हमें गुरुदक्षिणा दो, पर हम गुरुदक्षिणा में वही लेंगे जो कुछ हमें अभीष्ट होगा।"

द्रोणाचार्य की यह बात सुनकर और राजकुमार तो चुप रहे, पर अर्जुन ने कहा —

"गुरो! आपकी जो आज्ञा होगी, हम वही करेंगे और आप जो कुछ भी माँगेंगे, गुरुदक्षिणा में हम आपको वही देंगे। आपकी जो कुछ इच्छा हो, आप निस्सङ्कोच भाव से कहें।"

अर्जुन की यह बात और उनकी उत्साहमयी वाणी सुन कर द्रोणाचाय बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए। उस समय उन्होंने कहा —

"हे अर्जुन ! हम तुमसे और अपने सब शिष्यों से यही गुरु दक्षिणा चाहते हैं कि तुम लोग पाञ्चाल देश के राजा द्रुपद को हरा कर हमारे पास पकड लाओ ।"

गुरु का यह आदेश पाते ही अर्जुन, दुर्योधन, कर्ण इत्यादि वीर पाञ्चाल देश की ओर चल पडे और राजा द्रुपद की राजधानी में पहुँच गये । द्रुपद ने खबर पाते ही अपने भाइयों को साथ लेकर उनका सामना किया । राजा द्रुपद सफेद रथ पर सवार होकर कौरवों को अपने तीखे बाणों से विद्ध करने लगे ; पर महावली कर्ण ने द्रुपद के छक्के छुटा दिये । भीमसेन ने तो उस समय बडा ही पराक्रम दिखलाया , जैसे पशु चरानेवाले लडके पशुओं को डण्डों से पीट कर भगा देते हैं, उसी तरह भीम ने राजा द्रुपद के सैनिकों को गदा की मार से भगा दिया । इस प्रकार अपनी सेना का नाश देखकर दुर्जय राजा द्रुपद को बडा क्रोध आया , उन्होंने रोष में उस समय प्रचण्ड बाणों की वर्षा की । पर अद्भुत धनुर्धारी अर्जुन ने बडी योग्यता से अपने पक्ष की रक्षा की । अन्त में, अर्जुन विजयी हुए और राजा द्रुपद तथा उनके मन्त्री को बन्दी कर के वे अपने गुरु द्रोणाचार्य के पास ले आये ।

समय भी कैसा पलटा खाता है । एक दिन ब्राह्मण द्रोण राजा द्रुपद के यहाँ गये थे और राजा द्रुपद ने उनका तिरस्कार करके कटु वाक्य कहे थे । आज वे ही राजा द्रुपद उन्हीं ब्राह्मण द्रोण के सामने बन्दी हो खडे हैं । आज उनके भाग्य का निपटारा द्रोण ही के हाथ में है ।

द्रोणाचार्य ने द्रुपद को सामने देखकर पुरानी बातें याद करते हुए कहा —

"हे द्रुपदराज ! हमारी आज्ञा से ही हमारे शिष्यों ने तुम्हारे राज्य और तुम्हारी नगरी को मर्दित किया है। अब तुम्हारे जीवन के प्रश्न की मीमांसा भी तुम्हारे विपक्ष वालों ही के हाथ में है। अब तुम बताओ, तुम हमसे मित्रता के बदले में क्या चाहते हो ? उसे हम पूरा करें। हम ब्राह्मण हैं, अपने मित्र की सहायता करना हम अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं।"

फिर द्रोणाचार्य ने हँसकर कहा —

"हे वीर ! तुम अपने प्राणों का भय न करो। तुम्हें दुःखित देखकर हमारा हृदय द्रवित हो रहा है। हम और तुम लडकपन में एक साथ ही आश्रम में खेले हैं। तुम क्षत्रिय होकर भी एक समय यह बात और अपने वादे भूल गये थे। पर हम ब्राह्मण हैं, तनिक ही में क्षमा कर देना हमारे स्वभाव की बात है। हम अब भी तुम्हारे साथ लडकपन वाली मित्रता नही भूले। तुम गुरुतर अपराध कर चुकने पर भी हमारे मित्र हो। हम तुमसे अब भी वही मित्रता चाहते हैं। तुम्हींने हमसे कहा था कि, राजा ही राजा का मित्र हो सकता है, दीन ब्राह्मण नहीं। इसीसे हमने राज्य प्राप्ति की इच्छा की, जिसमें तुम्हारे साथ हमारी मित्रता बनी रहे। इस समय तुम्हारा सब राज्य हमारे हाथ में है। सारे राज्य के अधिपति हम हैं। तुम्हारे अधिकार में कुछ भी नहीं। पर नहीं, यह समय का फेर है, ऐश्वर्य के घेरे में पड कर क्षत्रिय

भले ही मदमत्त हो जावें पर ब्राह्मण ऐश्वर्य पाकर भी प्राय मदमत्त नही होते। कुछ भी हो, हम प्रसन्नता-पूर्वक अपनी ओर से तुम्हें आधा राज्य देने को तैयार हैं। इस राज्य के बीच में होकर गङ्गाजी बहती हैं, गङ्गा के दक्षिण ओर का आधा राज्य तुम्हारा और उत्तर ओर का आधा हमारा रहा। अब हम और तुम बराबर के राजा हैं, इससे आओ, हमारी-तुम्हारी पुरानी दोस्ती फिर नई हो जाय।"

द्रोण ने अपने हृदयकी उदारता का अच्छा परिचय दिया। उन्होंने दिखला दिया कि, कर्त्तव्यनिष्ठ ब्राह्मणों का व्यवहार अपने मित्रों के साथ सदैव ही उदार रहता है।

द्रोणाचार्य की बातें सुन कर द्रुपद ने कहा —

"हे ब्रह्मन्! प्रबल पराक्रान्त महात्मा लोगों का ऐसा ही व्यवहार होना चाहिये, जैसा व्यवहार आपने हमारे साथ किया है। हम आपकी बातें सुन कर बहुत प्रसन्न हुए हैं। आप हमारे अपराध क्षमा करें। हमसे जो कुछ धृष्टता हुई हो, उसे आप भूल जायँ। आज से हम भविष्य में यही चेष्टा करेंगे कि, आप हमसे प्रसन्न रहें।"

द्रुपद की ये बातें सुन कर द्रोणाचार्य बहुत ही सन्तुष्ट हुए। उन्होंने द्रुपद का बन्धन छुडवा दिया और उनका बडा ही सत्कार किया। आधा राज्य देकर, उन्होंने द्रुपद के साथ फिर मित्रता कर ली।

दूसरा परिच्छेद।

धृष्टद्युम्न और द्रौपदी की उत्पत्ति।

द्रोणाचार्य ने द्रुपद के साथ अच्छा व्यवहार किया, उन्हे आधा राज्य दे दिया। पर जिस सम्पूर्ण राज्य पर द्रुपद का शासन था, उसका आधा भाग ही अब उनके अधिकार में रह गया, यह बात द्रुपद को सन्तोषप्रद न हुई। द्रुपद योंही मन ही-मन चिन्ता मे जला करते थे पर जब उन्होंने लोगों को यह कहते सुना कि द्रोणाचार्य ने उनके (द्रुपद के) साथ बहुत ही शिष्ट व्यवहार किया, तो उनका दुःख औरभी बढ़ गया। उन्हें अपने उस व्यवहार पर, जो उन्होंने कुछ दिन पहले द्रोण के साथ किया था, बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

द्रोणाचार्य ने तो द्रुपद के साथ भलाई की, पुरानी बातें भुलाकर मित्रता स्थापित की पर द्रुपद ने एक नया ही चक्र रचा। द्रोणाचार्य के उपकार को भूल कर द्रुपद के दिल में उनसे बदला लेने की आग पैदा हुई। उस प्रतिशोध की आग ने द्रुपद को और भी पागल कर दिया। वे द्रोणाचार्य से बदला लेने की तदबीरें सोचने लगे।

द्रुपद ने सोचा कि, अब हम कमजोर हो गये हैं, राज्य का आधा ही भाग हमारे अधिकारमें है। द्रोण स्वयम् पराक्रमी, रण-

कुशल और अद्वितीय धनुर्धर हैं। भीष्म को छोड कर सारे भारतवर्ष में उनके मुकाबिले का कोई वीर नहीं, पाण्डव और कौरव, उनके शिष्य होने के कारण, उनके नितान्त आज्ञाकारी हैं। इससे उन्हें बल, शौर्य और पराक्रम से हरा देना बहुत ही कठिन काम है। ये सब बातें सोच कर, उन्होंने स्थिर किया कि, वे एक ऐसा यज्ञ करें, जिसके फल से द्रोण-हन्ता पुत्रकी उत्पत्ति हो। अपने इस विचार को उन्होंने दृढ कर लिया।

इसी अभिप्राय से यज्ञ कराने के काम में चतुर ब्राह्मणोंकी खोज में वे आश्रम आश्रम घूमने लगे। वे ब्राह्मणों से यह कहते फिरते कि, उनके कोई पुत्र नहीं है, और रोते। जब कभी अकेले होते, तब द्रोण से बदला लेने की उनकी इच्छा प्रबल हो उठती और उसी शोक में वे आहें भरने लगते। परन्तु जब वे द्रोण के अलौकिक प्रभाव, विनय, विचित्र चरित्र और पराक्रम की बात सोचते, तब उन्हें यही सूझ पडता कि, द्रोण को नीचा दिखाने की कोई भी नरवीर नहीं।

इसके अनन्तर द्रुपद घूमते-घूमते एक दिन गङ्गाजी के किनारे एक आश्रम में पहुँचे। उस आश्रम के रहने वाले सभी ऋषि स्नातक और सभी व्रती थे। वहीं पर याज और उपयाज नामक दो ब्रह्मर्षि भी रहते थे, काश्यप गोत्र में उनका जन्म हुआ था। वे बडे ही शान्त थे और नित्य-प्रति संहिता का पाठ किया करते थे। द्रुपद ने विनीत भावसे उन्हें प्रणाम किया और यह सोचकर कि, बल और बुद्धि में उपयाज श्रेष्ठ हैं, एक समय एकान्त में उनसे कहा —

'हे ब्रह्मन् ! यदि किसी दैवकार्यानुष्ठान द्वारा द्रोणहन्ता पुत्रके लिये आप हमें एक पुत्रेष्टि यज्ञ करा दें, तो हम आपको एक अरब गऊ भेंट करेंगे या आपकी जो कुछ अभिलाषा होगी, पूरी करेंगे। इसमें फर्क न पडेगा।"

महर्षि ने राजा द्रुपद की बात सुन कर कहा कि, हे राजन् ! हम आपकी बात स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

गरज बडा बुरी होती है। स्वार्थ सब कुछ करा लेता है। जिसे किसी काम की लगन लग जाती है, वह अपनी ही धुन में लगा रहता है। महर्षि के इनकार कर देने पर भी द्रुपद वहीं पडे रहे और ब्रह्मर्षि की चरण सेवा करते रहे। द्रुपद ने इसी तरह साल भर बडी भक्ति के साथ ब्रह्मर्षि उपयाज की सेवा की और उन्हें सब तरह प्रसन्न रखा।

साल भर बीत जाने के बाद एक दिन उपयाज ने द्रुपद से कहा —

"महाराज ! एक समय हम और हमारे बडे भाई महर्षि याज एक बडे जङ्गल में चले जा रहे थे। बडे भाई आगे थे और हम पीछे। महर्षि याज ने देखा कि, रास्ते के किनारे पृथ्वी पर एक फल पडा हुआ है। यद्यपि उन्हें यह मालूम न था कि,जिस स्थान पर फल पडा हुआ है वह स्थान पवित्र है अथवा अपवित्र। फिर भी, उन्होंने उस फल को उठा लिया। प्रकृति करीब करीब सदैव ही एकसी रहती है, इससे हमारा अनुमान है कि,जब एक स्थान पर उन्होंने पवित्रता और अपवित्रता का सूक्ष्म विचार नहीं किया, तो

दूसरे स्थान पर भी न करेंगे। यही नहीं, जब गुरुगृह में रह कर हम और वे संहिता का अध्ययन करते थे, तब भी उनकी प्रकृति इसी प्रकार की थी, वे उत्सृष्ट अन्न के भोजन करने में भी घृणा न करते थे। हमारे विचार में तुम उनके पास जाओ, वे तुम्हारे लिये पुत्रेष्टि यज्ञ में दीक्षित होना स्वीकार कर लेंगे।"

महाराज द्रुपद महर्षि उपयाज के कहने से उनके बड़े भाई महर्षि याज के पास गये और उनसे कहा —

"हे विभो! हम आपको आठ अरब गऊ भेंट करेंगे। आप हमारे लिये पुत्रेष्टि यज्ञ करा दें। द्रोण से परास्त होकर, हमने बहुत दुःख झेला है, अब हम आपकी शरण में आये हैं, आप हमारा उपकार करें। ब्राह्मणों में श्रेष्ठ द्रोण ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने में अद्वितीय हैं। अधिक क्या, इस पृथ्वीतल पर क्षत्रियों में भी द्रोण के मुकाबिले का कोई धनुर्धर नहीं। उनके बाण प्राण हरने वाले और अमोघ हैं, वे कभी व्यर्थ नहीं जाते। उन्होंने ब्राह्मण के औरस से अवश्य जन्म लिया है, परन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि, क्षात्र-तेज उनके तेज के सामने कोई चीज नहीं। हमारा तो विचार है कि, वे परशुराम के समान ही बाण विद्या जानते हैं और उन्हीं की भाँति क्षत्रियों का नाश करना भी उनको प्रिय है। उनका अस्त्रबल बड़ा ही घोर और भयङ्कर है। नरलोक में किसी की सामर्थ्य नहीं, जो उनके अस्त्रों को सहन कर सके। जैसे आहुति पाकर अग्निदेव प्रचण्ड होकर तेजोमयी मूर्त्ति धारण कर लेते हैं, उसी भाँति द्रोण भी ब्रह्मतेजसे पवित्र होकर रणक्षेत्र



यज्ञ वेदीसे द्रौपदी की उत्पत्ति।

"थोड़ी ही देर के बाद यज्ञ वेदी से ही राजकुमारी का जन्म हुआ।"

शरीर में दिव्य गन्ध धारण किये हैं। हम ऐसी अवस्था में सन्तान के लिये आपके निकट उपस्थित नहीं हो सकती। आप हमारे कहने से कृपा करके थोडी देर रुक जायें।

याज ने कहा,—"हे रानी! तुम आओ या न आओ पर याज का दिया हुआ और उपयाज के मन्त्रों से पवित्र हव्य विफल होने का नहीं, उससे अवश्य ही अभीष्ट पूर्ण होगा। यह कहकर उन्होंने प्रज्वलित अग्नि में आहुति दे दी।

आहुति देते ही अग्नि के मध्य से देवतुल्य एक राजकुमार उत्पन्न हुए। जलती हुई अग्नि शिखा के समान उनका वर्ण था सुन्दर किरीट से उनका मस्तक सजा हुआ था ढाल, तलवार, धनुर्बाण उनके हाथ में थे और वे वीरों के तेज से भूषित थे।

उन्हें देखते ही सब पाञ्चालवासी प्रसन्न हो उठे और आनन्द मनाने लगे। उसी समय आकाशवाणी हुई कि, ये यशस्वी कुमार द्रोण का वध करने के लिये उत्पन्न हुए हैं। ये पाञ्चाल निवासियों का कल्याण करेंगे।

थोडी ही देरके बाद यज्ञवेदी से ही एक राजकुमारी का जन्म हुआ। संसार-भर में लोगों ने वैसा सुन्दर रूप न देखा था। उनका वर्ण कृष्ण था दोनों आँखे कमल की तरह सुन्दर और बडी बड़ी, काले और घुँघराले बाल, भौंहें देखनेमें प्रिय और उनके शरीर से कमल के फूल की सी सुगन्धि निकल कर, एक कोस तक व्याप्त होती थी। उनकी मूर्त्ति देखने से यही जान पड़ता था कि, किसी देवी ने मानुषी मूर्त्ति धारण की है।

राजकुमारी की उत्पत्ति के थोड़ी ही देर बाद आकाशवाणी हुई कि, "यह कन्या कुछ दिनों में समस्त क्षत्रिय कुल का संहार करके एक बड़े भारी देव-कार्य का साधन बनेगी और कौरवों के अन्त करण में इसके कारण सदैव ही आशङ्का बनी रहेगी।"

उसी समय राजा द्रुपद की रानी, सन्तति प्राप्ति की इच्छा से, महर्षि के पास आई और कन्या एव पुत्र को देख कर कहा —

"हे महर्षे! हमें छोड़कर और किसी को ये अपनी माता न समझें।"

महर्षि ने रानी को प्रसन्न करने की इच्छा से कहा, "तथास्तु" अर्थात् ऐसा ही हो।

ब्राह्मणों ने राजा द्रुपद को आशीर्वाद देकर कहा, कि "महाराज! यह राजकुमार बहुत ही पराक्रमी है और द्युम्न से इसकी उत्पत्ति हुई है, इससे इसका नाम होगा "धृष्टद्युम्न।" फिर उन्होंने कन्या की ओर देख कर कहा कि, यह कृष्णवर्णा है, इससे इसका नाम होगा "कृष्णा।"

राजा द्रुपद की कन्या होने के कारण, इसी राजकुमारी कृष्णा का नाम आगे चलकर द्रौपदी पड़ा। द्रुपद यज्ञसेन नाम से अभिहित थे, इसलिये कृष्णा को कोई-कोई याज्ञ-सेनी के नाम से भी आहूत करने लगे। पाञ्चाल देशकी राजकुमारी होने के कारण उसका नाम पाञ्चाली भी पड़ा।

धृष्टद्युम्न और द्रौपदी की उत्पत्ति की बात और आकाशवाणी की कथा महात्मा द्रोण ने भी सुनी। पर उन्होंने कुछ भी चिन्ता

न की और यह सोच कर कि,भाग्य बडी जबरदस्त वस्तु है, भाग्य से अन्यथा कुछ नहीं हो सकता और भाग्य का लिखा कौन टाल सकता है, वे निश्चिन्तही बने रहे। उन्हें इससे तनिक भी शङ्का न हुई, प्रत्युत उन्होंने इस अवसर पर द्रुपद के यहाँ जाना और उन्हें बधाई देना भला समझा। वे राजा द्रुपद के यहाँ आये और राजकुमार धृष्टद्युम्न को अस्त्र-शिक्षा देने के लिये अपने साथ लिवा ले गये। उन्होंने अपनी कीर्त्ति बढाने और अपना यश चिरस्थायी करने के लिये धृष्टद्युम्न को जी लगाकर हथियार चलाना सिखाया। जिससे अपनी मृत्यु का भय हो, उसको हथियार चलाने की शिक्षा देना साधारण मनुष्य का काम नहीं। ऐसा उदारतापूर्ण कार्य करके द्रोण ने सचमुच महात्मा होने का परिचय दिया। महात्मा द्रोण की यह उदारता सोने के अक्षरों में लिखी जाने योग्य है। द्रोण के चरित्रवान् होने की बात द्रुपद के मन में सदैव ही अङ्कित रहती थी, इसीसे वे द्रोण को अजेय समझते थे। सच है, चरित्रबल सब बलों में श्रेष्ठ है। द्रोण के चरित्र पर ही दृढ विश्वास करके अपने द्रोणहन्ता पुत्र धृष्टद्युम्न को द्रुपद ने द्रोण के हाथ में सौंप दिया।

तीसरा परिच्छेद ।

द्रौपदीका स्वयम्वर ।

धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्रों में, गुरु द्रोणाचार्य से अस्त्र-शिक्षा प्राप्त करने के समय, जो वैमनस्य उत्पन्न हुआ था, वह बढ़ता ही गया। पाण्डवों का पराक्रम और उनके तेज के शुभ लक्षण देख कर धृतराष्ट्र भी डरे कि, कहीं हमारे पुत्रों को पाण्डव लोग निकाल बाहर न कर दें और स्वयम् राज्य-पर अधिकार न कर लें। इसके लिये उन्होंने राजनीतिकुशल मन्त्री कणिक से सलाह ली। कणिक विद्वान् ब्राह्मण था, उसकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी, राजनीति की चालें उसे खूब आती थीं कूटनीति का तो वह विलक्षण ज्ञाता था। कणिक ने धृतराष्ट्र को कूटनीति का ही आश्रय लेने की सलाह दी। यही राय दुर्योधन की भी थी। फिर क्या था, चालें चली जाने लगीं।

दुर्योधन का सिखाया हुआ एक धूर्त्त मन्त्री एक दिन राज सभामें आकर कहने लगा —

"वारणावत बहुत बड़ा नगर है। वहाँ के दृश्य बड़े ही मनोहर हैं। वहाँ पर भगवान् भवानीपति शङ्कर की मूर्त्तिका दर्शन करने के लिये अनेक देशों से बहुत से लोग आया करते हैं।"

धृतराष्ट्र ने इस कथन की पुष्टि की। पहले ही से मधे हुए इधर उधर के लोगों ने भी इसका समर्थन किया। तब धृतराष्ट्र ने कहा कि, हे युधिष्ठिर! यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम सब जाकर कुछ दिन वही सुख से रह सकते हो।

युधिष्ठिर पहले तो कुछ सोचते रहे, पर अन्त में वे वारणावत जाने पर राजी हो गये।

इधर दुर्योधन ने पुरोचन को बुलाया। पुरोचन के जिम्मे राज्य की इमारतें बनवाने का काम था। उसे बहँका कर दुर्योधन ने वारणावत में एक लाक्षागृह बनवाने का इन्तज़ाम पक्का कर लिया कि, पाण्डव लोग उसी में ले जाकर ठहराये जायँ और थोडे दिनों के बाद उसमें आग लगा दी जाय। लाख, तेल, इत्यादि चीजे मिला कर प्लास्टर बना कर जो घर बनाया जायगा, वह जल्दी ही भक से जल उठेगा और पाण्डव लोग अपनी रक्षा न कर सकेंगे। दुर्योधन ने यह सब इन्तज़ाम अपने विश्वासपात्र आदमियों के द्वारा किया और पुरोचन को समझा दिया कि, किसी को इस बात की कानो कान खबर न हो।

मनुष्य कितना ही कोई काम छिपा कर करे, पर पता लगाने वाले लोग भी गजब का काम करते हैं, वे पता लगा ही लेते हैं। विदुर को इस बात का पता लग गया और उन्होंने इशारे में युधिष्ठिर को समझा भी दिया। थोडे ही दिनों के बाद, उन्होंने अपने विश्वासपात्र बेलदारों के द्वारा वारणावत के उस घर में एक सुरङ्ग भी बनवा दी, जो एक निर्जन जङ्गल में जा कर निकलती थी।

पाण्डव लोग शुभ मुहूर्त्त में वारणावत गये। उसी घर में रहे, पर होशियार रहे। वहाँ पर वे शिकार खेलते और सन्ध्या समय घर लौट आते। इसी तरह कुछ दिन बीत गये। एक दिन विदुर का सन्देशा आया कि, अब शीघ्र ही इस मकान मे आग लगाई जानेवाली है। यह खबर पाकर पाण्डवों ने स्वयम् उस घर में आग लगा दी और सुरङ्ग की राह से बाहर निकल गये। दैव-योग से उसी दिन एक स्त्री अपने पाँच पुत्रों समेत आकर उस घर में भोजन कर के वहीं सो रही थी। वह उसी आग में जल मरी। आग शान्त होने पर लोगों ने यही समझा कि, अपनी माता समेत पाँचों पाण्डव जल मरे। अधम पुरोचन भी उसी घरमें रहता था—उसके पाप का प्रतिफल उसे मिल गया, वह भी वहीं जल मरा।

गाँव के रहने वालों ने यह खबर हस्तिनापुर को भेज दी। धृतराष्ट्र ने इस पर बड़ा शोक मनाया और पाण्डवों तथा उनकी माता के मृतकर्म करने की आज्ञा दी।

इधर पाण्डवों का मृत सम्कार हो रहा था, उधर वे लोग अपनी माता के साथ जङ्गल जङ्गल घूमते अपने बुरे दिन बिता रहे थे। मत्स्य, त्रिगर्त, पाञ्चाल, कीचक इत्यादि देशों के बनों को पार करते हुए वे लोग आगे बढ़े। एक दिन दैवसंयोग से मार्ग में व्यासदेव से उनको भेट हो गयी। पाण्डवों की दुर्दशा देख कर उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। उन्हें समझा बुझा कर वे एक चक्रा नगरी को ले आये और एक ब्राह्मण के घर में रख कर चले गये।

धृतराष्ट्र ने इस कथन की पुष्टि की। पहले ही से मधे हुए इधर उधर के लोगों ने भी इसका समर्थन किया। तब धृतराष्ट्र ने कहा कि, हे युधिष्ठिर ! यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम सब जाकर कुछ दिन वहीं सुख से रह सकते हो।

युधिष्ठिर पहले तो कुछ सोचते रहे, पर अन्त में वे वारणावत जाने पर राज़ी हो गये।

इधर दुर्योधन ने पुरोचन को बुलाया। पुरोचन के ज़िम्मे राज्य की इमारतें बनवाने का काम था। उसे बहॅका कर दुर्योधन ने वारणावत में एक लाक्षागृह बनवाने का इन्तज़ाम पक्का कर लिया कि, पाण्डव लोग उसी में ले जाकर ठहराये जायँ और थोड़े दिनों के बाद उसमें आग लगा दी जाय। लाख, तेल, इत्यादि चीजें मिला कर मसाला बना कर जो घर बनाया जायगा, वह जल्दी ही भक से जल उठेगा और पाण्डव लोग अपनी रक्षा न कर सकेंगे। दुर्योधन ने यह सब इन्तज़ाम अपने विश्वासपात्र आदमियों के द्वारा किया और पुरोचन को समझा दिया कि, किसी को इस बात की कानो-कान ख़बर न हो।

मनुष्य कितना ही कोई काम छिपा कर करे, पर पता लगाने वाले लोग भी गज़ब का काम करते हैं, वे पता लगा ही लेते हैं। विदुर को इस बात का पता लग गया और उन्होंने इशारे में युधिष्ठिर को समझा भी दिया। थोड़े ही दिनों के बाद, उन्होंने अपने विश्वासपात्र बेलदारों के द्वारा वारणावत के उस घर में एक सुरङ्ग भी बनवा दी, जो एक निर्जन जङ्गल में जा कर निकलती थी।

पाण्डव लोग शुभ मुहूर्त्त में वारणावत गये। उसी घर में रहे, पर होशियार रहे। वहाँ पर वे शिकार खेलते और सन्ध्या समय घर लौट आते। इसी तरह कुछ दिन बीत गये। एक दिन विदुर का सन्देशा आया कि, अब शीघ्र ही इस मकान में आग लगाई जानेवाली है। यह खबर पाकर पाण्डवों ने स्वयम् उस घर में आग लगा दी और सुरङ्ग की राह से बाहर निकल गये। दैव योग से उसी दिन एक स्त्री अपने पाँच पुत्रों समेत आकर उस घर में भोजन कर के वहीं सो रही थी। वह उसी आग में जल मरी। आग शान्त होने पर लोगों ने यही समझा कि, अपनी माता समेत पाँचों पाण्डव जल मरे। अधम पुरोचन भी उसी घरमें रहता था—उसके पाप का प्रतिफल उसे मिल गया, वह भी वहीं जल मरा।

गाँव के रहने वालों ने यह खबर हस्तिनापुर को भेज दी। धृतराष्ट्र ने इस पर बड़ा शोक मनाया और पाण्डवों तथा उनकी माता के मृतकर्म करने की आज्ञा दी।

इधर पाण्डवों का मृत संस्कार हो रहा था, उधर वे लोग अपनी माता के साथ जङ्गल जङ्गल घूमते अपने बुरे दिन बिता रहे थे। मत्स्य, त्रिगर्त, पाञ्चाल, कीचक इत्यादि देशों के वनों को पार करते हुए वे लोग आगे बढ़े। एक दिन दैवसयोग से मार्ग में व्यासदेव से उनको भेंट हो गयी। पाण्डवों की दुर्दशा देख कर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्हें समझा बुझा कर वे एक चक्रा-नगरी को ले आये और एक ब्राह्मण के घर में रख कर चले गये।

कुछ दिन तक पाण्डव लोग एकचक्रा नगरी में उसी ब्राह्मण के यहाँ रहे। एक दिन अनेक देश देशान्तरों से घूमता हुआ एक ब्राह्मण वहीं आकर ठहरा। युधिष्ठिर आदि ने उसका बड़ा सत्कार किया। उसीके द्वारा उन्हें सवाद मिला कि, द्रोणहन्ता पुत्र प्राप्त करने के लिये राजा द्रुपद ने एक पुत्रेष्टि यज्ञ किया था। उसी यज्ञ-वेदी से एक कन्या की भी उत्पत्ति हुई थी। उसी द्रुपदनन्दिनी कन्या कृष्णा का स्वयवर होने वाला है।

ब्राह्मण ने कहा,—"कृष्णा महारूपवती है, उसकी सुन्दरता कही नहीं जा सकती। उसे देखने से यही मालूम होता है कि, किसी देव रमणीने इस धरातल पर अवतार लिया है। वह जैसी रूपवती है, वैसी ही सुशीला भी है, रूप और शील दोनों एक साथ ही उसका समाश्रय करते हैं। उनके स्वयवर की तैयारियाँ बड़े ठाट बाट मे हो रही हैं।"

ब्राह्मण के मुख से इस तरह की बातें सुनकर पाण्डवों का चित्त चञ्चल हो उठा। पर वे वेश बदल कर रहते थे, इससे वे चुप हो रहे।

कुन्ती ने कहा —

"पुत्र! यहाँ पर रहते हुए हमें बहुत दिन हो गये। एक ही जगह रहने से तबियत ऊब सी गयी है। अब चलो, पाञ्चाल देश ही की ओर चलें, वहाँ पर तुम लोगों को ब्राह्मण-देवता की बताई हुई बातें आँखों देखने को मिलेंगी।"

इसी समय महर्षि व्यासदेव भी वहाँ आ गये। कुन्ती ने उनसे

भी अपनी इच्छा प्रकट की। वे सहमत हो गये और उन्होंने पाण्डव लोगों को यही सलाह दी कि, पाञ्चाल नगर तुम्हें अवश्य जाना चाहिये।

माता की इच्छा देखकर, व्यासदेव की आज्ञा पाकर और अपनी भी रुचि का ध्यान करके पाण्डव लोग द्रुपद के देश की ओर चल पड़े। उस समय वे अपने असली रूप को छिपाये ब्राह्मणों का वेश धारण किये हुए थे। माता कुन्ती साथ थीं। रास्ते में उन्हें कुछ और ब्राह्मण मिले। वे भी पाञ्चाल देश को जा रहे थे। ब्राह्मणों ने पाण्डवों को भी अपने ही समान ब्राह्मण समझ कर कहा —

"तुम लोग हमारे साथ पाञ्चाल देश को चलो। वहाँ पर एक विचित्र उत्सव होने वाला है। राजा द्रुपद की कमलनयनी कन्या, कृष्णा, का स्वयंवर है। सुनते हैं, कृष्णा बड़ी रूपवती है, वह यज्ञ की वेदी से उत्पन्न हुई और अनुपम गुणोंवाली है। बड़े बड़े प्रतापी नृपतिगण वहाँ आवेंगे। हम भी वहीं स्वयंवर देखने जाते हैं। देखें, राजकुमारी किस भाग्यशाली के गले में जयमाल डालती है।"

युधिष्ठिर इत्यादि पाण्डव तो पाञ्चालदेश जा ही रहे थे। संयोग से वे ब्राह्मण भी उन्हें मिल गये। उन्हींके साथ ही साथ चलने में उन्हें, यह सुभीता हो गया कि, किसी से मार्ग पूछने की आवश्यकता न रही।

पाञ्चाल देश पहुँच कर पाण्डवों ने पहले तो स्वयंवर का स्थान देखा। फिर देश देशान्तर से आये हुए नृपतिगण जिन स्थानों में

ठहरे थे, वे स्थान देखे। फिर नगर देख कर एक कुम्हार के घर में अपनी माता समेत जा ठहरे।

राजा द्रुपद का प्रण था कि, हम अपनी कन्या का विवाह उसी धनुर्धारी के साथ करेंगे, जो हमारे निश्चित लक्ष्य को विद्ध कर देगा। पर निश्चित लक्ष्य ऐसा वैसा न था, जिसे साधारण तीरन्दाजों के तीर बींध देते। लक्ष्य वेधने के लिये जो धनुष बनवाया गया था, उसे झुका कर प्रत्यञ्चा चढाना ही कठिन काम था, फिर लक्ष्य बींधने की बात का क्या ठिकाना! किस की ताब थी, जो आकाश-यन्त्र में लटकते और हिलते हुए निशाने को बींध दे।

एक ओर, द्रौपदी की सुन्दरता की चर्चा इस प्रकार फैल चुकी थी कि, लोग सोचते थे— शायद् भारतवर्ष में द्रौपदी की बराबर सुन्दरी रमणी नहीं। दूसरी ओर, राजा द्रुपद् के प्रण की बात भी इतनी प्रसिद्ध हो चली थी कि, अधिक लोग तो उसकी पूर्त्ति असम्भव ही मानते थे। पर द्रौपदी के रूप की जीत हुई। राजा लोग द्रौपदी के पाने की इच्छा न छोड सके।

दुर्योधन, विकर्ण, दु शासन इत्यादि महाबली पराक्रमी कौरव और उनके साथ सुप्रसिद्ध धनुर्द्धर कर्ण, गान्धार-राज शकुनि, द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा और भोजराज इत्यादि, यदुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और उनके साथ महात्मा बलराम, पराक्रमी वीर सात्यकि, उद्धव, अक्रूर इत्यादि द्रौपदी का स्वयंवर देखने आये।

स्वयंवर के मैदान में राजा लोगों की भीड थी। दुर्योधन का राजसी ठाट उनके कुरुराज होने की गवाही दे रहा था। इधर कर्ण

का चमकता हुआ चेहरा और ऊँचा ललाट अलग ही उनके तेज की ख्याति कर रहा था। श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव की मण्डली सब से न्यारी थी। शिशुपाल, जरासन्ध, शल्य इत्यादि नृपतिगण भी ठाट बाट में कम न थे। वहीं एक कोने में ब्राह्मणों के साथ साथ वीर पाण्डव भी खड़े थे। जैसे बदली के भीतर छिपे हुए सूर्य का तेज छिपा नहीं रहता, उसी प्रकार अर्जुन का तेज भी छिप न सका। श्रीकृष्ण इस बात को ताड़ गये और अर्जुन को वहीं आया जान कर वे बहुत प्रसन्न हुए। श्रीकृष्ण ने यह बात बलदेव को बतलाई, वे भी उन्हें देख कर बड़े प्रसन्न हुए। वहाँ पर आये हुए अन्य नृपतियों को द्रौपदी ही द्रौपदी सूझ पड़ती थी, उन्हें और किसी की क्या परवा! इसीसे पाण्डवों को और कोई पहचान न सका।

नगर से मिला हुआ, उत्तर ओर, स्वयंवर का मैदान एक चौरस और समतल भूमि पर था। सभास्थल के चारों ओर दीवारें बनी और खाइयाँ खोदी गयी थीं। दीवारों में तोरण और वन्दन वार सुशोभित हो रहे थे। प्रवेश करने के लिये उन दीवारों में बड़े बड़े दरवाजे बनाये गये थे। वे भी खूब सुसज्जित थे। उस भूमि में सुगन्धि युक्त जल का छिड़काव किया गया था। जगह जगह पर बैठने के लिये बहुमूल्य आसन पड़े थे। दर्शकों और आये हुए नृपतियों के मनोरञ्जन के लिये कहीं गाना हो रहा था, कहीं बाजा बज रहा था और कहीं पर और ही कुछ तमाशा हो रहा था।

राजा लोग सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और अलङ्कार पहने सभा में आये और आसनों में सब से ऊपर वाली कतार में बैठ कर एक दूसरे को स्पर्द्धा की दृष्टि से देखने लगे। मध्य श्रेणी वाले और नगरनिवासी लोग भी अपने योग्य स्थानों पर बैठ गये।

स्वयंवर का शुभ मुहूर्त आ गया। राजा द्रुपद के पुरोहित ने अग्नि को तृप्त करने के लिये आहुति दी और ब्राह्मण लोग स्वस्ति वाचन करने लगे। स्वस्ति वाचन समाप्त होते ही बाजा बजना बन्द हो गया। सभा स्थल में सन्नाटा छा गया। राजकुमारी द्रौपदी इसी समय अपने भाई धृष्टद्युम्न के साथ सुनहरी जयमाला लिये हुए रङ्गभूमि में पधारी।

राजकुमार धृष्टद्युम्न सब नृपतियों को सम्बोधित करते हुए गम्भीर स्वर से बोले —

"हे समागत नरेन्द्रवर्ग! आप लोग सुनें। लक्ष्य आपके सामने है और धनुष-बाण भी। जो कोई इस आकाश यन्त्र के बीचों बीच के सूराख से पाँच बाण चलाकर निशाना बींध लेगा, हमारी बहिन कृष्णा, कुल शील रूप और लावण्य-सम्पन्न उसी महात्मा की सहधर्मिणी बनेगी। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।"

इसके बाद धृष्टद्युम्न ने द्रौपदी से कहा —

"बहिन! देखो कुरुराज दुर्योधन, अङ्गराज कर्ण के साथ तुम्हारे ही पाने की अभिलाषा से इस स्वयंवर में आये हैं। गान्धार राजकुमार शकुनि, वृहद्बल, महावीर अश्वत्थामा और भोजराज भी इसी हेतु पधारे हैं। ये ही नहीं, पत्तनाधिपति मद्रराज और उनके

वीर पुत्र शल्य, सिन्धुराज जयद्रथ, चेदिदेशाधिपति शिशुपाल, यदुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण और बलराम इत्यादि भी इस स्थल की शोभा बढ़ा रहे हैं। इन वीरों में से जो कोई भी निशाने को बींध ले, तुम उसी के गले में जयमाल डालना।"

इसके अनन्तर ही नृपतिगण अपना अपना पराक्रम दिखाने लगे। पर बेकार! निशाना बींधने की कौन कहे, वे धनुष को उठा भी न सके। इससे वे लोग बहुत लज्जित हुए। उनके चेहरे सूख गये और उन्हों ने द्रौपदी की आशा छोड़ दी।

कुरुराज दुर्योधन भी धनुष के समीप तक आये, पर वे भी धनुष उठा कर चढ़ा न सके। उन्हें लौटते देखकर कर्ण में अदम्य उत्साह हो आया। वे झपट कर धनुष के पास जा पहुँचे। पहुँचते पहुँचते उन्होंने बड़ा पराक्रम दिखलाया। उस धनुष को उन्होंने उठा लिया, उसे झुका दिया और उस पर प्रत्यञ्चा भी चढ़ा दी। उधर दुर्योधन अपने मित्र की प्रशंसा करने लगे, उन्होंने कर्ण को औरभी उत्साहित किया। कुरुराज के मुँह से निकले हुए प्रशंसा शब्दों को सुनकर कर्ण औरभी पुलकित हुए। उन्हों ने बाण लेकर निशाना मारने की तैयारी की। पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर इससे बहुत घबराये। श्रीकृष्ण भी व्याकुल हो उठे। वे कर्ण का पराक्रम जानते थे। उन्हें यह भी विश्वास था कि, कर्ण अचूक निशाना मारने वाले हैं।

पर श्रीकृष्ण बड़े चतुर थे। वे चिल्ला उठे, "कर्ण का पालन कुरुराज के सारथि अधिरथ ने किया है। वे तो सूतवंश से सम्बन्ध रखते हैं।"

कृष्ण की हाँ में हाँ मिलाने वाले लोग भी चिल्ला उठे।

कर्ण के हाथ से अगर बाण निकल गया होता, तो वह अवश्य ही निशाना बींध कर लौटता, पर कर्ण इस कोलाहल को सुनने के लिये कुछ रुक से गये।

उसी समय उन्हों ने द्रौपदी को यह कहते हुए सुना,—"मैं सूत पुत्र के साथ विवाह न करूंगी।"

कर्ण बड़े अभिमानी थे। उन्हें उस समय क्रोध पूर्ण हँसी आई और धनुष बाण को उन्हों ने पृथ्वी पर फेंक दिया।

इसके बाद शिशुपाल, जरासन्ध और शल्य निशाना बींधने के लिये तैयार हुए, पर बाण चलाने के पहले ही वे घुटनों के बल गिर पड़े और लज्जित होकर अपने आसन पर आ बैठे।

इस तरह नृपतियों को लौटते हुए देख कर कुन्ती के पुत्र अर्जुन ने बाण चलानेका विचार किया। वे ब्राह्मणों की मण्डली में खड़े थे, वहाँ से निकल कर उन्होंने धनुष की ओर बढ़ने की इच्छा की। वे उस समय ब्राह्मण-वेष को भूल से गये, क्षात्र तेज उनके चेहरे पर दमकने लगा। द्रौपदी को देखकर वे औरभी उत्साहित हो गये। इसी उत्साह में वे धनुष के पास जा खड़े हुए।

इससे ब्राह्मणों में बड़ा कोलाहल मच गया। वे अपना मृगचर्म हिलाते हुए चिल्लाने लगे। कोई अर्जुन की इस बात से प्रसन्न हो कर उनकी प्रशंसा करने लगा, कोई उन्हें बुरा कहने लगा और कोई चिल्ला कर 'शाबास! शाबास!!' कह कर उन्हें उत्साहित करने लगा। किसी किसी ने कहा —

"जिस काम को शल्य सरीखे बड़े बड़े धनुर्द्धर राजा नहीं कर सके, उसे एक ब्राह्मणकुमार, जिसने शायद भली भाँति बाण चलाना भी न सीखा हो, कैसे कर सकेगा? यह नौजवान चाहे गर्व से हो, चाहे राजकुमारी पाने के मोह से हो अथवा लालच ही से हो—क्योंकि ब्राह्मण स्वभाव से ही लालची होते हैं– आगा पीछा न सोच कर, ऐसे बड़े काम में हाथ डाल रहा है। अगर यह कामयाब न हुआ, तो इसकी हँसी न होगी, बल्कि क्षत्रियों के सामने समस्त ब्राह्मणों को लज्जित होना पड़ेगा, इसमें सन्देह नहीं; इससे इसे रोकना ही चाहिये।'

किसी किसी ने कहा —

"इसमें हँसी की बात ही कौन-सी है? क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों पर क्यों हँसेंगे? क्षत्रियों ने ही कौनसी करतूत कर दिखायी है? किसी का भी निशाना बींधा न बिंधा।

किसी किसी ने कहा —

"देखते नहीं हो? ऐसे समाज में बड़े बड़े वीरों के सामने एक दुष्कर कार्य करने के लिये कमर कस कर तैयार हो जाना मामूली बात नहीं। इस ब्राह्मण युवक में उत्साह है। इसका चेहरा इसके तेज की बात स्पष्ट किये देता है। इसकी सिंह की सी चाल साफ कहे देती है कि, यह अद्वितीय पुरुष है। यह जरूर ही सफल होगा।"

किसी-किसी ने कहा —

"ऐसा काम ही कौन है, जिसे ब्राह्मण न कर सकें। ब्राह्मण

शरीरसे दुबले पतले भले ही रहें, पर तेज तो उनका जबर्दस्त होता है। देखो, परशुराम ने क्षत्रियों के छक्के छुटा दिये। महर्षि अगस्त ने ब्रह्म-तेज ही के सहारे समुद्र को पी लिया। इससे यह ब्राह्मण कुमार यदि इस धनुष को चढ़ाकर इस निशाने को बींध दे, तो इसमें आश्चर्य ही कौनसा? ब्राह्मणों को तो इस समय यही उचित है कि, वे इसे उत्साहित करें।"

तब सब ब्राह्मणों ने कहा, "साधु! साधु!!"

धनुष के पास जाकर अर्जुन थोडी देर तक तो अचल पर्वत की तरह खडे रहे। इसके बाद उन्हों ने मन ही मन अपने इष्टदेव शङ्कर को प्रणाम किया और अपने प्यारे मित्र वासुदेव श्रीकृष्ण को याद कर के धनुष उठा लिया, उस पर प्रत्यञ्चा चढा दी और पाँच बाण ले कर चट निशाना बींध दिया।

अर्जुन के इस कार्य से ब्राह्मण लोग बहुत प्रसन्न हुए। वे अपने-अपने कमण्डलु हिलाकर अर्जुन को आशीर्वाद देने लगे।

कृष्णा द्रौपदी ने देखा कि, जिस वीर ने निशाना बींधा है, वह सुन्दरता में भी किसी से कम नहीं, पराक्रम और कौशल की बात का तो वह प्रत्यक्ष प्रमाण ही दे चुका है कि, शल्य इत्यादि धनुर्द्धर भी जिस निशाने को न बींध सके, उसे उसने बात की बात में बींध दिया। फिर क्या था, द्रौपदी ने आकर अर्जुन के गले में जयमाला पहना दी।



द्रौपदी का अर्जुन को जयमाल देना ।

"द्रौपदी ने आकर गले में जयमाला पहना दी ।"

(पृष्ठ २

चौथा परिच्छेद ।

द्रौपदी के लिये युद्ध ।

राजा द्रुपद इस बात से बहुत ही पुलकित हुए कि, उनका प्रण रह गया और एक वीर ने निशाना वींध दिया। वे उस वीर के फुरतीलेपन से खुश होकर कन्यादान की तैयारी करने लगे। निशाना वींध जाने की बात बड़ी जल्दी चारों ओर फैल गई। अपने भाइयों के साथ अर्जुन स्वयंवर मण्डप से बाहर निकले। द्रौपदी भी उनके पीछे पीछे बाहर निकली।

ब्राह्मण लोग तो अर्जुन की जीत अपनी आँखों देख कर बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि अर्जुन उस समय ब्राह्मण वेश में थे। ब्राह्मणों के लिये इससे बढ़कर प्रसन्नता का अवसर और क्या होता कि, जिस काम को बड़े बड़े क्षत्रिय धनुर्द्धर पूरा न कर सके, उसमें एक ब्राह्मण कुमार को सफलता हुई। पर क्षत्रिय राजाओं को उस ब्राह्मण कुमार की यह विजय बहुत खटकी। उन सब ने आपस में सलाह कर के कहा —

"राजा द्रुपद इस समय बड़ा अनुचित काम कर रहे हैं। उन्होंने हम लोगों का अपमान किया। स्वयंवर का न्योता देकर हमें बुलाया और अब हमारा अनादर करते हैं। क्या देवताओं सरीखे

सुन्दर इतने क्षत्रिय-राजकुमारों में कोई भी द्रुपद की कन्या के योग्य नहीं, जो राजा द्रुपद क्षत्रिय-कन्या को ब्राह्मण के हाथ में सौंपते हैं? इनकी बुद्धि मारी गयी है और यद्यपि ये आज तक सम्मान के योग्य समझे जाते थे पर इस समय जो काम ये कर रहे हैं, उससे किसी एक क्षत्रिय के नहीं, बल्कि, सारी क्षत्रिय-जाति के माथे पर कलङ्क का टीका लगता है। उनका यह अपराध कभी क्षमा के योग्य नहीं है। हम लोगों का कर्तव्य है कि, हम उन्हें इसका दण्ड दें।"

किसी किसी ने कहा —

"निस्सन्देह द्रुपद की यह भूल है। शास्त्र में स्वयंवर की चाल केवल क्षत्रियों के लिये लिखी है, ब्राह्मण को जयमाल पाने का कोई अधिकार नहीं है। जो राजा शास्त्र की रीति का उल्लङ्घन करे, उसका वध कर डालना ही ठीक है, इससे हम लोग इस नीच राजा और इसके नीच पुत्र को अवश्य ही मार डालेंगे। फिर यह राजकन्या यदि हम लोगों में से किसी को पसन्द कर ले, तब तो ठीक ही है, नहीं तो, इसे भी अग्नि में झोंक दें और अपने अपने देश को लौट चलें।"

यह कहकर हजारों क्रोधान्ध नृपति, राजा द्रुपद की ओर झपटे। इनसे वे बहुत डरे, पर अर्जुन और भीमसेन ने उनसे कहा कि, घबड़ाने की कोई बात नहीं है। यह कह कर ही भीमसेन ने तो पास ही का एक वृक्ष उखाड़ लिया और उसकी पत्तियाँ और छोटी छोटी टहनियाँ इधर-उधर तोड़ कर फेंक दी, उससे

ही उन्हों ने गदा का काम लिया और शत्रुओं की ओर झपटे। अर्जुन ने भी जिस धनुष से निशाना बींधा था, उसे हाथ में लेकर विकराल बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। अब क्या था, उसी स्वयंवर-वेदी के पास ही तुमुल कोलाहल और भीषण युद्ध होने लगा।

ब्राह्मण लोगों ने देखा कि, क्षत्रिय राजा ब्राह्मणकुमारों के साथ अन्याय कर रहे हैं। यह देख कर उन लोगों को बडा बुरा लगा। उनके हृदयों में अपने जातिवालों के साथ सहानुभूति का भाव उत्पन्न हो उठा। वे लोग अर्जुन की सहायता करने को तैयार हो गये। अपने-अपने कमण्डलु हिलाकर वे कहने लगे —

"डरने की कोई बात नहीं, हम लोग तुम्हारे साथ हैं, हम लोग शत्रु का मुकाबला कर के युद्ध करेंगे।"

यह सुन कर अर्जुन ने, कुछ मुसकरा कर, इनकी सहानुभूति के बदले में कृतज्ञता प्रकाश करते हुए कहा —

"आप लोग एक तरफ खडे होकर यह दृश्य देखिये। जैसे मन्त्र जाननेवाला मन्त्र के द्वारा बडे जहरीले साँप का विष तनिक सी देर मे उतार देता है, उसी तरह अपने पैने बाणों से हम इन मदमत्तों के नशे का विष बडी जल्दी उतार देंगे।'

अर्जुन इस तरह कह ही रहे थे कि, कर्ण ने उन पर तीखे बाणों की झडी लगा दी। उधर शल्य और भीमसेन में भयानक युद्ध होने लगा।

कर्ण अद्वितीय धनुर्द्धर थे। बाण चलाने में उस समय उनका कौशल बढा चढा था। अर्जुन ने मन ही मन कर्ण की वीरता

स्वीकार की और प्रकाश्य रूप में उन्होंने कर्ण के बाणों का जवाब देते हुए कहा —

"वीर! तुमने जो हम पर बाण-वर्षा की है उसी का तुम्हें प्रतिफल देते हैं, अब होशियार रहो।"

कर्ण भी मन-ही मन अर्जुन की प्रशंसा करते हुए, क्रोधान्ध हो कर युद्ध करने लगे। उन्हों ने अर्जुन के बडे बडे तीखे बाणों को बीच ही में काट दिया। इससे कर्ण के साथी राजा कर्ण को उत्साहित करने के लिये उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

पर तनिक ही देर में अर्जुन ने अपने बाणों से कर्ण को खूब ही छकाया। तब कर्ण ने कहा —

"हे ब्राह्मण! तुम्हारी भुजाओं का पराक्रम, तुम्हारे बाण चलाने का कौशल और समर-भूमि में तुम्हारा धैर्य देखकर हम बडे प्रसन्न हुए हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! जान पडता है कि, तुम साक्षात् धनुर्वेद हो, मनुष्य का रूप धारण कर के इस समय यहाँ पधारे हो, नहीं तो हमारे बाणों की चोट तुम कभी न सह सकते। मेरे क्रुद्ध होने पर इन्द्र और पाण्डुपुत्र अर्जुन को छोडकर और कोई समरस्थल में मेरे सामने नहीं टिक सकता।"

अर्जुन ने उत्तर में कहा —

"हे कर्ण! तुम हमें धनुर्वेद समझते हो, यह तुम्हारी भूल है! हम ब्राह्मण हैं, अपने गुरु से ब्रह्मास्त्र और इन्द्रास्त्र चलाना हमने सीखा है। आज तुम को पराजित करने के लिये ही हम युद्ध-क्षेत्र में आये हैं।"

कर्ण ने मन-ही मन समझ लिया कि, इस वीर से उनका वश न चलेगा, इसने उन्हों ने दुर्जय ब्रह्म तेज की श्रेष्ठता स्वीकार कर के युद्ध करना छोड दिया।

दूसरी ओर वल-विद्या सम्पन्न एव युद्धकला में प्रवीण भीमसेन और शल्य मल्लयुद्ध कर रहे थे। उनमें घूँसों और ठोकरों-की मार हो रही थी। थोडी ही देर के बाद भीमने शल्य को जमीन पर गिरा दिया, पर उनके प्राण नही लिये।

राजा लोगों ने जब देखा कि, कर्ण और शल्य दोनो पराक्रमी वीर रणक्षेत्र में उन ब्राह्मणकुमारों का मुकावला न कर सके, तब वे बहुत डरे।उन्हों ने मन ही मन सोचा कि, महावली परशुराम, वीरशिरोमणि द्रोणाचार्य और अर्जुन को छोड कर कर्ण के साथ युद्ध करने वाला इस ससार में और कोई न था, पर इस वीर ने तो कर्ण के भी छक्के छुटा दिये। गदायुद्ध के कौशल में प्रवीण महात्मा वलराम, पाण्डु-पुत्र भीम और महाराज दुर्योधन को छोड कर मल्ल युद्ध में शल्य ने किसी की श्रेष्ठता स्वीकार नही की, पर इस समय वे भी हार गये, इससे अब इन ब्राह्मणों को जीतने की आशा करना वेकार है।

यह सोच समझ कर राजा लोग कहने लगे —

"शास्त्र में लिखा है कि, ब्राह्मण अगणित अपराध करने पर भी क्षमा के योग्य है। इससे हम लोगों को उचित है कि, अब इन ब्राह्मणों से युद्ध न करें। पर यदि ये अपनी ओर से ही युद्ध करने की इच्छा करेंगे, तो युद्ध होगा।"

कृष्ण बड़े राजनीतिज्ञ थे। वे दूर से यह सब तमाशा देख रहे थे। उन को निश्चय हो गया कि, अर्जुन और भीम को छोड़ कर सचमुच ही और कोई वीर कर्ण और शल्य का वार नहीं सह सकता। उनका विश्वास पक्का हो गया कि, ये अर्जुन और भीम ही हैं। राजा लोगों की बातें भी कृष्ण सुन रहे थे, उनकी बातों से कृष्ण ने ताड़ लिया कि, मौक़ा अच्छा है, राजा लोग भी युद्ध से उकता गये हैं, इस समय बीच बचाव हो जायगा। यह सोच कर उन्हों ने कहा —

"नरेशगण! इन ब्राह्मणकुमारों से लड़ना बेकार है। निशाना बींध कर जिस वीर ने राजकुमारी को पाया है, वह धर्मपूर्वक उसे पाने का अधिकारी है, इससे आप लोग शान्त हों—अब युद्ध करने की ज़रूरत नहीं।'

सब ने कृष्ण की समयोचित बात मान ली और युद्ध छोड़ कर अपने अपने घर को प्रस्थान किया। ब्राह्मण लोगों ने कहा —

"आज इस महा स्वयंवर में क्षत्रियों के मुक़ाबले ब्राह्मणों की जीत हुई और पाञ्चाली का विवाह एक वीर ब्राह्मणकुमार के साथ होगा। यह परम सन्तोष की बात है।"

यही बात इतर लोगों ने भी जानी।

पाँचवाँ परिच्छेद ।

द्रौपदी के विवाह का निर्णय ।

अपने पुत्रों को प्राणों से भी अधिक प्यार करने वाली कुन्ती देवी, इधर घर में बैठी हुई उनके वापस लौटने की बाट जोह रही थीं। वे अपने मन में भाँति-भाँति के अनिष्टों की शङ्का कर रही थीं। वे कभी सोचतीं कि, कहीं मेरे पुत्र धृतराष्ट्र के पुत्रों द्वारा रचे हुए किसी जाल में तो नहीं फँस गये और कभी सोचतीं कि निशाचरों और दुष्प्रकृति मायावियों द्वारा उन्हें कोई कष्ट तो नहीं पहुँचा। पर थोड़ी ही देर के बाद पाण्डव लोग द्रौपदी को साथ लिये हुए आ उपस्थित हुए। उन्हों ने दरवाज़े से ही माता से प्रसन्नतापूर्वक कहा —

"मात ! आज भिक्षा में यह मिली है।"

कुन्ती ने द्रौपदी को देखा न था। पाण्डवों ने द्रौपदी की ही ओर इङ्गित कर के यह बात कही थी। कुन्ती ने बिना यह जाने कि जो वस्तु भिक्षा में मिली है वह क्या है, घर के भीतर ही से कहा —

"हे पुत्र ! जो कुछ भिक्षा में मिला है, सब लोग मिल कर उसे भोग करो।"

कुन्ती ने यह कह तो दिया, पर सामने तत्क्षण ही द्रौपदी को देखकर और उसका परिचय पाकर, वह बड़े विस्मय में पड़

गई । उन्हें अपने कहे हुए वाक्यों पर पश्चात्ताप हुआ । उन्होंने उस समय युधिष्ठिर से कहा —

"हे पुत्र ! मुझे यह न मालूम था कि, तुम क्या वस्तु लाये हो। अब याज्ञसनी द्रुपदनन्दिनी को देखकर और अपनी कही हुई बात का ध्यान कर के, मुझे दुःख हो रहा है। इससे अब वह काम करो, जिस से मेरी बात भी न जाय और पाञ्चाल राजपुत्री को अधर्म भी स्पर्श न करे।"

महात्मा युधिष्ठिर माता की बात सुन कर थोडी देर तक तो कुछ सोचते रहे। फिर उन्हो ने अपनी माता को आश्वासन देते हुए, अपने भाई अर्जुन से कहा —

"हे अर्जुन ! तुम्हीं ने स्वयंवर में निशाना बींध कर द्रुपद-कुमारी को प्राप्त किया है, इससे तुम्हीं इनके साथ विवाह करने के अधिकारी हो। इसी में तुम्हारी और द्रुपदनन्दिनी की शोभा है। तुम अग्नि को साक्षी देकर विधि-पूर्वक इनके साथ विवाह करो।"

अर्जुन जितने वीर थे, उतने ही समझदार भी थे। उन्हों ने कहा —

"नरनाथ ! हमें अधर्म में लिप्त न कीजिये। साधु-विगर्हित काम हम से न होगा। आप सब से बडे हैं ; पहिले आप का, फिर महाबाहु भीमसेन का, फिर हमारा और इसके पीछे आयुष्मान नकुल और सहदेव का विवाह होना उचित है। भाई भीमसेन हम, चिरञ्जीवी नकुल सहदेव और ये राजकुमारी सब आप के ... हैं। आप की सेवा करने में ही हम सब की शोभा है।

इसमे आप सोच-विचार कर ऐसी वात करें, जिस से यश और धर्म की वृद्धि हो और पाञ्चालेश्वर महाराज द्रुपद का हितसाधन हो। आप इस वात का विश्वास रखें कि, हम- लोग आप के दासानुदास और आज्ञाकारी हैं—आप की आज्ञा का हम पूर्ण रूप से पालन करेंगे।"

युधिष्ठिर बडे समझदार थे। वे धर्म की मूर्ति और नीति-शास्त्र के पण्डित थे। उन्होंने सोचा कि, कहीं कुतर्क न खडा हो जाय और किसी एक के साथ द्रौपदी का विवाह होने से कही भाइयों में वैमनस्य का अङ्कुर न उग पडे। इससे उन्हों ने कहा —

"हम पाँचों भाइयों में जितना पारस्परिक स्नेह और प्रेम है, उसके अनुसार हमें यही उचित प्रतीत होता है कि, द्रोपदी हम सब की भार्या हो।'

इतनी ही वात होने पाई थी कि, अपने बडे भाई वलराम जी के साथ कृष्ण वहाँ पहुँचे, उन्होंने अपना परिचय देकर पहिले तो युधिष्ठिर को और पीछे कुन्ती को प्रणाम करके चरण छुए। पाण्डव लोग कृष्ण और बलदेव से मिलकर वहुत प्रसन्न हुए।

युधिष्ठिर ने कृष्ण से कहा —

"वासुदेव! एक तो हम वेश वदले हुए हैं, दूसरे इस स्थान में गुप्तवास करते हैं। तुमने हमें क्योंकर जाना?"

कृष्ण ने कहा —

"राजन्! आग छिपी रहने पर भी, सहज ही में प्रकट हो जाती है। पाण्डवों को छोड कर इस पृथ्वी-तल पर ऐसा कौन पुरुष है,

वीरश्रेष्ठ अर्जुन हैं। नहीं तो, कर्ण इत्यादि वीरों के छक्के कौन छुडाता ?"

यह सुनकर राजा द्रुपद को सन्तोष हुआ। उन्हों ने अपने पुरोहित को उसी कुम्हार के घर भेजा और कहा कि, जाकर उन वीरों से कहो कि, वे अपना स्पष्ट परिचय दें। यदि वे महाबाहु पाण्डु के पुत्र हुए, तो सचमुच मुझे अपार आनन्द मिलेगा।

पुरोहित ने जाकर उनसे कहा —

"हे वीर! राजा द्रुपद आप का स्पष्ट परिचय जानना चाहते हैं। उनके हृदय में न जाने बार-बार यह क्यों आ रहा है कि, उनके निश्चित लक्ष्य को अर्जुन को छोड कर और कोई बींध ही नहीं सकता। राजा पाण्डु में और राजा द्रुपद में घनिष्ट मित्रता थी, इससे उनकी यह उत्कट अभिलाषा थी कि, उनकी कन्या का विवाह महापराक्रमी अर्जुन के ही साथ हो। यदि सचमुच ऐसा ही हुआ हो, तो वे इसे अपना सौभाग्य समझेंगे। इससे आप अपने कुलशील और जाति का स्पष्ट परिचय देकर, राजा द्रुपद की शङ्का मेटिये।"

पुरोहित की ये बातें सुन कर और उसका विधिवत् सत्कार करके महाराज युधिष्ठिर ने कहा —

"विप्रदेव! महाराज द्रुपद व्यर्थ की चिन्ता करते हैं। उनकी प्रतिज्ञा तो यही थी कि, जो वीर उनके निश्चित लक्ष्य को बींध देगा, उसी के साथ वे अपनी राजकुमारी का विवाह करेंगे। हमारे ने उस लक्ष्य को बींध कर न्याय पूर्वक ही राजकुमारी को

पाया है। अब कुल शील और जाति का स्पष्ट परिचय पूछने का उन्हें अधिकार ही क्या है? इससे आप उनसे कहिये कि, वे अब बेकार चिन्ता छोड दें। हाँ, इस राजकुमारी के लक्षण बडे भले हैं, इससे शायद राजा द्रुपद की इच्छा पूरी हो जाय।"

महाराज युधिष्ठिर पुरोहित देवता से इस तरह कह ही रहे थे कि, राजा द्रुपद का भेजा हुआ एक और दूत आ पहुँचा। उसने कहा—

"महाराज द्रुपद ने राजकुमारी को ब्याह देने की इच्छा से आप को बुलाया है। सुन्दर-सुन्दर घोडों वाले रथ आप की सवारी के लिये उन्होंने भेजे हैं। इस से कृपा करके आप वहाँ चलें; वहीं शीलगुणवती कृष्णा का विवाह होगा।"

महाराज युधिष्ठिर ने यह सुन कर पुरोहित को आदर-पूर्वक विदा कर दिया। फिर कुन्ती और द्रौपदी को एक रथ पर सवार करा के, स्वयम् अन्य भाइयों के साथ दूसरे रथों पर सवार होकर राजा द्रुपद के महलों की ओर रवाना हुए।

कुन्ती ने द्रौपदी के साथ अन्तःपुर में प्रवेश किया और पाँचों भाई राजदरबार में आये। वहाँ राजा द्रुपद ने उनके आदर सत्कार का समुचित प्रबन्ध किया। उनके आते ही राजा द्रुपद ने उन को बहुतसी चीजें भेंट कीं। पर पाण्डवों ने और चीजें नहीं लीं; सिर्फ लडाई में काम आने वाली वस्तुएँ लीं। यह देखकर सब को विश्वास हो गया कि, वे अवश्य ही क्षत्रिय हैं।

इस के बाद पाण्डव लोग घर के भीतर गये और बहुमूल्य

आसनों पर सङ्कोच छोड़कर जा बैठे। स्वच्छ कपड़े पहने हुए दास दासियों और भोजन बनाने वालों ने सोने के थालों में राजाओं के योग्य भोजन सामग्री परोस कर उन को तृप्त किया।

यद्यपि राजा द्रुपद का यह विश्वास उत्तरोत्तर दृढ़ हो चुका था कि, ये लोग क्षत्रिय वंश सम्भूत महाप्रतापी वीर पाण्डु के पुत्र हैं। फिर भी अपना भ्रम निवारण करने के लिये उन्हों ने युधिष्ठिर को बुलाकर शास्त्र विधि के अनुसार विवाह कर देने की अभिलाषा प्रकट करते हुए युधिष्ठिर से पूछा —

"कृपा करके यह बतलाइये कि, आप ब्राह्मण हैं अथवा क्षत्रिय, या किसी और वर्ण को आप ने अपने जन्म द्वारा समलङ्कृत किया है। हे परन्तप! आप यह बात स्पष्ट स्पष्ट बतला दें। सत्यका आदर करना महापुरुषों का प्रधान कर्तव्य है। कर्तव्य-निष्ठ लोग अपने अभीष्ट के सफल होने में बाधा पड़ने की सम्भावना जान कर भी सत्य ही बोलते हैं, मिथ्या बातों को वे सदैव ही दूषित समझते हैं। हे शत्रुनाशन! आपके मुँह से यथार्थ बात सुन कर हम विधि पूर्वक विवाह का उद्योग करेंगे।"

युधिष्ठिर ने कहा —

"आप प्रसन्न हों। घबराने की कोई बात नहीं। आप का मनोरथ पूर्ण हुआ है। हम लोग क्षत्रिय हैं। महात्मा पाण्डु हमारे पिता और शीलसम्पन्ना कुन्ती देवी हमारी माता हैं। हम अपने भाइयों में सब से बड़े हैं। हमारा नाम युधिष्ठिर है। हमारे भाइयों हम से छोटे भीमसेन और उन से छोटे अर्जुन हैं। अर्जुन ही ने

स्वयंवर में लक्ष्य बींध कर आप की कन्या को पाया है। इन से भी छोटे हमारे दो सौतेले भाई हैं, उन का नाम नकुल और सहदेव है। हे महाराज! अब आप अपना दुःख दूर करें।'

राजा द्रुपद युधिष्ठिर की ये बातें सुन कर, आनन्द-निमग्न हो गये। आनन्द के समावेश में थोडी देर तक उन्हें बोलने की शक्ति ही न रही। पर थोडी देर के बाद आनन्द के वेग को रोक कर उन्हों ने युधिष्ठिर से उन के वनवास इत्यादि की सब बातें पूछी। युधिष्ठिर ने क्रम पूर्वक सब बातें बतला दीं। उन्हें सुनकर राजा द्रुपद बार बार धृतराष्ट्र की निन्दा करते रहे और पाण्डवों को उन के बाप दादे का राज्य वापस दिलाने के लिये सहायता देने का वचन दिया। फिर सब के सामने राजा द्रुपद ने युधिष्ठिर से कहा —

"आज शुभ दिन है, इस से द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ हो जाना चाहिये।"

युधिष्ठिर बोले —

"राजन्! हमारा भी विवाह होना है। हम सब से बडे हैं। बिना हमारा विवाह हुए अर्जुन कैसे ब्याहे जा सकते हैं?"

द्रुपद ने उत्तर दिया —अच्छा, तुम्हीं द्रौपदी का पाणिग्रहण करो। या और किसी कन्या को पसन्द किया हो, तो बतलाओ।"

तब युधिष्ठिर कहने लगे —

"राजन्! हमारी माता यह आज्ञा दे चुकी हैं कि, द्रौपदी हम सब की स्त्री बने। हमारा विवाह नहीं हुआ और भीम भी क्वारे

ही हैं। यह सच है कि, स्वयंवर में अर्जुन ने द्रौपदी को पाया है; पर हमारे भाइयों में परस्पर इतना स्नेह है कि, कोई अच्छी वस्तु मिलने पर हम सब मिल कर उस का भोग करते हैं। यह नियम बहुत दिनों से चला आता है और इसे हम किसी तरह भी टाल न सकेंगे। द्रौपदी धर्म पूर्वक हम सब की पत्नी होगी, अग्नि को साक्षी देकर हम सब का विवाह द्रौपदी के साथ कर दीजिये।"

द्रुपद ने कहा —

"हे कुरुश्रेष्ठ! आप के मुँह से ऐसी बातें सुनकर हमें सचमुच ही बड़ा आश्चर्य हुआ है। हमारी समझ में नहीं आता कि आप यह क्या कह रहे हैं। एक पुरुष के कई पत्नियों का होना तो ठीक ही है, पर एक ही स्त्री कई पुरुषों की भार्या बने, यह आज तक न देखा गया है न सुना। आप स्वभाव के पवित्र और धर्म क्रिया में निष्ठ हैं, आप को भूलकर भी ऐसी बात जबान पर न लानी चाहिये। लोकाचार और वेद के विरुद्ध कर्म करना आप सरीखे धर्मात्माओं को शोभा नहीं देता।

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया —

"महाराज! धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है। धर्म की गति तो हम कुछ भी नहीं जानते। हाँ, हमारे पूर्वजों ने जो आचार-विचार हमारे लिये नियत कर दिये हैं, हम लोग उन्हीं का पालन करते आते हैं। हमारे मुँह से कभी असत्य बात निकल नहीं सकती और अधर्म हमें स्पर्श भी नहीं कर सकता, इसका हमें दृढ़ विश्वास है। विशेष करके जब हमारी माता इसके लिये आज्ञा दे चुकी

हैं, तो इस में कोई आपत्ति नहीं। आप इसके लिये तनिक भी शङ्का न करें, यह बात सनातनधर्म के अनुकूल ही है, प्रतिकूल नहीं। अब आप विवाह का अनुष्ठान करने की तैयारी करें।"

युधिष्ठिर ने बडी चतुरता के साथ उत्तर दिया, पर उनकी बातें राजा द्रुपद के मन में न बैठीं। वे थोडी देर तक तो सोचते रहे, पर जब किसी भाँति भी उनका हृदय युधिष्ठिर की बातें स्वीकृत करने के लिये तैयार न हुआ, तब अवसर टाल देने के विचार से उन्हों ने युधिष्ठिर से कहा —

"अच्छा, कल आप अपनी माता और चिरञ्जीवी धृष्टद्युम्न के साथ सलाह कर के इस विषय में जो कुछ निर्धारित करेंगे, हम वही करेंगे।"

इस तरह की बातें हो ही रही थीं कि, सयोग से महात्मा व्यासदेव आ पहुँचे। उन्हें देखते ही सब लोग उठ खडे हुए। यथाविधि पूजित होकर व्यासदेव सोने के सिंहासन पर बैठ गये।

थोडी देर के बाद राजा द्रुपद ने कहा —

"भगवन्! इस समय एक बडा गहन प्रश्न है, उसका निर्णय अब आप ही कर दें। कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर कहते हैं कि, राजकुमारी द्रौपदी का विवाह पाँचों पाण्डवों के साथ होना चाहिये। वे इसे धर्म सङ्गत बतलाते हैं और मेरा विचार है कि, यह निरा अधर्म है। जो बात लोकाचार के विरुद्ध हो और वेद विहित भी न हो, मेरी समझ में वह सर्वथा अधर्म है। हे द्विजोत्तम! यह कहीं नहीं देखा सुना कि, एक स्त्री कई पुरुषों की पत्नी बनी हो। यह प्राचीन पुरुषों

का आचरित धर्म नहीं और आजकल के गुणवान् लोग भी इसे धर्म न मानेंगे। इस से मेरी बुद्धि चक्कर में पड़ी है कि, मैं अब क्या करूँ! इस विषय में मुझे बड़ा सन्देह है।"

धृष्टद्युम्न नई उमर के थे। जवानी का जोश उनके चेहरे से फूट फूटकर टपक रहा था। धर्मराज युधिष्ठिर की बात का वे मन ही मन प्रतिवाद कर रहे थे। इस समय वे अधिक चुप न रह सके, बोले,—

"हे तपोधन! ज्येष्ठ, सुशील सदाचार सम्पन्न बड़ा भाई, छोटे भाई की स्त्री के साथ कैसे सहवास करेगा? और छोटा भाई मातृ तुल्य अपनी भौजाई के साथ कैसे रहेगा? हम मानते हैं कि, धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है और धर्माधर्म का विचार करना हमारे लिये कठिन समस्या है, पर कुछ भी हो, धर्मराज युधिष्ठिर की बात तो किसी तरह भी हमारे मन में नहीं बैठती और हमारी बहिन कृष्णा पाँच पुरुषों की पत्नी बने, इस बात का हम कभी अनुमोदन न कर सकेंगे।"

युधिष्ठिर ने कहा —

"ब्रह्मन्! हमारे मुख से कभी असत्य बात नहीं निकल सकती और मन में अधर्म का प्रवेश नहीं हो सकता। अन्तरात्मा की सत्यता पर हमारा दृढ विश्वास है। इस से हमारा यह भी विश्वास है कि, यदि हमारे पाँचों भाइयों के साथ द्रौपदी का विवाह होना अधर्म होता, तो यह बात ही हमारे मन में न आती। पुराणों में हम ने सुना है कि, धर्मपरायणा जटिला नाम की एक कन्या ने

जिन्हों ने गौतम वंश में जन्म ग्रहण किया था, सात ऋषियों के साथ विवाह किया था। यही नहीं, वाक्षी नामक एक मुनिकन्या प्रचेता नामक दस भाइयों के साथ व्याही जा चुकी है। पण्डित लोगों ने यह भी कहा है कि वडे लोग जो कुछ आज्ञा दें, वह सदैव धर्म तुल्य माननीय है। माता से वढ कर और कौन वडा हो सकता है? उन की आज्ञा भी हमें मिल चुकी है।"

कुन्ती देवी वहीं मौजूद थीं। उन्हों ने कहा —

"धर्मात्मा युधिष्ठिर ने सच कहा है। जब द्रौपदी को लेकर ये लोग पहुँचे और इन्हों ने मुझ से कहा कि, माता आज यह भिक्षा मिली है, मैंने द्रौपदी को विना देखे ही अवश्य यह कह दिया है कि जो कुछ मिला हो, पाँचों भाई मिल कर उस का उपभोग करो। हे द्विजश्रेष्ठ! इस से आप से मेरी प्रार्थना है कि, अब आप ऐसी युक्ति करें, जिस से मेरी बात झूठी न हो।"

व्यासदेव बोले —

"भद्रे! तुम्हारे शङ्कित होने की कोई बात नहीं। तुम ने जो कुछ कहा है, वह सनातन धर्म के प्रतिकूल नहीं। तुम चिन्ता न करो।"

फिर व्यासदेव ने राजा द्रुपद से कहा —

"पाञ्चालनरेश! हम इसका गूढ तत्त्व सब के सामने न कहेंगे—यह बात हम आप से अकेले में वतलावेंगे। इस समय इतना कहना ही यथेष्ट है कि, धर्मराज युधिष्ठिर ने जो बात कही है, वह सर्वथा न्यायसङ्गत है।"

छठा परिच्छेद।

द्रौपदी और पाण्डवों के पूर्वजन्म की कथा।

व्यासदेव ने राजा द्रुपद से कहा कि, इस संसार में प्राण धारियों की लीलाओं का पूर्व जन्म से बड़ा सम्बन्ध रहता है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह भी प्रतीत होता है कि, इस जन्म के प्रेम और ईर्षा इत्यादि के भाव भी पूर्व-जन्मकृत होते हैं। कहीं कहीं अचानक लोग प्रेम सूत्र में बँध जाते हैं और उन में घनिष्ठ स्नेह हो जाता है और कहीं कहीं विद्वेष की वह आग भड़क उठती है कि, उसका बुझाना कठिन हो जाता है। इस प्रकार की आकस्मिक घटनाएँ देखकर इस बात को मानना पड़ता है कि, अपने पूर्वजन्म में किये हुए शुभ अथवा अशुभ कर्मों का फल इस जन्म में अवश्य मिलता है। द्रौपदी का पाँचों पाण्डवों के साथ विवाह होना पूर्व जन्म से सम्बन्ध रखता है। यह अवश्यम्भावी है और यह टल नहीं सकता। द्रौपदी का और पाँचों पाण्डवों का जन्म ही इसी लिये हुआ है। यह एक गूढ़ रहस्य है, पर आप का भ्रम दूर करने के लिये हम आप से कहते हैं —

बहुत पहिले, देवताओं ने मिलकर नैमिषारण्य में एक बड़े भारी यज्ञ आरम्भ किया। उस यज्ञ में वैवस्वत यम व्रती हुए

यज्ञ में व्रती होने के कारण, यम अपने अन्य कार्यों से विरत रहे। प्रजा का नाश करना उनके जिम्मे था, यह काम भी रुका रहा, इस से थोडे ही दिनों में जनसख्या बहुत बढ गई। सोम, शुक्र, वरुण, रुद्र, वसुगण, अश्विनीकुमार और अन्य देवता मिलकर ससार की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी के पास गये और उन से कहने लगे —

"हे लोकनाथ! हम सब मनुष्य सख्या की वृद्धि देखकर अतिशय भीत हो उठे हैं, इसी से आपकी शरण आये हैं, आप हमारी रक्षा करें और हमें ऐसा यत्न बतलावें कि, हम लोग सुख-पूर्वक अपने दिन बिता सकें।"

ब्रह्माजी बोले —

"तुम लोग अमर हो। तुम्हारी कभी मृत्यु नही हो सकती। मनुष्यों की आयु नियमित है, तुम उन से क्यों डरते हो?"

'देवताओं ने कहा —

"मर्त्यलोक और देवलोक इस समय समान हो रहा है। देव लोक में मर्त्यलोक से कोई विशेषता नहीं, पहिले तो यह विशेषता थी कि, देवलोक में सब अमर थे, किसी की मृत्यु न होती थी और मर्त्यलोक में मृत्यु द्वारा नाश हुआ करता था। पर अब वहाँ भी मृत्यु नहीं होती। यही हमारी उद्विग्नता का कारण है।'

ऐश्वर्यशाली चतुरानन ने कहा —

"यम इस समय यज्ञ कर रहे हैं और सहार का कार्य बन्द है। इसी से मर्त्यलोक में मृत्यु नहीं होती और वहाँ जनसख्या

बढ रही है। जब उनका यज्ञ समाप्त होगा और वे संहार क
कार्य हाथ में लेंगे, तब सत्य ही समझो, मर्त्यलोक के लिये बड
कठिन समय आ जायगा।"

ब्रह्माजी की ये बातें सुनकर देवता लोग उस ओर चल पडे
जहाँ यज्ञ हो रहा था। चलते चलते जब वे थक गये, तो रास्ते में
गङ्गाजी के किनारे एक स्थान पर विश्राम करने के लिये बैठ
गये। थोड़ी ही देर में उन्हों ने देखा कि, गङ्गाजी में एक स्वर्ण
कमल समूह बहता हुआ चला जा रहा है। उसे देखकर उन
लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस का पता लगाने के लिये
देवताओं के राजा, इन्द्र, उस ओर बढे, जिधर से वह कमल-समूह
आ रहा था। थोडी ही दूर जाने पर उन्हों ने देखा, कि जहाँ पर
गङ्गाजी की धारा निकलकर बडे जोरों से बह रही है, वहीं एक
स्त्री जल लेने की इच्छा से गङ्गाजी में पैठ रही है, पर उस की
आँखों से आँसू गिर रहे हैं। वे ही आँसू उस पवित्र धारा में
पडकर स्वर्णकमल बन जाते हैं। इन्द्र ने यह तमाशा देखकर उस
स्त्री से पूछा —

"भद्रे! तुम कौन हो? किस लिये रो रही हो? यह सब
सत्य सत्य बताओ।"

वह स्त्री बोली —

"मैं जिस लिये रो रही हूँ, उस का कारण, आप मेरे साथ
थोडी दूर चलें, तो आप को स्वयम् मालूम हो जायगा।"

यह सुनकर देवराज इन्द्र उस स्त्री के पीछे पीछे चलने लगे

थोडी ही दूर जाने पर उन्हों ने देखा कि, पर्वत की चोटी पर एक सुन्दर युवा पुरुष सिंहासन पर बैठा हुआ एक सर्वाङ्ग सुन्दरी युवती के साथ पाँसा खेल रहा है। देवराज इन्द्र उस के पास भी पहुँच गये, पर इन्हें देखकर न तो वह उठा ही और न उसने इनकी कुछ परवाह ही की। इन्द्र को यह बात बडी बुरी लगी और इस से वे बहुत नाराज हुए। इन्द्र ने उस युवक से कहा —

"तुम्हें क्या होश नहीं है कि, यह भूमण्डल मेरे अधीन है और मैं ही इस का राजा हूँ? तुम्हारी आँखें क्या कपाल में चढ गई है और क्या तुम ने नशा खाया है, जो पाँसे खेलने में इतने बे सुध हो रहे हो?"

सुरराज ने समझा था कि, उन के इस तरह झिडकने पर वह गिडगिडाकर क्षमा माँगेगा। पर यह कुछ भी नहीं, वह युवक इन्द्र की उक्त बातें सुनकर केवल थोडासा मुसकरा दिया और ज्योंही उसने इन्द्र की ओर देखा, उन की देह पत्थर सरीखी हो गयी। वे जहाँ खडे थे,वहीं पर तसवीर की तरह खडे रहे। उन में हिल्ने डुलने की भी शक्ति न रही और वह युवक बराबर पाँसे खेलता रहा।

पाँसे खेल चुकने पर उस महापुरुष ने उस रोने वाली स्त्री से कहा कि, इसे हमारे पास ले आओ। हम इसे ऐसा उपदेश देंगे, जिस से फिर-कभी इसे अहङ्कार न हो।

उस स्त्री ने ज्योंही इन्द्र को छुआ, उन का अङ्ग प्रत्यङ्ग ढीला हो गया और वे जमीन पर गिर पडे।

इन्द्र को ऐसी हालत में देखकर दिव्य तेज वाले उन महात्मा ने कहा —

"हे शक्र ! फिर कभी ऐसा काम न करना । तुम बड़े बलवान् हो, इस से इस पर्वत को उखाड़कर उस गुफा में तुम भी प्रवेश करो, जहाँ पर सूर्य की तरह तेजस्वी तुम सरीखे लोग बैठे हैं।" इन्द्र ने उस गुफा का पता लगाकर उस के भीतर जाकर देखा, तो उन्हीं के बराबर तेज वाले चार जनों को वहाँ बैठे पाया। उन का उतना तेज देखकर इन्द्र मन ही मन तर्क-वितर्क करने लगे कि,क्या इनकीसी स्थिति कभी हमारी भी होगी ?

इसके बाद भगवान् महादेव ने क्रोधित हो, आँखें चढ़ाकर इन्द्र से कहा —

"हे इन्द्र ! तुमने लड़कों की तरह तेजी करके हमारा अपमान किया, इस से तुम को इसी गुफा के भीतर जाना होगा।"

महादेवजी की यह बात सुनकर देवराज इन्द्र उसी तरह काँपने लगे, जैसे पहाड़ की ऊँची चोटी पर लगा हुआ पीपल का वृक्ष वायु के झकोरे से काँप उठे। इस के बाद गुफा में प्रवेश करने के समय हाथ जोड़कर उन्हों ने त्रिलोचन शङ्करजी से कहा —

"हे भगवन् ! आज से आप को सब लोकों की देखभाल करनी होगी।"

यह सुनकर देव देव महादेव हँसकर कहने लगे —

"इन लोकों पर तुम्हारा शासन था और इन की देखभाल तुम्हारे जिम्मे थी। पर तुम सरीखे अभिमानी लोगों का ऐसे का

में अधिकार होना योग्य नहीं । ये लोग भी एक दिन तुम्हारी ही तरह गर्वित थे। अब इस गुफा के भीतर तुम भी प्रवेश करो और सब साथ ही रहकर समय काटो। अब तुम्हारे किये हुए बुरे कर्मों के फल से तुम्हें मनुष्य योनि प्राप्त होगी, फिर जन्मान्तर में भले भले काम करके अपने अपने कर्मों के फल द्वारा ही दुर्लभ इन्द्रलोक को पाओगे।"

महादेवजी का यह आदेश सुनकर चार भूतपूर्व इन्द्रों ने कहा—

"हे प्रभो! आप की आज्ञा शिरोधार्य है। देवलोक से हमारा सम्बन्ध छूट गया, अब हमें मर्त्यलोक को जाना और वहाँ पर मनुष्य-शरीर धारण करना पड़ेगा। वहाँ पर मोक्ष बड़ी कठिनता से मिलती है, इसे भी हम सहन करेंगे, परन्तु इतनी प्रार्थना है कि, धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमार ही हमें किसी मानुषी के गर्भ में उत्पन्न करें।

पहले समय के इन्द्रों की बातें सुनकर उस समय के इन्द्र ने कहा—

"अपने वीर्य से हम भी एक कार्यशाली पुरुष उत्पन्न करेंगे। इन चारों के साथ वही पाँचवाँ हो।

प्राचीन इन्द्रों की यह प्रार्थना अमित तेजस्वी महादेवजीने स्वीकार कर ली और परम सुन्दरी उस युवती को, जिस के साथ इन्द्र आये थे, उन सब की भार्या निर्दिष्ट किया।

इस के अनन्तर उन सब को साथ लेकर महादेवजी नारायण विष्णु के पास आये। उन्होंने महादेवजी से सब बातें सुनीं।

महादेवजीने गर्वित इन्द्रों के लिये जो दण्ड और नियम तजवीज़ किये थे, उनका नारायण ने अनुमोदन किया। तब महादेवजी चले गये।

उनके चले जाने पर विष्णु ने अपने मस्तक से दो बाल उखाड़े। एक था सफेद और दूसरा कृष्ण। उन्हीं दोनों बालों से यदुकुल कामिनी रोहिणी और देवकी के गर्भ से दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई। सफेद बाल के द्वारा बलदेवजी का और कृष्ण केश के द्वारा श्रीकृष्ण का अवतार हुआ। इसी से वासुदेव श्रीकृष्ण को केशव भी कहते हैं।

यथासमय उन पाँचों इन्द्रों ने पाण्डवों के रूप में जन्म लिया। उन में साक्षात् इन्द्र के अंश से उत्पन्न सव्यसाची अर्जुन हैं। जिस देवी को महादेव जी ने इन सब की भार्या होना निर्दिष्ट किया था, वही लक्ष्मी रूपिणी आप की कन्या, पाञ्चाली द्रौपदी है।"

यह कहकर व्यासजी ने राजा द्रुपद से कहा —

"महाराज! सचमुच सब बातें पूर्वजन्म के सम्बन्ध और दैव-संयोग से होती हैं, नहीं तो इस पृथ्वी पर द्रौपदी सरीखी देवी कैसे उत्पन्न होती? हे राजन्! हम प्रीतिपूर्वक तुम्हें दिव्य दृष्टि देते हैं। उन दिव्य चक्षुओं को बन्द करके तुम अनायास ही देख सकोगे कि, वे कुन्ती के पुत्र पाण्डव पवित्र पूर्व शरीर धारण किये हुए इस पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं।"

महर्षि व्यास ने अपने तप प्रभाव से राजा को दिव्य दृष्टि दी। उसके बल से राजा द्रुपद ने देखा कि, सचमुच ही पाण्डव

लोग अति पवित्र अपनी पूर्व देह धारण किये हुए हैं। उन के शिर पर सुनहला मुकुट और शरीर पर भाँति भाँति के सुन्दर आभूषण शोभा पा रहे हैं और वे लोग सूर्य के समान तेज और सुगन्धित दिव्य वस्त्र धारण किये हैं। यह देखकर वे बड़े विस्मित हुए और द्रौपदी की दीप्ति देखकर तो उन के आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा। व्यासदेव के चरणों में शिर रखकर उन से यही कहते बना कि, हे महर्षे! आप धन्य हैं, आप का तपोबल श्लाघ्य है और आप जो चाहें कर सकते हैं।

व्यासदेव ने कहा —

"राजन्! द्रौपदी के सम्बन्ध की एक कथा और भी है, उसे सुनने पर आप यह भली भाँति जान जायेंगे कि, पाँच पतियों की भार्या होना उनके लिये निर्दिष्ट था और ब्रह्माने पाँच पाण्डवों की सहधर्मिणी होने के लिये ही उन की सृष्टि की थी। उस कथा को आप ध्यान देकर सुनिये —"

किसी तपोवन में एक ऋषि तपस्या करते थे, उन के एक कन्या थी। विवाह योग्य अवस्था होने पर भी उस का विवाह न हुआ, इस से उसने कठिन तपस्या द्वारा शङ्करजी को तुष्ट किया। प्रसन्न होने पर शङ्करजी ने उसे दर्शन दिये और कहा —

"हे भद्रे! तुमने जो कठोर तपस्साधन किया है, उस से हम बहुत प्रसन्न हैं, तुम्हारी जो इच्छा हो वर माँगो।"

उस कन्या के मन में अनुरूप पति पाने की इच्छा प्रबल हो उठी थी। उस अभिलाषा के आवेग में वह सफलता सम्भूत आनन्द-

भाव को रोक न सकी। उसे उस समय अत्यन्त आनन्दित होने के कारण, सिवाय अनुरूप पति पाने की इच्छा के और कुछ ध्यान ही न रहा। उसने हाथ जोडकर महादेवजी से कहा —

पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि दयानिधे !

पतिं देहि पतिं देहि करुणाकर शंकर !

महादेवजी ने प्रसन्न होकर कहा —

"एवमस्तु अर्थात् ऐसा ही हो ! तुम्हारे पाँच पति हों।"

ऋषिकन्या ने महादेवजी से फिर कहा —"प्रभो ! मैंने एक ही पति पाने के लिये प्रार्थना की है और मैं एक ही स्वामी चाहती हूँ, पाँच नहीं।"

महादेवजी बोले —

"भद्रे ! तुमने पाँच बार पति माँगा है, इस से जन्मान्तर में तुम्हारे पाँच पति होंगे।"

महाराज ! आप की कन्या द्रौपदी, प्राक्तन जन्म की वही महर्षि नन्दिनी है। भगवान् चन्द्रशेखर ने उसे पाँच पति पाने का वर दिया है, वह विफल नहीं हो सकता। पाण्डवों के लिये ही यज्ञवेदी से इस देवी की उत्पत्ति हुई है। प्राक्तन जन्म के कर्मों का फल टल नहीं सकता। आप से सब बातें हम ने कह दीं, अब जैसी आप की मरजी।"

सातवाँ परिच्छेद।

द्रौपदी का विवाह।

व्यासदेव की बातें सुनकर राजा द्रुपद ने कहा —"महर्षे! पहले ये बातें हम को मालूम न थीं, इसी से हम तर्क-वितर्क कर रहे थे। अब आप के प्रताप से हमारी चिन्ता दूर हो गयी है और सब बातें हमने जान ली हैं। भाग्य के विरुद्ध कुछ भी नहीं हो सकता, इस से देवताओं ने जो विधान किया है वही कल्याणकर है। जब अदृष्ट का फल टल नहीं सकता और मनुष्य कुछ कर नहीं सकता, तो सोचना विचारना व्यर्थ है। भगवान् भवानीपति ने कृष्णा को पाँच वर पाने का वर दिया है, इस से इस की भलाई बुराई देव देव महादेव ही जानें, अब यह चाहे धर्म हो या अधर्म, इस में हमारा कुछ अपराध नहीं। जब पाण्डवों के निमित्त ही कृष्णा का जन्म हुआ है, तो युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई उस का पाणिग्रहण करें, इस में हमें आपत्ति नहीं।"

तब व्यासदेव ने युधिष्ठिर को बुलाकर कहा—

'आज शुभ दिन है, आज चन्द्रमा पुण्य नक्षत्र में जायगा, इस से आज ही तुम द्रौपदी का पाणिग्रहण करो।"

युधिष्ठिर ने यह बात मान ली। राजा द्रुपद पहले ही इस के लिये सहमत हो चुके थे। उन्होंने धृष्टद्युम्न को आज्ञा दी कि,

द्रौपदी को वस्त्रालङ्कार पहनाकर ले आओ , राजा के मन्त्री, उन के सुहृद् और प्रधान-प्रधान पुरवासी विवाह का शुभकृत्य देखने के लिये आये। राजभवन आदमियों से भर गया। उस की शोभा बढ़ गयी। मकान का आँगन फूले हुए कमलों से अलङ्कृत किया गया और साज साजने वाले की चतुराई से मण्डप (माँडौ) नक्षत्र युक्त निर्मल आकाशसा शोभित देख पड़ने लगा।

पाँचों भाई पाण्डव भी द्रौपदी के आ जाने के अनन्तर स्नान कर और बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण धारण करके विवाह-मण्डप में आये। पुरोहित धौम्य उन के साथ थे। अग्नि-स्थापन करके उन्होंने प्रज्वलित हुताशन में आहुति दी और विधिपूर्वक कृष्णा के साथ युधिष्ठिर का विवाह कराया। दोनों के अग्नि-प्रदक्षिणा कर चुकने पर यह कृत्य समाप्त हुआ। इस के अनन्तर भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव का भी विवाह हुआ।

विवाह हो चुकने पर द्रुपदराज ने पाण्डवों को बहुतसा धन, ऊँचे ऊँचे पर्वतों की समता करने वाले एक सौ हाथी, बहुमूल्य कपड़े गहने पहने हुई एक सौ दासियाँ, सोने से मढ़े हुए चार घोड़ों वाले एक सौ रथ यौतुक में दिये। आये हुए अन्य लोगों को भी कीमती वस्त्र देकर उन्होंने अपनी उदारता का परिचय दिया।

इस भाँति द्रौपदी-रूपी रमणी रत्न को पाकर पाण्डव लोग पाञ्चाल राजपुर में आनन्द से रहने लगे और पाण्डवों के साथ इस

हो जाने से राजा द्रुपद को अपने किसी अन्य शत्रु तो क्या, देवताओं से भी पराजित होने की शङ्का न रही।

पुरनारियों ने कुन्ती के पास जाकर चरणवन्दन किया। मङ्गल-वस्त्र पहने, घूँघट काढे, हाथ जोडे, मन ही मन प्रणाम करती हुई द्रौपदी अपनी सास के सामने विनीतभाव से जा खडी हुई। कुन्ती-देवी ने सदाचार सम्पन्ना सुशीला पुत्रवधू को स्नेहपूर्वक आशीर्वाद देते हुए कहा —

"वत्से! जिस तरह इन्द्राणी ने इन्द्र के साथ, स्वाहा ने अग्नि के साथ, रोहिणी ने चन्द्रमा के साथ, दमयन्ती ने नल के साथ, भद्रा ने वैश्रवण के साथ, अरुन्धती ने वसिष्ठ के साथ और लक्ष्मी ने नारायण के साथ भक्ति और प्रीति पूर्वक दाम्पत्यभाव निवाहा है, उसी तरह अपने पतियों के साथ तुम भी सुख से रहो। हे भद्रे! तुम वीर पुत्रों की जननी बनोगी, स्वामी के साथ यज्ञ में भाग लोगी और तुम्हारा सौभाग्य दिन दिन बढेगा। तुम अतिथि, अभ्यागत, साधु, बालक, वृद्ध और गुरुजनों का सत्कार करके यशस्विनी बनोगी। तुम्हारे भाग्य से कुरुजाङ्गल इत्यादि प्रधान-प्रधान जनपदों में तुम्हारे पति अभिषिक्त होंगे और तुम राजरानी बनकर उन का आनन्द द्विगुणित करोगी। अपने स्वामी के बल विक्रम द्वारा प्राप्त की हुई पृथ्वी को अश्वमेधयज्ञ में तुम ब्राह्मणों को दे डालोगी और इसी तरह तुम्हारी दानशीलता बढती रहेगी। तुम्हारा स्वप्न में भी अनिष्ट न होगा और तुम चिरकाल पर्यन्त सौभाग्यसुख भोगोगी। वत्से! जिस तरह मैं आज तुम्हें आशीर्वाद दे रही हूँ, ईश्वर करे उस दिन भी इसी तरह आशीर्वाद दूँ, जिस दिन तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हो।"

इस तरह आशीर्वाद देकर कुन्ती देवीने स्नेहपूर्वक अपनी पतोहू को गोद में बिठा लिया।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी, विवाह के इस शुभ अवसर पर, विचित्र वैदूर्यमणि, सोने के गहने, नाना देशों में बने हुए क़ीमती कपड़े, सुशिक्षित हाथी घोड़े और दास-दासियों के साथ बहुतसा धन उपहार में भेजा, जिसे युधिष्ठिर ने आह्लादपूर्वक स्वीकार कर लिया।

आठवाँ परिच्छेद ।

पाण्डवोंकी राज्य-प्राप्ति ।

बड़े-बड़े राज्यों में इधर उधर का सवाद देने के लिये कुछ जासूस लोग नौकर रक्खे जाते हैं। इन का काम समय समय पर खबरें देना होता है। ये लोग वेष बदलकर इधर उधर घूमते और कभी कभी राजा के यहाँ केवल वहाँ की खबरें जानने के लिये स्वल्प वेतन पर नौकरी भी कर लेते हैं। कहीं ये सौदागर बनते, कहीं यात्री और कहीं ज्योतिषी; कहीं कुछ, प्रवेश करने और खबरें लेने के लिये ये नाना प्रकार के कौशल रचते हैं। राजा धृतराष्ट्र के भी कुछ ऐसे ही गुप्तचर (जासूस) नौकर थे। वे समय समय पर इधर-उधर की खबरें दुर्योधन को दिया करते थे, क्योंकि राज्य शासन की बाग उन्हीं के हाथ में थी। विशेष बात यह थी कि, युवराज खबरें सुनने को बहुत उत्सुक रहते और गुप्तचरों को भरपूर इनाम भी देते थे, इस से भेदिया विभाग का काम उन दिनों खूब श्रृङ्खलाबद्ध चल रहा था। द्रौपदी के स्वयंवर से युवराज दुर्योधन के लौट आने के बाद ही इन्हीं जासूसों में से किसी ने आकर खबर दी कि, पाँचों पाण्डवों का विवाह द्रौपदी के साथ हो गया और जिस ब्राह्मणकुमार ने द्रौपदी के स्वयंवर में निशाना बींधा था, वह अर्जुन थे। पाँचों

भाई पाण्डव और उन की माता कुन्ती इस समय पाञ्चालराज के यहाँ आनन्द से हैं और अर्जुन के प्यारे मित्र, पाण्डवों के सहायक, श्रीकृष्ण भी वहाँ पहुँच गये हैं।

यह खबर सुनकर दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन इत्यादि बडी देर तक मन्त्रणा करते रहे। उन्हें सन्देह हो गया कि, पाण्डव लोग पाञ्चालनरेश और श्रीकृष्ण की सहायता से राज्य पाने के लिये कोई तदबीर न कर रहे हों। पाण्डवों के साथ द्रौपदी का विवाह हो जाने और स्वयवर में अर्जुन के लक्ष्यभेद करने की बात याद करके उन की छाती में पीडा होने लगी।

विदुरने भी अलग ही कुछ जासूस नियुक्त कर रखे थे, जो समय-समय पर उन्हें पाण्डवों की खबर और उन के विरुद्ध रचे जाने वाले शत्रुओं के षड्यन्त्रों का सवाद दिया करते थे। उन लोगोंने भी द्रौपदी के साथ पाण्डवों का विवाह हो जाने और स्वयवर में लक्ष्य विद्ध करके अर्जुन ने जो यश अर्जित किया था, उस की बात विदुर को सुनाई।

विदुर इस सवाद को सुनकर बहुत पुलकित हुए। वे यह तो जानते ही थे कि, पाण्डव लोग अपनी माता समेत लाक्षागृह में जलने से बच गये हैं, इस से उन के विवाह की बात सुनकर उन्हें परम आनन्द हुआ। विदुर ने जान बूझकर यह खबर इधर उधर फैला दी। उन का उद्देश्य यह था कि, प्रजा पाण्डवों के जीवित रहने और उन की स्वयवर में जीत होने की बात जान ले और उन की ओर अनुरक्त हो उठे।

आनन्द के आवेग में विदुर ने जाकर राजा धृतराष्ट्र से कहा —
"महाराज! भाग्यवल से कौरव लोग पाञ्चाल नगर के स्वयवर में विजयी हुए हैं।"

धृतराष्ट्र इसे सुनते ही बोल उठे —

"बड़े सौभाग्य की बात है। विदुर! तुमने बड़ा ही भला समाचार सुनाया है। दुर्योधन से कहो कि, वह द्रौपदी को नाना आभूषणों से सजाकर मेरे सामने ले आवे।"

यह सुनकर विदुर ने कहा —

"महाराज! पाण्डु के पुत्र भी तो कुरुवंश ही के हैं। अर्जुन ने स्वयवर में लक्ष्य विद्ध किया है और द्रौपदी के साथ पाँचों भाइयों का विवाह हुआ है। पाण्डव लोग भाग्यवल से लाक्षागृह में जलने से बच गये हैं और अपनी माता समेत इस समय वे आनन्द-पूर्वक पाञ्चाल नगर में हैं। राजा द्रुपद ने उन का बड़ा सम्मान किया है।"

यह सुनकर धृतराष्ट्र फिर बोले —

"यह भी बड़ी प्रसन्नता की बात है। विदुर! दुर्योधनादिक अपने सौ पुत्रों और पाण्डु के पाँच पुत्रों को मैं एक ही भाव से देखता हूँ। उन सब पर मेरा सम स्नेह और बराबर प्रीति है, बल्कि पाण्डवों पर, उन के गुणों के कारण, मेरा विशेष अनुराग है।"

विदुर ने कहा,—"ईश्वर करे आप के विचार सदैव ही ऐसे रहें।"

इसी समय दुर्योधन और कर्ण आये। उन्होंने बूढ़े रा
धृतराष्ट्र को प्रणाम करके कहा —

"महाराज! हमें जो कुछ कहना है, उसे विदुर के सामने
कह सकेंगे। इस से हमारी इच्छा है कि, आप एकान्त में हम
बातें सुनें।"

धृतराष्ट्र इस बात पर राज़ी हो गये। तब दुर्योधन और कर्
उन से इस प्रकार कहना आरम्भ किया —

"तात! आप हमारे शत्रु, पाण्डु-पुत्रों की जीत पर प्र
होकर विदुर से उन की प्रशसा करते हैं, परन्तु यह बात भ
नहीं, शत्रुओं का नाश करना और उन का बल न बढ़ने देना
हमारा कर्त्तव्य है। इस समय हमें यही उचित है कि, हम लो
सलाह करके कोई ऐसी युक्ति करें, जिस से पाण्डवों द्वारा
अनिष्ट होने की सम्भावना न रहे।"

धृतराष्ट्र ने कहा —

"तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो, उस से हम भी सहमत
विदुर से सब बातों की अभिसन्धि छिपी ही रहनी चाहिये,
लिये हम विदुर से सदैव ही पाण्डवों की प्रशंसा किया करते
हे सुयोधन! तुम्हें जो कुछ कहना हो कहो, और हे कर्ण! तुम
बतलाओ तुमने क्या सोचा है?"

दुर्योधन ने कहा —

"पिता! पाण्डवों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकना और
के नाश की तदबीरें करना ही इस समय उचित है। ब्राह्मण

बड़े बातून होते हैं। भेदनीति उन्हें बहुत आती है, इस से कुछ होशियार ब्राह्मणों को नियुक्त करके कुन्ती और माद्री के पुत्रों में परस्पर भेदभाव उत्पन्न करा देना चाहिये। अथवा राजा द्रुपद, उन के पुत्रों और मन्त्रियों को बहुतसा धन देकर अपने काबू में करना चाहिये कि, वे लोग युधिष्ठिर को या तो पाञ्चाल नगर से निकाल दें या हस्तिनापुर में न रहने की सलाह दें। अथवा, कुछ ऐसे लोग नियुक्त किये जायें, जो पाण्डुपुत्रों की नौकरी करके उन के पास रहें व पाँचों भाइयों में वैमनस्य पैदा करा दें। अथवा 'बहुपतियो का होना अवगुण की बात है' कहकर द्रौपदी का चित्त पाण्डवों पर से हटा दिया जाय और चित्तभेद होने पर आपस में कलह होने का बीज बो दिया जाय। अथवा, सब झगडो के मूल कारण, भीमसेन मरवा डाले जायें, उन के मरने से पाण्डव लोग क्षीणबल हो जायेंगे, तो हमारा पक्ष सबल हो उठेगा। अथवा परमरूपवती कुछ स्त्रियाँ जो अपने कटाक्ष कौशल से पाण्डवों को अपने वश में करें, जिस से द्रौपदी का मन अपने पतियो की ओर से खिंच जाय और उनका गार्हस्थ्य जीवन विषमय हो उठे। अथवा कर्ण को भेजकर वे लोग यहाँ बुला लिये जायें और युक्ति से छिपे छिपे मरवा डाले जायें।"

दुर्योधन ने यह कहकर कहा —

"हे तात! इन उपायों में आप को जो समुचित समझ पड़े, उस के लिये यत्न किया जाये। अब जो कुछ करना उचित हो, उसे शीघ्र करना चाहिये, देर करने का समय नही रहा।"

फिर दुर्योधन ने कर्ण से कहा —

"क्यों मित्र ! तुम्हारी क्या सम्मति है ?"

कर्ण बोले —

"दुर्योधन ! तुम्हारा प्रस्ताव ठीक नहीं, समय नाजुक है और हमें कुछ करने के पहले उस के परिणाम पर भली भाँति विचार कर लेना चाहिये। छिपे-छिपे ऐसी तरकीबें करने से कोई लाभ न होगा। उन पाँचों भाइयों में परस्पर बड़ा सौहार्द है, बातूनी ब्राह्मणों की भेदनीति का बीज उस सौहार्द के ऊसर में पड़कर निरर्थक हो जायेगा। राजा द्रुपद, उन के पुत्र और मन्त्री, बड़े चतुर हैं, वे लोग धन के प्रलोभन में नहीं पड़ सकते। वे पाण्डवों की अवश्य सहायता करेंगे। भीमसेन को छिपकर मरवा डालना कठिन ही नहीं, असम्भव है, बल्कि यह रहस्य खुल जाने पर आप की बदनामी बढ़ती ही जायेगी। सर्वसाधारण की इस समय यही धारणा है कि, आप ही ने लाक्षागृह में पुरोचन द्वारा उन को जला देने का षड्यन्त्र रचा और भीम को लड़कपन में ही विष देकर मरवा डालना चाहा था। इस बार यदि आपने फिर वैसा ही काम किया और भेद खुल गया तो प्रजा का मन आप की ओर से खिँच जायेगा, प्रजा आप को हत्याकारी और कलुषितचित्त समझ कर आप से घृणा करने लगेगी, इस से ऐसा करना सर्वथा अनुचित है। द्रौपदी का अनुराग पाण्डवों पर पहले से ही था, ऐसा सुना जाता है। इस से पतियों की ओर से उसका मन फिराना नितान्त दुष्कर है। भिखारी का वेष धारण किये हुए भी अर्जुन

के गले में उस ने जयमाला पहनाई थी और अर्थहीन जानकर भी पाण्डु पुत्रों के साथ उसने विवाह किया है, इस से सिद्ध है कि, वह उन की हृदय से अनुरागिणी है, वह अपने पतियों से क्षुभित हो—यह एक प्रकार असम्भव ही है। द्रौपदी सरीखी रमणी साथ होने पर, पाण्डव लोगों के मन पर अन्य रूपवती स्त्रियों के कटाक्ष कौशल का कुछ भी प्रभाव नहीं पड सकता। इस से चालें चलकर उन का अनिष्ट करने की इच्छा छोड दीजिये। भला यही है कि, अभी हमारा पक्ष सबल है और पाण्डव हीनबल हैं, इस से उन्हें इसी समय खुले युद्ध में पराजित और नष्ट करके अपना मार्ग निष्कण्टक बना लेना चाहिये। जब तक पाञ्चाल नरेश द्रुपद अपने बल पराक्रमी पुत्रों और मित्रों के साथ उन की सहायता करने के लिये तैयारी करें और जब तक परम राजनीतिज्ञ कृष्ण के आदेश से यदुवंशियों की सेना उन का साथ देने के लिये पाञ्चाल नगर न आ जाये तभी तक कुशल है। इसी बीच में युद्ध की घोषणा करके अपना काम बना लेना चाहिये। पाण्डवों को नष्ट करने के लिये हम लोग कोई कसर न छोडेंगे।"

कर्ण की ये बातें सुनकर धृतराष्ट्र ने उन की बडी प्रशंसा की और कहा —

"हे सूतनन्दन! तुमने पराक्रम द्वारा पाण्डवों के नष्ट करने की बात ठीक कही है, तुम्हारे पराक्रम पर हमारा विश्वास है। पर हमारी राय में तुम्हें और दुर्योधन को भीष्म, द्रोण से भी मन्त्रणा कर लेनी चाहिये। यह गुरुतर काम है, इस से उन की सलाह

ले लेना भी आवश्यक है। उन से सम्मति ले लेने पर जो कुछ उचित जँचे, वह शीघ्र ही करना उचित होगा।"

यह कहकर राजा धृतराष्ट्र ने भीष्म, द्रोण और विदुर को भी बुलवा लिया और उन के साथ सलाह होने लगी।

सब बातें सुनकर यशस्वी भीष्म ने कहा —

"पाण्डवों के साथ युद्ध करने की हम कभी राय नहीं दे सकते। बन्धु-विरोध सर्वनाश का मूल है। हमारे लिये गान्धारी और कुन्ती दोनों के पुत्र समान हैं। हमारी राय में तो दुर्योधन और युधिष्ठिर दोनों ही का यह पैतृक राज्य है। दोनों ही इस के समान अधिकारी हैं और बिना विवाद किये सौहार्द्र पूर्वक दोनों को आधा आधा राज्य बाँट लेना चाहिये। कीर्ति ही सब से बड़ी वस्तु है, इस से यदि कीर्ति रक्षित रखनी और हमारी बात स्वीकार करनी हो, तो पाण्डवों को उन का आधा राज्य दे दीजिये, इस से आप का बडा यश होगा।"

द्रोणाचार्य बोले —

"जो कुछ भीष्म ने कहा है, बहुत ठीक कहा है। ठीक राय हमारी भी है। शास्त्रों में लिखा है कि, सम्मति देने के स्पष्टभाषिता से काम लेना चाहिये। इस से हम साफ साफ देना अपना परम धर्म समझते हैं। हमारी सलाह यही है पाण्डवों को उपहार देने के लिये बहुमूल्य वस्त्रालङ्कार लेकर प्रियवद व्यक्ति पाञ्चाल नगर जाये और राजा द्रुपद से कहे कि महाराज धृतराष्ट्र और दुर्योधन पाण्डवों का शुभ समाचार

प के साथ सम्बन्ध स्थापित होने की बात सुनकर बहुत प्रसन्न । फिर अवसर देखकर पाण्डवों के हस्तिनापुर आने की चर्चा है। जब पाण्डव यहाँ आवें, तो उनका स्वागत किया जाये और को आधा राज्य दे दिया जाये।"

द्रोणाचार्य के कह चुकने पर कर्ण ने कहा —

"महाराज! आपने सदैव ही अर्थ द्वारा भीष्म और द्रोण का मान किया है। उन्हें उचित था कि, आप को भली सलाह देते, आश्चर्य की बात है कि, ये शत्रुओं का पक्ष ले रहे हैं। इस से प स्वयम् समझ-बूझकर कोई राय कायम कीजियेगा।"

द्रोण बोले —

"कर्ण! तुम्हारे मन में स्वयम् पाप है, इस से तुम दूसरे को कलुषित समझते हो। खैर, जो कुछ हो। यदि तुम इस से कर परामर्श दे सकते हो, तो दो। हमारी राय में जो कुछ भला ा हमने कह दिया।'

विदुर ने कहा —

"महाराज! भीष्म और द्रोण आप के पूज्य और कुरुवंश के तैषी हैं। ये परम नीतिज्ञ और धार्मिक हैं। इन से बढ़कर और सी की राय नहीं हो सकती। कर्ण इत्यादि जो बात कहते हैं, भली नहीं। इतना कहना हम भी अपना कर्त्तव्य समझते हैं , यदि पाण्डव लोग रुष्ट हो जायेंगे, तो आप के पुत्रों का कल्याण ों। वे लोग स्वयम् बली हैं। इन के सिवा, यह सम्बन्ध हो ने से पाञ्चाल लोग उन के तरफदार हो गये हैं। यदुवंशियों में

श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण पहले ही से उन के साथी हैं। उन का पक्ष सर्वथा सबल है और भलाई इसी में है कि, उन का आधा राज्य देकर आप अपना यश बढ़ाइये और पुरोचन के किये हुए पाप के कलङ्क का धब्बा मिटाइये।"

धृतराष्ट्र ने कहा —

"वत्स विदुर! भीष्म, द्रोण और तुम्हारी जो कुछ सम्मति हो, वही हमे मान्य है। पाण्डु हमारे भाई थे। उन के पुत्र ही आधे राज्य के हिस्सेदार हैं। हम उन से वैसा ही प्रेम करते हैं, जैसा दुर्योधन से। यह बात हम तुम से कई बार कह चुके हैं। अब तुम पाञ्चाल नगर जाकर उन का सत्कार करो और कुन्ती तथा द्रौपदी के साथ उन्हें लिवा लाओ।"

इस के अनन्तर विदुर पाञ्चाल नगर गये और उपहार देने के लिये अपने साथ भाँति भाँति के रत्न और वस्त्राभूषण ले गये। द्रुपदराज और पाण्डवों का कुशल-प्रश्न करके उन्होंने कहा —

"महाराज! कौरव नरेश धृतराष्ट्र अपने भतीजों का कुशल संवाद जानकर और विशेषकर आप के साथ सम्बन्ध हो जाने की बात ज्ञात करके बहुत ही प्रसन्न हुए हैं। कुरुकुल प्रधान भीष्म और आप के प्रिय सखा, द्रोण, ने बार बार आप का कुशल प्रश्न पूछा है। वहाँ के लोग कुन्ती और द्रौपदी समेत पाण्डवों को देखने के लिये उत्सुक हो उठे हैं, इस से कृपा कर के उन लोगों को हस्तिनापुर जाने की आज्ञा दीजिये।"

द्रुपद ने कहा —

"हे महाराज विदुर ! आपने बहुत ठीक कहा है। कुरुकुल के साथ सम्बन्ध हो जाने से हमें भी बड़ी प्रसन्नता हुई है। हमारी राय मे भी पाण्डवों को अपने राज्य में जाना उचित है, पर अपनी ओर से हम उन्हें विदा नही कर सकते। यदि वे लोग जाना चाहें और उन के प्रिय सखा, श्रीकृष्ण, की भी अनुमति हो, तो हमें कोई उज्र नहीं।"

युधिष्ठिर ने कहा --

"हे राजन् ! इस समय हम और हमारे भाई आप के अधीन हैं। आप की जो कुछ आज्ञा होगी, हम वही करेंगे।"

कृष्ण बोले —

"पाण्डवों का स्वदेश जाना ही उचित है। इस विषय में महाराज द्रुपद की जो राय है, वही राय हमारी भी है।"

तब कुन्ती और द्रौपदी को साथ लेकर पाँचों भाई पाण्डव विदुर के साथ हस्तिनापुर आये। कृष्ण भी साथ ही साथ आये।

महाराज धृतराष्ट्र ने सब की बड़ी खातिर की और भोजन तथा विश्राम कर चुकने के बाद युधिष्ठिर को बुलाकर उन्होंने कहा —

"वत्स ! तुम्हारे भाइयों से और दुर्योधन से कम बनती है, इस से हमारी राय है कि, राज्य का आधा भाग लेकर खाण्डव प्रस्थ में जाकर अपनी राजधानी बनाओ और वहीं रहो। इस से बन्धु विरोध न बढ़ेगा।"

युधिष्ठिर ने कहा --

"तात ! आप की आज्ञा हमें सर्वथा मान्य है, हम ऐसा ही करेंगे।"

तब युधिष्ठिर सब को यथोचित प्रणाम-अभिवादन करके अपनी माता कुन्ती, अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ खाण्डव प्रस्थ नगर बसाकर रहने लगे। उन के आने का सवाद सुनकर देश देश के बनिये, ब्राह्मण और साधु वहाँ आकर बसने लगे और नगर की शोभा उन के सद्व्यवहार और धर्मपूर्वक राज्य करने के कारण नित्य प्रति बढ़ने लगी।

गृहलक्ष्मी और राज्यलक्ष्मी दोनों से परिपूर्ण, अनुजों द्वारा परिसेवित, राजा युधिष्ठिर को देखकर उन के हितैषी, श्रीकृष्ण बहुत आनन्दित हुए। थोड़े दिनों तक तो वे उन के साथ खाण्डव प्रस्थ में रहे, फिर अपनी नगरी, द्वारका, को लौट गये।

द्रौपदी राजरानी हुई। अपनी सास की सुश्रूषा और पतियों की पूजा करके वह पाण्डवों को आनन्दित करने लगी।

नवाँ परिच्छेद।

द्रौपदी के पुत्रों का जन्म।

खाण्डव प्रस्थ में पाँचों भाई आनन्दमय जीवन व्यतीत कर रहे थे। एक दिन वे लोग एक साथ बैठे किसी विषय पर बातचीत कर रहे थे। इसी समय दैवसंयोग से नारद ऋषि घूमते घूमते वहाँ आ निकले। राजा युधिष्ठिर ने उन का बड़ा आदर किया। वे उठकर खड़े हो गये और ऋषि को उत्तम आसन और अर्घ्यदेकर उनकी चरण वन्दना की, फिर उन्होंने द्रौपदी को ऋषि के आगमन की सूचना दी। द्रुपदराजनन्दिनी, पवित्र होकर, पवित्र वस्त्र धारण करके, ऋषि के पास आई और उन के चरण छूकर, हाथ जोड़े, विनीत भाव से उन के सामने खड़ी रहीं। देवर्षि नारद ने उन्हें आशीर्वाद देकर अन्त पुर जाने की आज्ञा दी।

जब द्रौपदी चली गयीं, तब एकान्त में देवर्षि नारद ने पाँचों भाइयों से कहा —

"हे पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवगण! आप लोग पाँच भाई हैं और अकेली द्रुपदनन्दिनी आप सब की धर्मपत्नी; इस से आप सब को कोई ऐसा उपाय नजवीज करना चाहिये, जिस से भविष्य में आपस में

अनरन न हो। पुराने समय में, लोकविख्यात सुन्द और उप सुन्द नामक दो भाई थे। वे बड़े पराक्रमी थे। उन दोनों में इतना स्नेह था कि, वे एक ही साथ भोजन करते, उठते, बैठते शयन करते और आनन्दपूर्वक राज्य का कार्य चलाते, पर तिलोत्तमा नामक एक सुन्दरी अप्सरा के कारण उन में विवाद हो गया। यह विवाद यहाँ तक बढ़ा कि, उन्होंने एक दूसरे को मार डाला। यद्यपि आप पाँचों भाई इस समय इतने सौहार्द से रहते और आनन्द का उपभोग करते हैं, पर सम्भव है कि, आगे इसी रमणीरत्न के कारण अनबन हो उठे, इसी से कहते हैं कि कोई ऐसा उपाय निर्धारित कीजिये, जिस से विवाद हो उठने की आशङ्का जाती रहे"

नारद की यह बात सब भाइयों ने मान ली और उन्हीं के सामने यह नियम भी कर लिया कि, जिस समय द्रौपदी के साथ एक भाई हो, उस समय दूसरा भाई वहाँ न जाये। यदि कोई इस नियम का भङ्ग करे, तो वह ब्रह्मचारी बनकर बारह बरस वनवास करे।

यह नियम सुनकर देवर्षि बहुत प्रसन्न हुए और पाण्डवों को आशीर्वाद देकर चले गये।

इसी नियम का पालन करते हुए बहुत दिन बीत गये। एक दिन कुछ चोरों ने मिलकर एक ब्राह्मण की गायें चुरा लीं। वह
... रोता हुआ पाण्डव-प्रस्थ में राजमहलों के पास पुकार
... कहने लगा --

"राजन! हम ब्राह्मण हैं, हमारी गायें चोर लिये जाते हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये। जो राजा प्रजा की आय का छठा हिस्सा कर लेकर भी प्रजा की रक्षा न करे, वह राज्यनिवासी सब लोगों के समग्र पापों का भागी होता है। मेरी गायें चोर लिये जाते हैं, इसी से मैं रो रहा हूँ। मेरी रक्षा करके धर्म की रक्षा कीजिये।"

प्रजा की रक्षा और उन के दुःख दूर करने का काम अर्जुन के जिम्मे था। ब्राह्मण की यह पुकार सुनकर उन्हों ने ब्राह्मण को धीरज दिलाया। पर जिस मकान में हथियार रक्खे थे, वहाँ उस समय द्रौपदी के साथ राजा युधिष्ठिर थे। इस से शस्त्र लेने के लिये उस मकान में जाने के लिये वे असमञ्जस में पड गये। एक ओर विलम्ब करने और ब्राह्मण की गायें न छुडाने से पाप होता, दूसरी ओर, नियम भङ्ग करने से बारह बरस का बनवास भोगना पडता। परन्तु अर्जुन बडे वीर और साहसी थे। प्रजारक्षण ने नियमभङ्ग पर विजय पाई। ब्राह्मण की गायें छुडाने के लिये वे नियमभङ्ग करके १२ बरस वनवास जाने के लिये मन ही मन तैयार हो गये। यह निश्चय करके वे अस्त्रागार में पहुँचे और युधिष्ठिर की आज्ञा से धनुष बाण लेकर ब्राह्मण की सहायता करने के लिये चोरों का पीछा किया।

जब चोरों को मारकर वे घर लौटे, तब सब ने उन की बडी प्रशंसा की।

इस के बाद वे बडे भाई युधिष्ठिर के पास गये और हाथ जोडकर कहा —

"आर्य ! जिस समय आर्या द्रौपदी के साथ आप अस्त्रागार में थे, उस समय हमने वहाँ जाकर नियम भङ्ग किया है, इस से हमें आज्ञा दीजिये कि, उस का प्रायश्चित्त करने के लिये हम बारह वर्ष वनवास करें।"

युधिष्ठिर ने कहा —

"एक तो तुम ब्राह्मण को गायें बचाने के लिये शस्त्र लेने के निमित्त अस्त्रागार में गये, फिर भी तुमने हमारी आज्ञा ले ली। छोटा भाई यदि भार्या के साथ घर में हो तो बड़े भाई का वहाँ जाना दोषावह है, पर यदि बड़ा भाई स्त्री के साथ हो, तो वहाँ छोटे भाई का जाना दूषित नहीं। इस से तुम हमारा कहना मानो और वन को न जाओ।"

युधिष्ठिर ने यह सब कुछ कहा और समझाया-बुझाया, पर अर्जुन ने एक भी न मानी। वे बोले —

"नियमभङ्ग करना पाप ही है, चाहे किसी कारण से क्यों न हो। जब तक हम उस का प्रायश्चित्त न कर डालेंगे, तब तक हमारी चित्तशुद्धि न होगी, इस से आप हमें न रोकें।"

यह कहकर अर्जुन वनवास के लिये चल दिये। बारह वर्ष के भीतर उन्होंने बड़े बड़े जङ्गलों, पर्वतों, नगरों, पुण्यक्षेत्रों और तीर्थों का पर्यटन किया। नागराजकन्या उलूपी, मणिपुर की राजकुमारी चित्राङ्गना और कृष्ण की बहिन, सुभद्रा, के साथ विवाह किया। फिर पुष्करतीर्थ में कुछ समय रहकर और वनवास के पूरे बरस बिताकर सुभद्रा को साथ लिये खाण्डव प्रस्थ को लौट आये।

पहले वे राजा युधिष्ठिर के पास गये। फिर ब्राह्मणों की पूजा रके द्रौपदी के पास आये।

द्रौपदी ने रमणी स्वभाव-सुलभ कुछ प्रणयकोप प्रकाश करते ए कहा —

"आप वहीं जाइये, जहाँ पर यादव नरेश-कुमारी सुभद्रा हों। र इस में आपका भी अधिक दोष नहीं, बात यों है कि, भारी ीज अच्छी तरह बाँध भी दी जाय, तोभी उस का बन्धन धीरे-ीरे ढीला ही पड जाता है।"

इसी तरह परिहास करती हुई द्रौपदी अर्जुन को तङ्ग करने गी। अर्जुन बार बार उस से क्षमा माँगने लगे।

अन्त में उन्होंने सुभद्रा को ग्वालिन के वेश में अन्त पुर भेजा। राङ्गना सुभद्रा उस वेश में औरभी सुन्दरी प्रतीत होने लगी। र में जाकर उसने कुन्ती के चरण छुए। कुन्ती ने उस का ाथा सूँघकर बार बार आशीर्वाद दिया। फिर सुभद्रा द्रौपदी के ास आई और चरण छूकर उस ने कहा —

"आज से मैं आप की दासी हुई।"

तब द्रौपदी ने उठकर उसे गले लगा लिया और कहा,— 'तुम्हारे पति का वैरी न रहे।"

सुभद्रा ने भी कहा, 'ऐसा ही हो।'

पाण्डव लोग और उन की माता अर्जुन के लौट आने से बहुत ासन्न हुए। द्रौपदी को तो परमानन्द ही हुआ।

कुछ दिनों के बाद सुभद्रा के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

वह स्वभावत निर्भय और मन्युमान (क्रोधयुक्त) था, इस से उस का नाम पड़ा अभिमन्यु। उस के उत्पन्न होने पर बड़ी खुशी मनाई गयी। युधिष्ठिर ने उस के जन्मदिन को एक अयुत गायें और बहुतसा सोना ब्राह्मणों को दान दिया। राज्य की प्रजा उस राजकुमार को देखकर वैसे ही पुलकित हुई, जैसे शरदृऋतु की पूर्णिमा के चाँद को देखकर सब को प्रसन्नता होती है। शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भाँति वह राजगृह में बढने लगा। फिर अर्जुन से उस ने धनुर्वेद और विज्ञान इत्यादि प्रधान-प्रधान शास्त्रों की शिक्षा पाई। धनञ्जय उस पुत्र को हथियार चलाने में अपने बराबर और अन्य बातों में कृष्ण सदृश देखकर अत्यन्त ही आह्लादित हुए।

इन्हीं दिनों द्रौपदी के भी एक एक करके पाँच पुत्र हुए। युधिष्ठिर के पुत्र का नाम प्रतिविन्ध्य, भीमसेन के पुत्र का नाम सुतसोम, अर्जुन के पुत्र का नाम श्रुतकर्मा, नकुल के पुत्र का नाम शतानीक और सहदेव के आत्मज का नाम श्रुतसेन पड़ा। द्रौपदी के पुत्रों ने क्रमानुसार एक एक बरस बाद जन्म ग्रहण किया। उन सब भाइयों में बड़ा सौहार्द था। अभिमन्यु को वे लोग उसी तरह पूज्य समझते थे, जैसे भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव धर्मात्मा युधिष्ठिर को। समुचित समय पर पुरोहित धौम्य ने उन के जात कर्म, चूड़ा संस्कार और उपनयन आदि किये। वेदाध्ययन कर चुकने पर, अर्जुन से उन्होंने धनुर्वेद और अस्त्रविद्या की शिक्षा प्राप्त की।

कुन्तीदेवी, द्रौपदी, सुभद्रा इन सब बालकों को देखकर नित्य प्रति रहतीं और ईश्वर से उनकी मङ्गलकामना किया करतीं

दसवाँ परिच्छेद ।

राजसूय-यज्ञ ।

अर्जुन और कृष्ण में बड़ी मित्रता थी। खाण्डव वन जलाने के लिये अग्निदेव बहुत दिनों से इच्छुक थे, इस से उन्होंने अर्जुन और कृष्ण से यह सहायता चाही कि, जब हम खाण्डव वन को जलावें तो कोई भी जीव जन्तु जङ्गल से भगकर जाने न पावे और जीता न बचे। अर्जुन और कृष्ण इस बातपर राजी हो गये। अग्नि ने वरुण से एक प्रचण्ड धनुष, कभी नाश न होनेवाले दो तरकस और बन्दर के निशान वाला रथ अर्जुन को दिला दिया और कृष्ण को सुदर्शनचक्र दिया। अर्जुन धनुषबाण और कृष्ण चक्र लेकर अग्नि की इच्छा पूरी करने के लिये खड़े हो गये। अग्नि ने खाण्डव वन जलाना आरम्भ कर दिया। इन्द्रदेव ने मेघ बरसाकर और अपने अस्त्र शस्त्रों द्वारा अग्नि से प्राणियों की रक्षा करनी चाही, पर कृष्ण और अर्जुन के मारे उन की एक भी न चली। मय दानव भी उसी खाण्डव वन में रहता था। जब अग्नि प्रचण्ड हुई, तो उसने भागने का विचार किया, पर सामने ही श्रीकृष्ण उसे चक्र लिये हुए दिखाई दिये। उन के चक्र से डरकर वह अर्जुन के पैरों पर गिर पड़ा और प्राण-

दान चाहा। कृष्ण ने अपने सखा की शरण में आ जाने से उसे छोड़ दिया। कृतज्ञता-ऋण चुकाने के लिये, कृष्ण की अनुमति से, उसी समय दानव ने इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर के लिये एक ऐसे अद्भुत, दर्शनीय सभाभवन की रचना की, जिस के जोड़ की इमारत पृथ्वीतल पर न निकले।

एक दिन घूमते-घूमते नारदमुनि फिर इन्द्रप्रस्थ को आये। मय-दानव की बनाई हुई उस सभा को देखकर वे बड़े आनन्दित हुए। उन्होंने कहा —

"महाराज! मणियों से जड़ी हुई तुम्हारी इस सभा के समान दूसरी सभा इस लोक में कहीं नहीं है। इस की तुलना केवल देवताओं की सभा से हो सकती है।"

इस के बाद उन्होंने सुरलोक के स्वामी इन्द्र की सभा में रहने वाले पुण्यात्मा राजा हरिश्चन्द्र का हाल कहा।

राजा हरिश्चन्द्र का हाल सुन चुकने पर युधिष्ठिर ने पूछा —

"महर्षे! राजा हरिश्चन्द्र ने कौनसा ऐसा पुण्यकार्य किया था जिस के बल से वे ऐसे उच्च पद के अधिकारी हुए?"

नारदजी बोले —"राजराजेश्वरों के करने योग्य राजसूय यज्ञ है धर्मराज! जो राजा चारों दिशाओं के राजाओं को अपने अधीन करके यह यज्ञ करता है, वही उस उच्चपद का अधिकारी होता है"

यह सुनकर राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने की ठानी पहले तो उन्होंने अपनी प्रजा को भली भाँति प्रसन्न किया, फि अपने मन्त्रियों और भाइयों से सलाह ली, जब सब सहमत

कि, तो उन्होंने अपने परमहितैषी श्रीकृष्ण को इस विषय में सलाह लेने के लिये बुला भेजा।

श्रीकृष्ण शीघ्र ही इन्द्रप्रस्थ आये और महाराज युधिष्ठिर की मनोनीत बात सुनकर उन्होंने कहा —

"महाराज आप में सब गुण हैं और आप इस यज्ञ के करने के पात्र हैं, पर बिना सम्राट् बने यह यज्ञ हो नहीं सकता और इच्छानुसार सम्राट् बनने में इस समय एक बाधा है। परमप्रतापी मगधराज जरासन्ध का प्रभाव इस समय बढा चढा है। उस के दामाद कंस को जब से हमने मारा है, तब से वह हम से रुष्ट है। चन्देरी नरेश शिशुपाल और यवन नरेश भगदत्त को भी उसने अपने अधीन कर लिया है। बिना मगधराज को मारे, सम्राट् होने की आशा करना आप के लिये व्यर्थ है।"

युधिष्ठिर ने कहा —

"हम को सब से बडा सहारा आप का है,—आप जो कुछ कहेंगे, वही हमें मान्य होगा।"

तब श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम आपस में सलाह करके युधिष्ठिर की आज्ञा ले, स्नातक ब्राह्मणों के समान कपडे पहनकर, कार्यसिद्धि की अभिलाषा किये, मगधदेश की ओर चल पडे और वहाँ पहुँचकर, कौशल से भीमसेन ने जरासन्ध को मार डाला और मगधराज के रथ पर सवार होकर सब लोग खाण्डवप्रस्थ लौट आये।

लौटकर श्रीकृष्ण ने कहा —

"अब आप निष्कण्टक राजसूय-यज्ञ कर सकते हैं। इस के लिये चारों दिशाओं में राजाओं से कर वसूल करने और अधीनता स्वीकार कराने के लिये अपने पराक्रमी बन्धुओं को भेजिये।"

तब युधिष्ठिर की आज्ञा से भीमसेन पूर्व दिशा को, अर्जुन उत्तर को, नकुल पश्चिम को और सहदेव दक्षिण को गये।

इन की दिग्विजय-यात्रा का फल मनोनीत हुआ। किसी ने बिना युद्ध किये और किसी-किसी ने युद्ध में हारकर, वश्यता स्वीकार कर ली और कर दे दिया। पूर्ण रूप से विजयी होकर अनन्त धनराशि और यज्ञ सामग्री लेकर, वे कुशलता पूर्वक लौ- आये।

फिर क्या था, राजसूय यज्ञ में पधारने के लिये सब राजाओं को निमन्त्रण दिया गया और यज्ञ की तैयारी होने लगी।

शुभ अवसर पर अनेक देशों के नृपति उस यज्ञ में सम्मिलि होने के लिये पधारे। सिन्धु नरेश जयद्रथ, सपुत्र विराट् राज सपुत्र पाञ्चालराज द्रुपद, सपुत्र शिशुपाल, बलराम आदि यादववी और काश्मीर-नरेश इत्यादि-इत्यादि नृपतिगण भाँति भाँति के उ हार लाये।

भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य इत्यादि वयोवृद्ध पुरुषों औ कर्ण, शकुनि इत्यादि मित्रमण्डली को साथ लेकर महाराज दुर्य धन भी पधारे।

राजा युधिष्ठिर ने अपने अतिथियों का बड़ा सत्कार किय इस के बाद उन्होंने दु:शासन को खाने की चीजों का, अश्वत्थाम

को ब्राह्मणों की सेवा का, सञ्जय को राजाओं की सुश्रूषा का, दुर्योधन को आया हुआ उपहार लेने का, कृपाचार्य को रत्नादि की निगरानी का और कृष्ण को ब्राह्मणों के पैर धोने का काम सौंपा।

फिर उचित समय आने पर, भीष्म की राय से, सब से पहले कृष्ण को अर्घ्य दिया गया, जिसे उन्होंने शास्त्ररीति से ग्रहण किया।

चन्देरी के राजा शिशुपाल को कृष्ण का इस भाँति पूजित होना बहुत बुरा लगा। उसने कहा —

"इतने बडे प्रबल पराक्रमी राजाओं के होते हुए, कृष्ण को पहले क्यों अर्घ्य दिया गया? वे अपने किस गुण के कारण पूज्य हैं?"

फिर उसने कृष्ण की बडी निन्दा की और उन को ही सम्बोधन करके कहा —

"हे कृष्ण! भीरु और अज्ञ होने के कारण तुम को यह पूजा पाण्डवों ने दी है। तुम कभी इस के योग्य नहीं। तुम मन में भले ही पुलकित हो जाओ, पर तुम्हारी दशा ठीक वैसी ही है, जैसी मालिक की दृष्टि बचाकर घी खा जाने वाले कुत्ते की। इस से नृपतियों का कुछ भी अपमान नहीं हुआ। तुम्हारी यह पूजा तुम्हारी ही विडम्बना है।"

इसी तरह की और बातें भी वह कहता रहा। युधिष्ठिर के प्रार्थना करने और समझाने पर भी वह नहीं माना। कुरुकुल-पुङ्गव भीष्म को भी उसने सैकड़ों बुरी बातें कहीं। फिर उसने कृष्ण को खुले खुले ललकारकर कहा —

"अरे कंस के दासपुत्र! आ, इधर आकर हम से युद्ध कर। तुझे दास समझकर ही जरासन्धने तेरे साथ युद्ध नहीं किया। पर आज मेरे हाथों से तेरा किसी भाँति भी निस्तार नहीं है।"

कृष्ण बहुत सह चुके थे। क्षमा की हद हो चुकी थी, अब वे चुप न रह सके, उन का रक्त उबल उठा, उन्हें क्रोध चढ़ आया और वे बोले —

"हे नृपतियो! आप सब के सामने इसने हमारा महा अपमान किया है। इस का एक भी अपराध ऐसा न था, जो मृत्युदण्ड के योग्य न होता, पर इस की माता से हम ने वादा किया था कि, हम इस के सौ अपराध क्षमा कर देंगे। पर आज इसके सौ अपराध पूरे हो चुके, आज मृत्यु इस के सिर पर नाच रही है।"

यह कहकर उन्होंने चक्र उठा लिया और शिशुपाल का सिर काट डाला।

कृष्ण का तेज देखकर सब लोग अवाक् रह गये। युधिष्ठिर ने भाइयों को उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया करने की आज्ञा देकर उस के पुत्र को चन्देरी की गद्दी दे दी।

यज्ञ का कार्य समाप्त होने पर युधिष्ठिर ने अश्वभृथ नाम का आखिरी स्नान किया। मन्त्रपूत जल से अपने केश सिक्त करके द्रुपदराजनन्दिनी ने भी स्नान करके कृतकृत्यता मानी।

यह सब कुछ हो चुकने पर अन्य नृपतिगण और कृष्ण अपने घर वापिस गये, परन्तु अपने मामा शकुनि के सा



शिशुपाल-वध ।

"उन्होंने चक्र उठा लिया और शिशुपाल का सिर काट डाला।"

(पृष्ठ [illegible])



दुर्योधन का माया भवन में गिरना।
"उन्होंने आगे ज्योंही पैर रखा, त्योंही उस सरोवर में धम से

मय दानव की बनाई हुई सभा को देखने के लिये महाराज दुर्योधन रह गये।

दूसरे दिन वे घूम घूमकर सभा देखने लगे। मामा शकुनि साथ थे। युधिष्ठिर महाराज की आज्ञा से उन के भाई उन्हें वहाँ सब कुछ दिखला रहे थे। सभा का दृश्य अद्भुत, कारीगरी प्रशसनीय और ठाट बाट मनोहर था। ऐसी सज-धज दुर्योधन ऐसे तेजस्वी राजा ने भी पहले कभी न देखी थी।

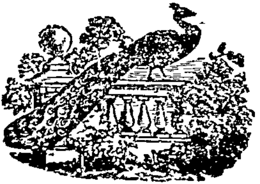
एक घर में स्फटिक के फर्श पर स्फटिक ही के पत्तों वाले कमल देखकर उन्होंने उन्हें जल कमल समझा। उन का यह भ्रम ताडकर नौकर चाकरों के साथ भीम हँस पडे।

दूसरे स्थान पर स्फटिक की बनी हुई दीवार को दरवाजा समझकर उन्होंने बाहर निकलने का प्रयास किया। ऐसा करने से उन के माथे पर बडी चोट आ गई, उन्हें चक्कर आ गया और वे गिरना ही चाहते थे कि, सहदेव ने आकर उन्हें रोक लिया। इस से वे औरभी लज्जित हुए।

आगे चलकर एक जगह सरोवर के स्वच्छ जल को उन्होंने स्फटिक समझ लिया। एक बार स्फटिक को जल समझकर उन्हें धोखा हो चुका था। उसी भ्रान्ति से वे सचमुच जल को स्फटिक समझ बैठे। उन्होंने सोचा कि,यह स्फटिक ही है जो जल सा दिख पडता है। इस धारणा से ज्योंही उन्होंने आगे पैर रखा,त्योंही कपडे पहने हुए उस सरोवर में वे धम से गिर पडे। भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और उन के भृत्यवर्ग इस बार खूब

ही हँसने लगे। द्रौपदी ने भी खूब हँसी उडाई और पाण्डव रमणियाँ भी हँस पडी। युधिष्ठिर की आज्ञा से तत्क्षण ही सेवकों ने अच्छे अच्छे दूसरे वस्त्र लाकर उन को बदलने को दिये।

बार बार इस प्रकार हँसा जाना दुर्योधन को बहुत ही बुरा लगा। विशेषकर द्रौपदी की हँसी उन के हृदय में काँटे की भाँति चुभ गई। उन्हों ने मन ही-मन कहा—कुछ भी हो, इस का बदला जरूर लेंगे। प्रतिशोध की आग उन के हृदय में भडक उठी, पर उस समय वे चुप हो रहे। मौन धारण करके पूरा बदला लेने का विचार ही उन के हृदय में दृढ होता गया। दूसरे दिन अपने मामा शकुनि के साथ वे हस्तिनापुर को लौट आये।



ग्यारहवाँ परिच्छेद।

जुए का खेल और द्रौपदी दाँव पर।

प्रतिशोध लेने की वेदना बड़ी बुरी होती है। अपमान का बदला लेने की आग जिसके हृदय में लग जाती है, वह चैन नहीं पाता। खाते पीते, उठते बैठते, सोते-जागते उसे एक ही ध्यान रहता है। उस के हृदय में, उस के नेत्रों के सामने, प्रत्येक स्थल पर, उसे प्रतिशोध का चित्र देख पड़ता है। कभी कभी प्रतिशोध की बात जन्मान्तर तक पीछा नहीं छोड़ती। किसी ने किसी की किसी बात से रुष्ट होकर प्रतिशोध लेने की इच्छा की और दैवात् वह मर गया, पर प्रतिशोध का चित्र उस के मन पटल पर अङ्कित रहा। जब दूसरे जन्म में, उस की आत्मा अवश्य ही ऐसे पार्थिव शरीर में जन्म ग्रहण करेगी, जिस के द्वारा पूर्व व्यक्ति के साथ प्रतिशोध लेने के लिये उसे सुलभ साधन मिलें। प्रतिशोध की आग प्रतिशोध लेकर ही बुझती है, अन्यथा नहीं। प्रतिशोध में बड़ा बल होता है। छोटे से छोटे जीव की भी आत्मा प्रतिशोध के नाम पर सशक्त हो उठती है। चिन्ता, भावना और पूर्वस्मृति प्रतिशोध के मित्र और सहायक हैं।

इन्द्रप्रस्थ से लौटकर दुर्योधन बेचैन हो गये। उन की बाह्य क्रियाशीलता नष्ट हो गयी, पर उन का मन बराबर काम करता रहा। अपमान का बदला चुकाने की वे सैकडों तरकीबें सोचते रहे। प्रतिशोध लेने के लिये पिता, माता, पुत्र, स्त्री, मित्र, धन ऐश्वर्य, राजलक्ष्मी और अपने पार्थिव शरीर को भी स्वाहा करं का उन्होंने दृढ सङ्कल्प कर लिया। उन्होंने सोच लिया कि, चाहे कुलक्षय ही क्यों न हो जाय, द्रौपदी और पाण्डवों से अपमान का बदला लेना ही होगा। उन्होंने निश्चय कर लिया कि, इसी जन्म में, इसी पार्थिव शरीर के द्वारा, प्रतिशोध ले लेंगे।

अन्त में अपने मामा शकुनि की सम्मति से उन्होंने पाण्डवों को हस्तिनापुर बुलाकर जूआ खेलने की राय स्थिर की। उन्हें मालूम था कि, युधिष्ठिर को जूआ खेलने का चसका है, आमन्त्रित किये जाने पर वे जूआ अवश्य खेलेंगे। साथ ही उन्हें यह भी विश्वास था कि, मामा शकुनि जूआ खेलने में बहुत सिद्धहस्त हैं, उन को पाँसे फेंकने का इतना अभ्यास है कि, भारतवर्ष में कोई भी खिलाडी उन से बाज़ी नहीं ले जा सकता। वे अपने अभ्यास और हस्तकौशल से जैसा चाहें वैसा दाँव फेंक सकते हैं। इसी सहारे से यह निश्चित किया गया कि, दुर्योधन की ओर से गान्धारराज शकुनि जूआ खेलकर युधिष्ठिर से उन की सारी राजलक्ष्मी जीत लेंगे। निर्धन होकर युधिष्ठिर का रहना और सम्राट् पद से च्युत हो जाना, पाण्डवों और द्रौपदी के असीम दुःख का कारण होगा। इन्द्रप्रस्थ में किये गये अपमान का यही प्रशस्त परिशोध है।

शकुनि और दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से मौका पाकर अपना प्रस्ताव निवेदन किया। पहले तो धृतराष्ट्र इस पर राजी न हुए, परन्तु जब दुर्योधन ने कहा कि,ऐसा न होने पर हम प्राण त्याग कर देंगे, तब वे सहमत हुए। विदुर और भीष्म इत्यादि ने यद्यपि इस के विरुद्ध सलाह दी और जूए को अनर्थ का घर बतलाया, पर धृतराष्ट्र ने पुत्र के अनुचित स्नेह में आकर एक भी न सुनी। उन्होंने विदुर से कहा —

"वत्स! दैव ही सब घटनाओं का प्रधान कारण है। यदि दैव अनुकूल होगा, तो कुछ भी अनिष्ट होने की सम्भावना नहीं। तुम इन्द्रप्रस्थ जाकर युधिष्ठिर को हमारी तरफ से जूआ खेलने के लिये न्योता दे आओ।"

विदुर के मन में न थी, फिर भी लाचार होकर उन्हें जाना पड़ा। पाण्डवों की राजधानी में पहुँचने पर, युधिष्ठिर ने उन का बड़ा ही स्वागत और सत्कार किया। श्रान्त होने के बाद विदुर ने कहा —

"पुत्रों और सम्बन्धियों समेत कुरुराज धृतराष्ट्र कुशल से हैं। उन्होंने आप के कुशल समाचार पूछे और जूआ खेलने के लिये भाइयों समेत आप को न्योता दिया है।"

युधिष्ठिर बोले —

"जूए का खेल अनर्थ की जड़ है। इस से कलह उत्पन्न होने का भय रहता है। इसलिये हम आप से पूछते हैं कि, हमें क्या करना चाहिये।"

विदुर बोले –

"हम भली भाँति जानते हैं कि, द्यूत सर्वथा सर्वदा अनिष्टकारी है। इस के लिये हमने धृतराष्ट्र को मना किया था, पर उन्होंने नहीं माना। अब आप स्वयम् विचार करके जो कुछ उचित हो करें।"

युधिष्ठिर ने कहा —

"खेलने के लिये वहाँ द्यूतकर्म प्रवीण और कौन-कौन लोग आने वाले हैं और आयोजन कैसा है ?"

बुद्धिमान् विदुर ने उत्तर दिया —

"इस खेल के लिये वहाँ तुम्हारी सभा की टक्कर लेने वाली एक सभा बनाई गयी है। सुनते हैं, जूआ खेलने में चतुर चित्र सेन, राजा सत्यव्रत और पुरमित्र भी आने वाले हैं। यह भी सुना है कि, सुबल-पुत्र शकुनि इस कार्य के प्रबन्धकर्त्ता होंगे।"

यह सुनकर और सोच विचारकर युधिष्ठिर ने कहा –

"यह जानकर भी कि आ जूअवगुणों की खान है। पूज्य चचा धृतराष्ट्र के बुलाने और विशेषकर आप के आने के कारण, हम निमन्त्रण स्वीकार करते हैं। हमारा नियम है कि, हमें कोई खेलने के लिये बुलाता है, तो हम अवश्य जाते हैं नहीं तो कपटी और धूर्त्त शकुनि के साथ खेल में सम्मिलित होने के लिये हम कभी राजी न होते।"

दूसरे दिन युधिष्ठिर इत्यादि पाँचों भाई द्रौपदी आदि रमणियों साथ हस्तिनापुर को चल पड़े।

हस्तिनापुर पहुँचने पर उन का बड़ा आदर सत्कार हुआ। तराष्ट्र ने स्नेहपूर्वक उन का माथा सूँघा और आशीर्वाद दिया।

सवेरे सभा में द्यूत का खेल आरम्भ हुआ। दुर्योधन की ओर े शकुनि, युधिष्ठिर के साथ खेलने को बैठे। जूआ आरम्भ हुआ।

युधिष्ठिर ने कहा —

"राजन्! यह बड़ा कीमती, मणियों से जड़ा हुआ, सोने का हार हम दाँव पर रखते हैं। तुम क्या रखते हो?"

दुर्योधन बोले —

"हमारे पास भी बहुत मणि और अन्य धन है, पर उस के लिये हमें गर्व नहीं। खैर, उन्हीं को हम दाँव पर रखते हैं, आप जीतिये।"

शकुनि ने पाँसे फेंकते ही कहा, "यह जीते" और उस हार को जीत लिया।

युधिष्ठिर ने कहा —

"यह तो दाँव की बात है। खेल में हार-जीत दोनों ही हैं। अच्छा, इस बार एक लाख आठ हज़ार सोने से भरे हुए सन्दूक, अपना असरय खज़ाना और ढेरों सोना हम दाँव पर रखते हैं।"

शकुनि ने पाँसे फेंककर उसे भी जीत लिया। तब युधिष्ठिर ने कहा —

हमारे यहाँ बहुतसी सुन्दरी, नौजवान दासियाँ हैं। वे तरह तरह के सोने के गहने और कीमती मालाएँ पहने हैं। नृत्य, गीत इत्यादि चौंसठ कलाओं में वे सुशिक्षित हैं। सेवा करने में

और आज्ञापालन में प्रवीण हैं। उन्हीं को इस वार हम दाँव पर रखते हैं।"

शकुनि ने पाँसे फेंके। इस वार भी शकुनि ही की जीत हुई। युधिष्ठिर ने कहा —

"हमारे एक हजार दास हैं। वे चतुर, विद्या-सम्पन्न, बुद्धिमान और नवयुवक हैं। वे दिन रात अतिथियों को भोजन कराने में समर्थ हैं। इस वार हमने उन्हें दाँव पर रक्खा।"

शकुनि ही की फिर जीत हुई। इस के बाद युधिष्ठिर हाथी, घोड़े, रथ, गाड़ी सभी कुछ दाँव पर रखते और हारते गये। यहाँ तक कि, उन्होंने अपना सर्वस्व दाँव पर रख दिया। शकुनि एक बार भी पाँसे फेंकने में न चूके।

तब विदुर से न रहा गया, वे बोल उठे —

"महाराज! जूआ बड़ी बुरी चीज है। अब इस खेल को बन्द करा दीजिये, नहीं तो फल अच्छा न होगा। शकुनि छल और दगाबाजी से जिस तरह खेल खेल रहे हैं, वह हम भली भाँति जानते हैं। उन से कहिये कि वे अपने घर जायँ। आप घर बैठे विपद् न बुलाइये।"

दुर्योधन को विदुर की बातें बड़ी बुरी लगीं। शकुनि पर खुले-खुले विदुर का आक्षेप वे न सह सके। उन्होंने गरजकर कहा —

"हे विदुर! हम आप की बातें भली भाँति जानते हैं। हमें यह मालूम है कि, आप पाण्डवों के तरफदार हैं। आप हमें उपदेश

न दीजिये, हम आप की बातें नहीं सुनना चाहते। यह समझ लीजिये, कि आप का अब चुपचाप रहना ही भला है।"

धृतराष्ट्र इस समय मौन ही रहे। दुर्योधन और विदुर का विवाद सुनकर उन से कुछ भी कहते सुनते न बना।

इधर युधिष्ठिर को उस समय खेल ही खेल सूझ रहा था। उन्होंने विदुर की बातें सुनी ही नहीं। इस बार उन्होंने नकुल और सहदेव को दाँव पर रख दिया।

शकुनि ने कहा, "यह जीते" और पाँसे फेंक दिये। युधिष्ठिर फिर हारे।"

तब शकुनि ताने मारते हुए कहने लगे —

"मालूम होता है, माद्री के पुत्र आप को कम प्यारे हैं। इसी से आप उन्हें हार बैठे।"

युधिष्ठिर बोले —

"सौबलेय! भाइयों में भेदभाव उत्पन्न कराने वाली बातें न करो। हमारे सब भाई हमें समभाव से प्यारे हैं। तुम ऐसी बातें कहकर अधर्म मत करो।"

इस के बाद उन्होंने कहा —

"जो नाव की तरह हमें समर सागर से पार करते हैं, शत्रुओं के नाश करने में जो सर्वथा समर्थ हैं, पृथिवी तल पर जिन के जोड़ का दूसरा धनुर्द्धर नहीं, जिन्हें दाँव पर रखने में हमें सङ्कोच होता है, हम उन राजकुमार अर्जुन को इस बार दाँव पर रखते हैं।"

शकुनि ने फिर पाँसे फेंके और युधिष्ठिर ही फिर हारे।

तब युधिष्ठिर ने भीमसेन को भी दाँव पर रख दिया और उन्हें भी हार गये।

अपने चारों भाइयों को हारकर युधिष्ठिर को बडा दुःख हुआ, पर खेलते हुए उन्हें होश न रहा। उन्होंने अपने आप को भी दाँव पर रख दिया।

इस बार भी युधिष्ठिर की हार और दुर्योधन के लिये खेलने वाले शकुनि की जीत!

युधिष्ठिर को भी जीतकर शकुनि ने कहा —

"तुमने अपने आप को हारकर बडा पाप किया। इससे बढकर और अधर्माचरण क्या हो सकता है? अभी तुम्हारी प्रिया भार्या द्रौपदी बाकी है,उसे दाँव पर रखकर, तुम अपने आप को छुडा लो।"

युधिष्ठिर ने कहा —

"हे सुबलनन्दन! जो न बहुत छोटी और न बहुत बडी, न बहुत दुबली और न बहुत मोटी है, जिस की सुन्दरता लक्ष्मी के समान है, जिस के बाल लम्बे-लम्बे काले और घुँघराले हैं, जिस की दोनों आँखें शरदऋतु के पद्मपत्र की भाँति सुन्दर हैं, जिस के हाथ में सदैव शरदऋतु का कमल शोभा पाता है, जो अनृशंसता, सुरूपता, अनुकूलता, सुशीलता, प्रियवादिता इत्यादि अनेक गुणों से भूषित है, जो रात में सब के सो जाने पर सोती और प्रातःकाल सब के जागने के पहले ही जाग उठती है, जिस का स्वेदयुक्त मुखमण्डल मल्लिका की भाँति है, जिस का मध्यदेश वेदी की ५ है, उस सर्वाङ्गसुन्दरी द्रौपदी को भी हमने दाँव पर रखा।"

हद हो गयी ! धर्मात्मा युधिष्ठिर ने अपनी प्यारी सहधर्मिणी
ो भी दाँव पर रख दिया। यह सुनते ही सभा में बैठे हुए वृद्ध
ोग उन्हें धिक्कारने लगे। सारी सभा क्षणभर के लिये क्षुब्ध हो
ठी। राजा लोग शोचसागर में डूब गये। भीष्म, द्रोण, कृप
त्यादि महात्माओं के शरीर से पसीना निकलने लगा। विदुर
पना मत्था पकड़, नीचे की ओर मुँह किये, साँप की तरह
ं श्वास छोड़ने लगे। कर्ण, दुःशासन इत्यादि के हर्ष की सीमा
रही। अन्य उपस्थित लोग रोने लगे।

शकुनि ने फिर पाँसे फेंके—युधिष्ठिर द्रौपदी सरीखी देवी को
ी हार गये। हा शोक !



बारहवाँ परिच्छेद ।

द्रौपदी का केशाकर्षण और अपमान ।

ज्यों ही युधिष्ठिर द्रौपदी को हार गये, त्योंही उन्होंने मुँह नीचा कर लिया। उस समय दुर्योधन ने कहा,—

"विदुर! तुम शीघ्र ही महलों के भीतर जाओ और द्रौपदी को ले आओ। पुण्यशीला कृष्णा यहाँ आकर दासियों के साथ हम लोगों के घर में बुहारी लगावे।"

विदुर ने कहा —

"दुर्योधन! तुम्हें होश नहीं है, तुम मतवाले हो रहे हो, तुम्हा बुरे दिन आने वाले हैं, इसी से तुमने हिरन होकर सिंह को कुपि करने का साहस किया है। अब जान पड़ता है कि, यह कुरु शीघ्र ही ध्वंस हो जायेगा।"

दुर्योधन ने विदुर की बात पर फिर भी कुछ ध्यान न दि और 'धिक्' कहकर उनकी अवहेलना कर दी। फिर उन्होंने स में बैठे हुए सूतपुत्र से कहा —

"हे सूतपुत्र! तुम शीघ्र जाकर द्रौपदी को ले आओ, पाण्डवों से तनिक भी डर नहीं है। विदुर पाण्डवों से ड और हमारा भला नहीं चाहते, इसी से ये ऐसी बातें करते हैं।

सूतपुत्र, दुर्योधन के आदेश से शीघ्र ही पाण्डवों के निवासगृह में, जहाँ पर द्रौपदी थी, जा पहुँचा। उसने द्रौपदी से कहा —

"हे द्रुपदनन्दिनि! युधिष्ठिर महाराज जूए के खेल में लीन होकर तुम्हें भी दाँव पर लगा बैठे और हार गये। दुर्योधन महाराज ने तुम्हें जीत में पाया है, अत तुम पर उनका पूर्ण रीति से अधिकार है। इससे हे याज्ञसेनि! तुम्हें राजा दुर्योधन के घर में रहकर दासी की भाँति काम करना होगा, यही उनकी आज्ञा है। इस समय तुम हमारे साथ सभा में चलो। हम तुम्हें लेने के लिये आये हैं।"

द्रौपदी ने कहा —

"हे सूतपुत्र! तुम ऐसी अण्डबण्ड बातें क्यों कहते हो? कहीं कोई राजपुत्र स्त्री को भी दाँव पर रखकर जूआ खेलता है? निश्चय ही जान पडता है कि, राजा जूए के नशे में मत्त हो गये हैं। क्या दाँव पर लगाने के लिये और कोई वस्तु न थी?"

सूतपुत्र ने कहा —

"हे पतिव्रते! राजा युधिष्ठिर, राज्य, धनकोश, गज, हय, रथ सब कुछ हार चुकने पर, दास दासियों को, फिर अपने भाइयों को, अनन्तर अपने आप को और उसके बाद तुम्हें दाँव पर रखकर तुम्हें भी हार बैठे।"

द्रौपदी ने कहा —

"हे सूतपुत्र! तुम सभा को लौट जाओ, वहाँ जाकर महाराज युधिष्ठिर से पूछो कि, वे पहले अपने आप को या हम को दाँव पर

रखकर हारे हैं ? उनसे यह पूँछकर लौट आओ। धर्मराज कैसे हारे हैं, यह हाल जानकर हम तुम्हारे साथ चलेंगी।"

द्रौपदी के कहने के अनुसार सूतपुत्र सभा को लौट आया। सभा में बैठे हुए नृपतियों के सामने ही वह महाराज युधिष्ठिर से कहने लगा —

'हे धर्मराज! द्रौपदी देवी ने आप से पूछा है कि, आपने क्योंकर उन्हें जूए में हार दिया और पहले अपने आप को दाँव पर रक्खा या उन्हें दाँव पर रक्खा था ?"

युधिष्ठिर सूतपुत्र की यह बात सुनकर चुप हो रहे। उन्होंने भला बुरा कुछ भी न कहा—वे कुछ कह ही न सके।

तब राजा दुर्योधन ने कहा —

"हे सूतपुत्र! पाञ्चाली को जो कुछ पूछना हो, यहाँ आकर पूछे। सभा में बैठे हुए सब लोग उसका और धर्मराज युधिष्ठिर का सवाल-जवाब सुनें।"

दुर्योधन की आज्ञा से सूतपुत्र फिर लौट गया। उसने जाकर द्रौपदी से कहा —

"हे राजपुत्रि! सभा में तुम्हारा फिर बुलावा है! जान पड़ता है, समूल कुरुकुल का नाश होने वाला है। पापात्मा दुर्योधन ऐश्वर्य के नशे में मत्त होकर तुम्हें सभा में बुलाना ही चाहता है।"

द्रौपदी ने कहा —

"हे सूतनन्दन! विधाता को यही मञ्जूर है। कुछ भी हो इस जगतीतल में धर्म ही सब से श्रेष्ठ है, मैं उसी धर्म की रक्षा

करूँगी, धर्म रक्षित होने से अवश्य ही मुझे शान्ति मिलेगी। मेरी यही प्रार्थना है कि, कौरवगण कभी धर्म से विमुख न हों। हे सूतपुत्र! तुम सभा में जाकर सभासदों से पूछ आओ कि, धर्म पूर्वक मुझे क्या करना चाहिये? वे लोग नीतिज्ञ और धर्मवेत्ता हैं, जो कुछ वे मेरे लिये निर्धारित करेंगे, निश्चय पूर्वक मैं वही करूँगी।"

याज्ञसेनी के कहने से सूतपुत्र सभा में फिर लौट आया। उसने सभासदों से द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर माँगा।

उसकी बात और द्रौपदी का प्रश्न सुनकर, सब सभासद नीचे मुँह लटकाये, चुप बैठे रहे। दुर्योधन का अतिशय आग्रह जानकर किसी ने कुछ न कहा। तब दुर्योधन के मन का अभिप्राय जानकर युधिष्ठिर ने द्रौपदी को कहला भेजा कि, एकवस्त्रा रजस्वला द्रौपदी रोती हुई अपने ससुर के पास चली आवे।

धर्मराज के आदेशानुसार दूत ने जाकर द्रौपदी से उनकी आज्ञा कह सुनाई।

इधर पाण्डव लोग बहुत ही दुखित हुए। उन्हें शोकाकुल देखकर दुर्योधन को अत्यन्त आनन्द हुआ। उसने सूतपुत्र से कहा —

"हे सूतपुत्र! तुम द्रौपदी को यहीं ले आओ। कौरवगण उसके सामने ही उसके प्रश्न का उत्तर देंगे।"

सूतपुत्र दुर्योधन का नौकर था, परन्तु द्रौपदी के डर से मान-अपमान की परवा न करके, उसने सभ्यगण से फिर पूछा —

"हम जाकर द्रौपदी से क्या कहें?"

सूतपुत्र के ऐसा कहने पर दुर्योधन को उस पर क्रोध हो आया। अपने भाई दुःशासन को बुलाकर उन्होंने कहा:—

"हे वत्स दुःशासन! यह डरपोक, नीच, सूतपुत्र भीमसेन से डरता है। तुम स्वयं जाकर याज्ञसेनी को यहाँ ले आओ। अब शत्रु लोग तुम्हारा कुछ भी नहीं कर सकते।"

दुरात्मा दुःशासन दुर्योधन की आज्ञा पाते ही आँखें लाल करके, द्रौपदी के निवास स्थान पर जा पहुँचा। वहाँ जाकर उसने द्रौपदी से कहा:—

'हे पाञ्चालि! तुम्हारे पति तुम्हें जुए में हार गये हैं। तुम हमारे साथ चलकर, लाज छोड, दुर्योधन को देखो। हे कमल-नयने! अब तुम कौरवों की सेवा करो। हम लोगों ने तुम्हें धर्मपूर्वक पाया है। तुम सभा को चलो।"

दुरात्मा दुःशासन की बातें सुनकर दुःख और डर के मारे द्रौपदी वहाँ चली गयी, जहाँ राजमाता गान्धारी आदि थीं। दुःशासन वहाँ भी गरजता हुआ पहुँचा और द्रौपदी के पास जाकर उसने उसके बाल पकड लिये।

आहा! जो केश राजसूय यज्ञ के अश्वभृथ स्नान के समय मन्त्रों द्वारा पवित्र जल से सिक्त हुए थे, उन्हीं केशों को दुरात्मा दुःशासन खींचने लगा। पतियों के रहते हुए भी द्रौपदी को अनाथ स्त्री की तरह पकडकर वह सभा की ओर ले चला।

जैसे तेज वायु चलने से केले का पत्ता काँप उठे, उसी तरह काँपते हुए, लम्बे लम्बे केशों वाली द्रुपदनन्दिनी कृष्णा ने, नम्रता-पूर्वक दुःशासन से कहा —

"हे दुःशासन ! हम रजस्वला हैं। केवल एक वस्त्र धारण किये हुए हैं। ऐसी दशा में हमें सभा में ले जाना किसी भाँति भी उचित नहीं।"

पर दुःशासन ने एक भी न सुनी। बालों को खींचते हुए वह बोला,—

"हे याज्ञसेनि ! तुम चाहे रजस्वला हो, चाहे केवल एक वस्त्र पहिने हुए हो अथवा वस्त्र ही न पहने हुए हो, कुछ भी हो, तुम जूए में जीती हुई हमारी दासी हो। इस समय और स्त्रियों की तरह तुम्हें भी दासियों के साथ रहना ही होगा।"

द्रौपदी इस तरह की तीखी बात सुनकर, अत्यन्त दुःखित हो, आत्मरक्षा के लिये, 'हा कृष्ण ! हा अर्जुन ! हा हरे !' कहकर रोने और चिल्लाने लगी।

दुःशासन के जोर से खींचने के कारण उस समय द्रौपदी के बाल बिखर गये और वह अधखुले कपड़ों हो गई। तब लज्जा और क्रोध से अभिभूत होकर उसने कहा —

"रे दुरात्मन् ! इस सभा में सब शास्त्रों के जानने वाले इन्द्र-तुल्य, क्रियानिष्ठ मेरे गुरुजन बैठे हुए हैं, उनके सामने मेरा इस दशा में जाना किसी तरह भी उचित नहीं है। रे नृशंस ! तू मुझे कपड़ों से रहित न कर। यदि इन्द्र इत्यादिक देवता भी तेरी सहायता करें, तोभी तू समझ ले कि, राजपुत्र लोग तेरे ऐसे अपराध को कभी क्षमा न करेंगे। महात्मा धर्मराज ने सदैव धर्म का अवलम्बन किया है। मैं स्वामी के वाक्य में कभी दोषा-



दु शासन द्वारा द्रौपदी का केशाकर्षण।

"दु शासन के जोर से खींचने के कारण द्रौपदी के बाल बि

तब भीष्म ने द्रौपदी से कहा —

"हे सुभगे! एक ओर तो परवश व्यक्ति दूसरे का धन दाँव पर रख नहीं सकता और दूसरी ओर स्त्री पर स्वामी का पूरा अधिकार है। दोनों ही बातें बराबर हैं और धर्म की गति सूक्ष्म है, इससे तुम्हारे प्रश्न का यथार्थ उत्तर देने में हम असमर्थ हैं। देखो, धर्मात्मा युधिष्ठिर सारी पृथिवी का परित्याग कर सकते हैं, परन्तु धर्म से एक पद भी विचलित नहीं हो सकते। विशेषत- उन्होंने अपने मुँह से स्वीकार किया है कि, "हम हार गये हैं" इस से हम तुम्हारे प्रश्न की यथार्थ विवेचना नहीं कर सकते। शकुनि जूए के खेल में बहुत चतुर हैं,उनके जोड का कोई खिलाडी नहीं, यह जानकर भी युधिष्ठिर इच्छापूर्वक उनके साथ खेले और अब तुम्हारा इतना अपमान देखकर भी चुप बैठे हुए कुछ नहीं बोलते, इसीसे हम तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं देते।"

द्रौपदी बडी चतुर थी। राजनीति की और धर्म की सूक्ष्म से सूक्ष्म बात का उसे ज्ञान था। बातें करना और किसी की बात का युक्तिपूर्ण उत्तर देना उसे खूब आता था। उसने कहा —

"जब अनार्य जुआरी लोगों ने धर्मराज को बुलाकर उनसे जूआ खेलने के लिये अनुरोध किया, तब यह कैसे कहा जा सकता है कि, वे इच्छापूर्वक जूआ खेले? पाण्डवश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर ने इन दुरात्माओं के छल कपट की बात समझे बिना ही इनके साथ जूए का खेल खेला है। सब दुष्टों ने एक साथ होकर उन्हें [illegible] दिया,तब पीछे से उन्होंने उनके कपट का हाल जाना है। कुछ

रोपण करने की इच्छा नहीं करती। रे दुरात्मन्! मैं रजस्वला हूँ, तू कुरुवंशी वीर पुरुषों के सामने मेरे बाल खींच रहा है और ये लोग तेरी निन्दा नहीं करते, इस से जान पड़ता है कि, ये भी इस कार्य का अनुमोदन करते हैं। हा! भरत के वंशजों के ध को धिक्कार है! क्षात्र-धर्म जानने वालों का चरित्र एकबारगी न हो गया है, इसी से सभा में बैठे हुए कुरुवंशी लोग कुरु धर्म व्यतिक्रम अपनी आँखों देख रहे हैं। मैंने समझ लिया कि, द्रोण भीष्म और महात्मा विदुर में कुछ सत्व नहीं, प्रधान प्रधान कुरुवंशीय वृद्ध भी दुर्योधन के इस अधर्मानुष्ठान की अनायास ही उपेक्षा कर रहे हैं।"

करुणस्वर में इस तरह कहते कहते, क्रोध के कारण, द्रौपदी का शरीर काँप उठा। ऐसी ही अवस्था में अपने पतियों पर कटाक्ष करके वह उनका क्रोध बढ़ाने लगी। लज्जा और क्रोध के कारण दुःखिनी कृष्णा के कटाक्षपात से पाण्डवों को जितना दुःख हुआ, उतना दुःख, तमाम राज्य, धन और रत्नों के नष्ट हो जाने से उन्हें नहीं हुआ। अपने दीन पतियों की ओर कटाक्ष करते हुए देखकर, दुरात्मा दुःशासन ने झटके से खींचकर द्रौपदी को बेहोश सी कर दिया और "दासी दासी" कहकर चिल्लाने और हँसने लगा।

कर्ण बहुत ही खुश होकर दुःशासन की हाँ में हाँ मिलाने लगे, शकुनि उसकी प्रशंसा करने लगे, पर और लोग दुःशासन के इस कृत्य से अत्यन्त ही दुःखित हुए।

तब भीष्म ने द्रौपदी से कहा —

'हे सुभगे ! एक ओर तो परवश व्यक्ति दूसरे का धन दाँव पर रख नहीं सकता और दूसरी ओर स्त्री पर स्वामी का पूरा अधिकार है। दोनों ही बातें बराबर हैं और धर्म की गति सूक्ष्म है, इससे तुम्हारे प्रश्न का यथार्थ उत्तर देने में हम असमर्थ हैं। देखो, धर्मात्मा युधिष्ठिर सारी पृथिवी का परित्याग कर सकते हैं, परन्तु धर्म से एक पद भी विचलित नहीं हो सकते। विशेषतः उन्होंने अपने मुँह से स्वीकार किया है कि, "हम हार गये हैं" इस से हम तुम्हारे प्रश्न की यथार्थ विवेचना नहीं कर सकते। शकुनि जूए के खेल में बहुत चतुर हैं,उनके जोड का कोई खिलाडी नहीं, यह जानकर भी युधिष्ठिर इच्छापूर्वक उनके साथ खेले और तब तुम्हारा इतना अपमान देखकर भी चुप बैठे हुए कुछ नहीं बोलते, इसीसे हम तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं देते।"

द्रौपदी बडी चतुर थी। राजनीति की और धर्म की सूक्ष्म से सूक्ष्म बात का उसे ज्ञान था। बातें करना और किसी की बात का युक्तिपूर्ण उत्तर देना उसे खूब आता था। उसने कहा —

"जब अनार्य जुआरी लोगों ने धर्मराज को बुलाकर उनसे जूआ खेलने के लिये अनुरोध किया, तब यह कैसे कहा जा सकता है कि, वे इच्छापूर्वक जूआ खेले ? पाण्डवश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर ने इन दुरात्माओं के छल कपट की बात समझे बिना ही इनके साथ जूए का खेल खेला है। सब दुष्टों ने एक साथ होकर उन्हें हरा दिया,तब पीछे से उन्होंने उनके कपट का हाल जाना है। कुछ

भी हो, इस सभा में बहुत से कुरुपुङ्गव बैठे हैं, वे पुत्रों और पुत्र वधुओं के प्रभु हैं, वे हमारी बातें सुनें और उनका जवाब दें।"

पाञ्चाल राजपुत्री द्रौपदी इस तरह कहते कहते करुण स्वर में रोने और चिल्लाने लगी। दुरात्मा दुःशासन उसे और भी कड़ी बातें कहने लगा।

भीमसेन रजस्वला, एकवस्त्रा, द्रौपदी का केशाकर्षण और अनुचित अपमान देखकर युधिष्ठिर पर अत्यन्त ही क्रोधित हो उठे। उन्होंने कहा —

"हे युधिष्ठिर! जुआरी लोग घर में डाली हुई वेश्या को भी जूए में दाँव पर नहीं रखते। वे उस पर भी थोड़ी दया दिखलाते हैं। देखो! काशिराज और अन्य नृपतिगण उपहार में जो उत्तम उत्तम रत्न और धन दे गये थे, उन्हें और अन्य वस्तुओं को, राज्य, ऐश्वर्य और अपने भाइयों को, अन्त में अपने आप को भी तुमने दाँव पर रख दिया। हमने उस पर कुछ भी बुरा नहीं माना। हमने सोचा कि, सचमुच तुम हम सब के बड़े और अधीश्वर हो, हम सब पर तुम्हारा पूर्ण अधिकार है। उन बातों पर हमें क्रोध नहीं आया, पर द्रौपदी को दाँव पर रखकर, जूआ खेल कर, हमारी समझ में, तुमने बड़ा ही बुरा काम किया है। केवल तुम्हारे ही दोष से दुष्ट कौरव लोग पाण्डवों की प्यारी सहधर्मिणी द्रौपदी को इस तरह क्लेश दे रहे हैं। इसीसे हम तुम पर क्रोधान्वित हो रहे हैं, हम तुम्हारे दोनों हाथ जला देंगे।"

यह कहकर भीमसेन ने रोष वश हो सहदेव से कहा —



द्रौपदी के अपमान से भीम का क्रुद्ध होना।

"भीमसेन द्रौपदी का अपमान देख क्रोधित हो उठे"

([illegible])

'हे सहदेव! बहुत जल्द आग ले आओ।"

भीमसेन को अधिक क्रुद्ध जानकर अर्जुन ने कहा —

'हे भीमसेन! आपने पहले कभी ऐसी कड़ी बातें नहीं कहीं, युधिष्ठिर की आप सदैव ही पूजा करते रहे। आज मालूम होता है, सचमुच ही शत्रुओं ने आपका धर्म गौरव नष्ट कर दिया है। हे भाई! धर्म की ओर ध्यान रक्खो और धर्माचरण करो, अपने बड़े भाई, धर्मशील युधिष्ठिर का अपमान भूलकर भी न करना। हमारे शत्रु लोग जो बात चाहते हैं, कहीं वही न कर बैठना। महाराज युधिष्ठिर ने अधर्म की कोई बात नहीं की, जो कुछ उन्होंने किया है, बहुत ठीक किया है। शत्रुओं ने जूआ खेलने के लिये न्योता देकर उन्हें बुलाया था, इसीसे आकर उन्होंने जूआ खेला। क्षात्र धर्म के अनुसार उन्हें यही उचित था, इसमें उनका तनिक भी दोष नहीं है। इससे हम लोगों की कीर्त्ति नष्ट नहीं होने की, बल्कि, वह औरभी बढ़ेगी।"

भीमसेन, अर्जुन की बात और उनके कहने का आशय समझ गये। उनका क्रोध जाता रहा और उन्होंने कहा —

"हे धनञ्जय! सचमुच ही महाराज युधिष्ठिर ने क्षात्र धर्म के अनुसार काम किया है। इसीसे तो अभी तक हमने उनके दोनों हाथ नहीं जलाये।"

एक ओर, भीमसेन इस तरह क्रोधित हो रहे थे, दूसरी ओर, युधिष्ठिर मुँह नीचा किये चुपचाप बैठे थे। उनका मौन मानो भीमसेन की बातों का यथार्थ उत्तर था और उससे यही

"हे सहदेव! बहुत जल्द आग ले आओ।"

भीमसेन को अधिक क्रुद्ध जानकर अर्जुन ने कहा —

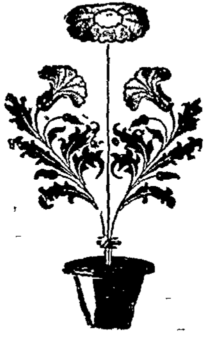
"हे भीमसेन! आपने पहले कभी ऐसी कड़ी बातें नहीं कहीं, युधिष्ठिर की आप सदैव ही पूजा करते रहे। आज मालूम होता है, सचमुच ही शत्रुओं ने आपका धर्म गौरव नष्ट कर दिया है। हे भाई! धर्म की ओर ध्यान रक्खो और धर्माचरण करो, अपने बड़े भाई, धर्मशील युधिष्ठिर का अपमान भूलकर भी न करना। हमारे शत्रु लोग जो बात चाहते हैं, कहीं वही न कर बैठना। महाराज युधिष्ठिर ने अधर्म की कोई बात नहीं की, जो कुछ उन्होंने किया है, बहुत ठीक किया है। शत्रुओं ने जूआ खेलने के लिये न्योता देकर उन्हें बुलाया था, इसीसे आकर उन्होंने जूआ खेला। क्षात्र धर्म के अनुसार उन्हें यही उचित था, इसमें उनका तनिक भी दोष नहीं है। इससे हम लोगों की कीर्त्ति नष्ट नहीं होने की, बल्कि, वह औरभी बढेगी।"

भीमसेन, अर्जुन की बात और उनके कहने का आशय समझ गये। उनका क्रोध जाता रहा और उन्होंने कहा —

"हे धनञ्जय! सचमुच ही महाराज युधिष्ठिर ने क्षात्र धर्म के अनुसार काम किया है। इसीसे तो अभी तक हमने उनके दोनों हाथ नहीं जलाये।"

एक ओर, भीमसेन इस तरह क्रोधित हो रहे थे, दूसरी ओर, युधिष्ठिर मुँह नीचा किये चुपचाप बैठे थे। उनका मौन मानो भीमसेन की बातों का यथार्थ उत्तर था और उससे यही

ध्वनि निकलती थी कि हा ! समय की गति बडी विचित्र है !! भाग्य के परिवर्त्तन को कोई नहीं जान सकता—द्रुपदनन्दिनी का इस तरह अपमान देखकर भी हम लोग कुछ नहीं कर सकते, कर सकने की बात तो दूर रही, उस सम्बन्ध में कुछ कह भी नहीं सकते। उसका घोर अपमान और विलाप देखकर हमारी जिह्वा निष्क्रिय हो गयी है, तुम भी मौन धारण करो। दैव हमारे अनु कूल नहीं, इससे हमारे किये हुए काम हमारे लिये प्रतिकूल ही फल देंगे। इस समय हमारा चुप रहना ही कल्याणकारी है।



तेरहवाँ परिच्छेद ।

द्रौपदी का वस्त्र-हरण ।

द्रौपदी बराबर रोती चिल्लाती रही । सभासद् लोग यह दृश्य अपनी आँखों से देखते रहे, पर किसी को बोलने का साहस न हुआ । उसके प्रश्न का किसी ने जवाब न दिया । यह बात दुर्योधन के छोटे भाई विकर्ण को बहुत बुरी लगी । वे अधिक चुप न रह सके । वे कहने लगे —

'हे नृपतियो ! द्रौपदी के प्रश्न का आप लोगों ने अभी तक उत्तर नहीं दिया । किसी विषय पर पूँछे जाने पर, अपने स्वतन्त्र विचारों के अनुसार उत्तर न देना पाप है , फिर आप लोग चुप क्यों बैठे हैं ? आप लोगों को भली भाँति विचार करके द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर देना चाहिये । यदि ऐसा न करेंगे, तो आप लोग नरकगामी होंगे । कुरवृद्ध भीष्म महाराज धृतराष्ट्र, महामति विदुर इस विषय पर अपनी अपनी सम्मति प्रकाशित करें । सब के आचार्य, द्रोण और कृप कोई बात क्यों नहीं कहते ? और भी बहुत से नरेश बैठे हैं, उन्हें भी काम, क्रोध और पक्षपात के भाव छोड़कर अपनी अपनी राय देनी चाहिये । द्रौपदी ने बार बार चिल्लाकर जो कुछ पूछा है, उसका उसे उत्तर मिलना उचित है ।"

विकर्ण के इतना कहने पर भी कोई कुछ न बोला, किसी की भी मौननिद्रा भङ्ग न हुई। जो बात पूछी गयी थी, उसका भला बुरा कुछ भी जवाब न मिला। तब विकर्ण ने हाथ पर हाथ रख कर लम्बी साँसें लेते हुए कहा —

"राजा लोग इस समय कुछ बोलें या न बोलें, हमें जो कुछ समझ पड़ेगा, वह हम अवश्य कहेंगे। महापुरुषों ने कहा है कि, राजा लोगों के व्यसन चार प्रकार के हैं, पहला व्यसन है शिकार, दूसरा शराब पीना, तीसरा जूआ और चौथा ऐसे विषयों में अत्यन्त अनुराग, जिनका होना किसी भाँति भी सम्भव न हो। इन व्यसनों में अनुरक्त होने से मनुष्य धर्म से दूर हो जाते हैं, लोग ऐसे व्यसनी पुरुषों के कार्यों को प्रामाणिक नहीं मानते। कपटपूर्वक जूआ खेलने के लिये बुलाये हुए राजा युधिष्ठिर ने व्यसनासक्त होकर द्रौपदी को दाँव पर रक्खा है, इसके अतिरिक्त द्रौपदी पाण्डवों की साधारणी भार्या है, यही नहीं, द्रौपदी को दाँव पर रखने के पहले युधिष्ठिर अपने आप को भी हार चुके थे, इससे द्रौपदी को दाँव पर रखने का उस समय उन्हें कोई हक न था। इन सब बातों पर विचार करके देखने से यह नहीं कहा जा सकता कि, द्रौपदी को किसी ने जीत लिया है।"

सभ्यगण विकर्ण का यह कथन सुनते ही एकस्वर से विकर्ण की भूरि भूरि प्रशंसा और शकुनि की निन्दा करने लगे।

विकर्ण की बात सुन और सभ्यों द्वारा उसका अनुमोदन देखकर कर्ण को बहुत बुरा लगा। स्वयंवर में द्रौपदी ने कर्ण का

अपमान किया था, उसने कहा था, 'मैं सूतपुत्र के साथ विवाह न करूँगी"—यह बात कर्ण को याद हो आई। उसका स्मरण आते ही वीरशिरोमणि कर्ण बदला लेने के भाव को रोक न सके। वे झट उठ खड़े हुए और विकर्ण का हाथ पकडकर उन्होंने कहा —

"हे विकर्ण! इस सभा में बड़े बड़े लोग बैठे हैं, द्रौपदी की दुर्दशा देखकर भी वे नहीं बोल्ते, वे जानते हैं कि, द्रौपदी को कौरवों ने जूए में जीता है और उसके साथ मनमाना व्यवहार करने का उन्हें अधिकार है। फिर तुम क्यों लडकपन करते और द्रपौदी की जीत को धर्मसङ्गत नहीं बतलाते? तुम दुर्योधन से छोटे हो, तुम्हें धर्मज्ञान नहीं है, तुम धर्म और अधर्म की बातें नहीं जान सकते। जब खेलते खेलते युधिष्ठिर ने सर्वस्व दाँव पर लगा दिया, तो द्रौपदी कैसे बाकी रही? द्रौपदी भी तो उनके सर्वस्व के भीतर ही है। एकवस्त्रा द्रौपदी का सभा में ले आना ही क्योंकर अधर्म कहा जा सकता है? कुछ बात भी तो समझो। देवताओं ने स्त्रियों के लिये एक ही पति का विधान किया है, द्रौपदी उस विधान का अतिक्रम करके पाँच पुरुषों की भार्या बनी है। एक से अधिक पुरुष के साथ रमण करने वाली स्त्री को ही वारस्त्री (वेश्या) कहते हैं, इससे उसके वारस्त्री होने में सन्देह नहीं। फिर उसका सभा में लाना और उसके साथ ऐसा व्यवहार करना कैसे असङ्गत ठहराया जा सकता है? युधिष्ठिर का जिस किसी वस्तु पर भी प्रभुत्व हो, शकुनि ने उसे धर्मपूर्वक जीत लिया है, इससे तुम्हें चुप रहना ही वाजिब है।

इसके बाद कर्ण ने दुःशासन से कहा —

"हे दुःशासन! विकर्ण लड़का है। वह धर्म की बात क्या जाने? तुम पाण्डवों और द्रौपदी का सर्वस्व ले सकते हो?

यह सुनते ही पाण्डव लोग जो दुपट्टे ओढ़े थे, उन्हें उतारकर उन्होंने दुःशासन को दे दिया।

पाण्डवों की तो यह दशा हुई, पर बेचारी द्रौपदी क्या करे? उसके बदन पर उस समय एक ही साड़ी थी, वह उसे ही पहने और उसे ही ओढ़े थी। जब दुःशासन बलपूर्वक उसकी वह साड़ी खींचने लगा, तब उसे यह समझने में कुछ बाकी न रहा कि, उस दुष्ट का अभिप्राय उसे कपड़ों से रहित करके उसकी लाज लेने का है। उस समय द्रौपदी किसकी शरण जाये? उस समय उसकी और उसकी लाज की कौन रक्षा करे? सभासद् लोगों ने बारम्बार कहने पर भी उसकी बात का जवाब तक नहीं दिया, उनसे वह आशा ही क्या करती? अपने पतियों से किसी भाँति की सहायता और रक्षा की आशा थी ही नहीं, इसीसे उसने सोचा कि, यदि श्रीकृष्ण इस समय होते तो मेरी रक्षा अवश्य करते—श्रीकृष्ण को वह ईश्वर का अंश समझती थी, इसीसे उनका ध्यान करके वह कहने लगी —

"गोविन्द! द्वारकावासिन्! कृष्ण गोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव!
हे नाथ! हे रमानाथ! व्रजनाथार्तिनाशन!
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन!

कृष्ण ! कृष्ण ! महायोगिन ! विश्वात्मन ! विश्वभावन !
प्रपन्ना पाहि गोविन्द ! कुरुमध्येऽवसीदतीम् ।"

—महाभारते ।

अर्थात् हे गोविन्द ! हे द्वारका में रहने वाले कृष्ण ! हे गोपी-जनवल्लभ ! क्या तुम्हें यह नहीं मालूम कि कौरव लोग मेरा घोर अपमान कर रहे हैं ? हे नाथ ! हे लक्ष्मीपते ! हे व्रजके स्वामिन् ! हे दु:खनाशन ! मैं कौरव सागर में डूब रही हूँ,मुझे उबारो । जनार्दन ! देर न करो । हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वभावन मैं कौरवों के बीच में बडी पीडा पा रही हूँ, मेरी रक्षा करो ।

वह दु:खिनी द्रौपदी सब लोकों के स्वामी कृष्ण का स्मरण करती हुई नीचे मुँह किये रोने लगी । करुणामय केशव याज्ञसेनी के करुणावाक्य सुनकर, शय्याशन और प्रियतमा कमला को छोडकर दौड पडे । इस ओर, उन्हीं अविनाशी परमपिता की इच्छा से महात्मा धर्म अन्तरित होकर भाँति भाँति के कपडों से द्रौपदी को ढकने लगे । दुरात्मा दु:शासन द्रौपदी को वस्त्रहीन करने के लिये जितना ही पराक्रम लगाकर उसकी साडी खींचने लगा, मानों वह साडी उतनी ही और बढने लगी । यह दृश्य देखकर सभा में शोर मचने लगा । सभासद लोग द्रौपदी की प्रशंसा और दु:शासन की निन्दा करने लगे ।

भीमसेन सभा में बैठे हुए थे, क्रोध के मारे उनके होंठ फडकने लगे, हाथ में हाथ घिसकर उन्होंने कहा —

"हे क्षत्रिय वीरो ! आप लोग हमारी बात सुनें । आज तक

किसी ने ऐसी बात न कही होगी और न कह सकेगा। हमारा कहना यही है कि, यदि युद्ध में अपने पराक्रम से इस नीच, पापी, दुःशासन को पराजित करके हम इसका खून न पियें, तो हमें हमारे पूर्व-पुरुषों की गति न प्राप्त हो।"

उस समय भीम की ये बातें सुनकर राजा लोग फिर दुःशासन की निन्दा करने लगे। दुरात्मा दुःशासन वस्त्र खींचता खींचता थक गया, द्रौपदी विवस्त्रा न हुई। तब हताश होकर और लज्जा के मारे माथा नीचा करके वह वहीं बैठ गया। सभ्यगण उसे फिर धिक्कारने और धृतराष्ट्र की निन्दा करने लगे।

यह कोलाहल देखकर विदुर उठ खड़े हुए। उन्होंने हाथ उठाकर सभासदों को चुप किया। फिर वे कहने लगे —

'हे सभ्यगण! अनाथा की तरह रो रोकर द्रुपदनन्दिनी वार-वार जो कुछ प्रश्न कर रही है, उसका उत्तर न देकर आप लोग अधर्म का काम कर रहे हैं। आर्त्त व्यक्ति, पीडारूपी अग्नि से जलता हुआ सभा में आवे, तो सभ्यों को यही उचित है कि, सत्य और धर्म के जल द्वारा उसके दुःखानल को शान्त करें। श्रेष्ठ जनों का यही काम है कि, यदि उनसे कोई कुछ पूछे तो भली भाँति विचार करके वे उसका उत्तर दें। विकर्ण ने अपनी समझ के अनुसार, अपना मत व्यक्त करके वड़ा भला किया है। आप लोग भी वैसा ही करें।"

विदुर की वात सुनकर सभासद् लोग फिर भी मौन ही रहे। परन्तु कर्ण ने कहा —

"हे दुःशासन ! अब दासी द्रौपदी को घर ले जाओ।"

कर्ण का आदेश पाकर दुःशासन द्रौपदी को खींचकर ले चला। वह बेचारी लाज और दुःख के मारे काँपती रही, पर उस दुष्ट ने इसकी कुछ भी परवा न की। तब द्रौपदी ने कहा —

"हे दुष्ट दुःशासन ! तू थोड़ी देर ठहर क्यों नहीं जाता ? मैंने जो प्रश्न किया है, उसका तत्क्षण ही उत्तर देना सभासदों का कर्त्तव्य था, परन्तु अभी तक मुझे कुछ जवाब नहीं मिला। तेरे खींचने के कारण मैं विह्वल हो गयी हूँ और मेरे मुँह से कौरवों के लिये अप्रिय वाक्य निकल रहे हैं। मैंने इसके पहले कभी किसी को अप्रिय वाक्य नहीं कहे। पर इस समय मैं क्या करूँ ? मेरा इसमें अपराध ही क्या है ?"

यह कहकर, दुःख से नितान्त कातर होकर, द्रौपदी सभा के बीच गिर पड़ी और चिल्ला चिल्लाकर रोने तथा परिताप करने लगी। वह कहने लगी —

"हाय ! जिस समय मेरा स्वयंवर हुआ था, उसी समय मैं नृपतियों के सामने निकली थी, इसके बाद मैं खुले दरबार में कभी नहीं आई, पर आज सब के सामने ही मेरी इस भाँति दुर्दशा हो रही है। हाय ! जो पाण्डव लोग मेरे शरीर में तेज वायु का छू जाना भी पसन्द न करते थे, वे ही मेरे पति आज दुःशासन द्वारा मेरे बाल खींचे जाने पर भी चुप बैठे हैं ! कौरव वृद्ध वर्ग की यह दशा अपनी आँखों देख रहे हैं, इससे जान पड़ता है, समय ही बलवान् है। मैं स्त्री और सती हूँ, मुझे इससे बढ़कर और दुःख

ही क्या हो सकता है ? सुना था, धर्मपरायण स्त्रियों को सभा
लाना मना है, पर मुझ अभागिनी को सभा में भी आना पड़
इस समय राजा लोगों का वह सनातनधर्म कहाँ है ? मैं पाण्ड
की सहधर्मिणी, धृष्टद्युम्न सरीखे वीर की बहिन और कृष्ण
प्रिय सखी हूँ। मुझे सभा में बुलाकर कौरवों ने परम्परागत आ
धर्म अवश्य ही नष्ट कर दिया है। मैं धर्मराज युधिष्ठिर की सव
भार्या हूँ, मुझे दासी कहो या न कहो, दोनों बातें एकसी हैं।
नीच कौरवों का कुलकलङ्क दुष्ट दुःशासन बलपूर्वक मुझे खींच
बडा कष्ट दे रहा है, मैं अब अधिक नहीं सह सकती। मैं ध
पूर्वक जीती गयी हूँ या नहीं—दो बातों में तुम जो चाहे निर्धारि
करो, पर मेरे प्रश्न का उत्तर अवश्य दो। फिर जो कुछ आप लो
कहेंगे, मैं वही करूँगी।"

द्रौपदी की बातें सुनकर, कुरुकुल प्रधान भीष्म बडे असमञ्ज
में पडे। उनकी इच्छा थी कि वे न बोलें, पर विवश होकर उ
बोलना ही पडा। उन्होंने कहा —

"कल्याणि ! धर्म की गति बडी सूक्ष्म है। बडे बडे बुद्धिमा
लोग भी उसे नहीं जान सकते। शक्तिशाली लोग धर्मानुसा
चलते रहते हैं, पर कभी कभी जिसे वे धर्म समझकर करते हैं,व
अधर्म हो जाता है। तुम्हारे प्रश्न का इसी से कुछ निर्णय नहं
कर सकते। कौरव लोग भी लोभ और मोह के वशीभूत हो गं
हैं। इससे जान पडता है, इनका शीघ्र ही विनाश होगा। सत्कुल
में उत्पन्न हुए लोगों का यही कर्त्तव्य है कि अगणित दुःख झेलक

भी धर्म को न छोड़ें, अतएव हे पाञ्चालि! तुम इस भाँति दुःख-तप्ता होकर भी धर्म का आश्रय ले रही हो, यह बहुत भली बात है। धर्मवेत्ता वृद्ध द्रोणाचार्य इत्यादि यद्यपि जीते हैं, पर, जर्जरित हो उठे हैं। ये जीव धारण किये हुए भी निर्जीव के समान हैं। इसी से ये मौन हैं। इस समय धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रश्न का जो कुछ निर्णय कर देंगे, वही प्रमाण होगा। कौरव लोगों ने तुम्हें धर्मपूर्वक जीत लिया है या नहीं, इसका फैसला धर्मरूप युधिष्ठिर ही करें।"

जिस तरह व्याघ्र के भय से हरिणी व्याकुल हो, उसी तरह व्याकुल होकर आँसू बहाती हुई द्रौपदी को देखकर धृतराष्ट्र और दुर्योधन के भय से सभासद लोगों में से कोई अब भी न बोला।

तब दुर्योधन द्रौपदी से कहने लगे —

"हे याज्ञसेनि! तुम्हारे छुटकारा पाने का एक उपाय है। यदि भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव युधिष्ठिर की प्रभुता न मानें और उन्हें मिथ्यावादी करार दे दें, तो हम तुम्हें छोड़ दें। कौरव लोग तुम्हारे दुःख से अत्यन्त दुःखित हो रहे हैं, उन्हें तुम्हारे ऊपर दया आ गयी है, तुम्हारे पतियों का प्रत्यक्ष दुर्भाग्य देखकर करुणा के कारण वे यथार्थ बात न कह सकेंगे। हाँ, धर्मराज युधिष्ठिर किसी हालत में भी सत्य के अतिरिक्त अन्यत् कुछ नहीं कह सकते। उनकी सत्यता पर हमें विश्वास है। वे जो कुछ कह देंगे, वह हमें स्वीकार होगा।"

दुर्योधन ने इस समय वाजिब बात कही थी। बात भी सच

थी, युधिष्ठिर कभी असत्य और मिथ्या न कह सकते थे। इसीसे दुर्योधन ने भी अन्तिम निर्णय का भार उन्हीं पर रक्खा। दुर्योधन की इस बात की सभी सभासदों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

धर्मराज! युधिष्ठिर! तुम धन्य हो। इस कलिकाल में तुम्हारा नाम लेकर लोग धर्म का आश्रय ग्रहण करेंगे। तुम्हारी धर्मनिष्ठता की धाक ही के कारण दुर्योधन सरीखे पाण्डवद्वेषी ने भी तुम्हारी सत्यता पर विश्वास किया और बड़े से बड़े मामले का फैसला तुम पर रक्खा।



चौदहवाँ परिच्छेद ।

द्रौपदी और धृतराष्ट्र ।

जब द्रौपदी के प्रश्न के उत्तर देने और मामले के निर्णय करने का भार स्वयं दुर्योधन ने युधिष्ठिर पर रख दिया और द्रौपदी से यह भी कह दिया कि, यदि भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव सब के सामने कह दें कि, उन पर युधिष्ठिर का कुछ अधिकार नहीं है, तो तुम दासीपन से छूट सकती हो, तब सभासद् लोग कौतूहलपूर्वक इस बात की प्रतीक्षा करने लगे कि, देखें, इस समय युधिष्ठिर के चारों छोटे भाई क्या कहते हैं और स्वयं युधिष्ठिर क्या निर्णय करते हैं।

दुर्योधन की अगाध राजनीतिज्ञता का परिचय इस स्थल पर स्पष्ट पाया जाता है। उसने देखा कि, अन्य सभासद् कुछ बोलेंगे नहीं और मामला योंही अटका रहेगा। इससे उसने यह तरकीब की। उसने सोच लिया था कि, युधिष्ठिर स्वयं असत्य बात कहेंगे नहीं और उनके भाइयों के मुँह से यह बात निकलेगी नहीं, कि युधिष्ठिर का उन पर अधिकार नहीं। पक्षान्तर में, यदि उनके भाइयों ने मोहवश और द्रौपदी का दुःख देखकर, उनके छुटकारे के लिये कह दिया कि, युधिष्ठिर का उन पर कुछ अधि-

कार नही , तो उनके माथे पर ऐसा कलङ्क लगेगा, जो कभी छूट नही सकता और ऐसा करने से उनमें मतभेद हो जायेगा। मतभेद होते ही वे क्षीणवल हो जायेंगे और उन्हे गिरा देना कुछ भी कठिन न होगा।

चारों भाइयों में भीमसेन ही सब से बडे थे, इससे वे ही बोले। उन्होंने कहा —

"हम यह कभी नही कह सकते कि, युधिष्ठिर हमारे प्रभु नहीं। यदि ऐसा होता, तो हम कभी उन्हें क्षमा न करते। वे हमारे पुण्य, प्रताप और तपस्या के भी प्रभु हैं, वे हमारे जीवन के भी प्रभु हैं। वे हार मान बैठे हैं, इससे हम लोग भी हार गये, इसमें सन्देह ही क्या ? हमारा प्रभुत्व अब नही रहा। यदि हमारा प्रभुत्व होता, तो आज पाञ्चाली के केश खींचकर दुरात्मा दुःशासन कभी जीवित न रहने पाता। क्या करें, धर्म पाश में बँधे हुए हैं, इसीसे हमारी भुजाओं का बल प्रकट नहीं हुआ , नही तो हमारी भुजाओं के बीच में आ जाने से इन्द्र भी नही छूट सकते। यदि धर्मराज इशारे से भी आज्ञा दे दें, तो सिंह जैसे क्षुद्र प्राणियों के प्राणों का संहार करता है, उसी तरह पल भर में हम धृतराष्ट्र के नीच पुत्रों को नष्ट कर दें।"

भीम का बढता हुआ क्रोध देखकर ... और विदुर उनसे कहने लगे ...

"हे भीम! ... तुम्हारे ... असाध्य ... है, तुम सब ... हो।"

भीष्म, द्रोण और विदुर के कहने से भीम तो चुप हो रहे, पर कर्ण ने द्रौपदी से कहा —

"हे भद्रे! इस सभा में भीष्म, विदुर और द्रोणाचार्य,— ये तीन आदमी बडे वली हैं, ये अपने मालिक को दुष्ट कहते हैं, पर बात तो यों है कि,दास पर प्रभु का वैसा ही अधिकार है,जैसा पुत्र और स्त्री पर। तुम्हारे पतियों को कौरवों ने जीत लिया है, इससे वे उनके दास हो चुके, तुम भी हारी जा चुकी हो, इससे तुम भी दासी हो चुकीं। अतएव हमारा कहना मानो और राजभवन में जाकर राजपरिवार की सेवा करो। इस समय धृतराष्ट्र के पुत्र ही तुम्हारे प्रभु हैं, पाण्डव नहीं। अब तुम किसी ऐसे एक जन को अपना पति बनाओ, जो तुम्हें जूए में न हार दे!"

कर्ण की बात सुनकर भीमसेन औरभी क्रोधित हो उठे, उनकी आँखें लाल हो आईं और वे युधिष्ठिर की ओर देखकर, निश्वास परित्याग करते हुए कहने लगे —

"हे राजन्! कर्ण की बातों पर हमें क्रोध नहीं आया, उनका कहना ठीक है, सचमुच ही हम लोग दासभावापन्न हो रहे हैं। पर विचार करके देखिये, यदि आप द्रौपदी को दाँव पर न रखते, तो शत्रुओं को इस तरह ताने मारने का मौका कभी न मिलता।"

भीमसेन की यह बात सुनकर भी राजा युधिष्ठिर चुप रहे। वे कुछ न बोले। तब उनसे दुर्योधन ने कहा —

"हे नृपते! यह तो मालूम हो गया कि भीमसेन, अर्जुन और

नकुल सहदेव आप का प्रभुत्व स्वीकार करते हैं। अब विचार करके आप बतलाइये कि, द्रौपदी हारी जा चुकी है या नहीं ?"

ऐश्वर्य के मद में मत्त दुरात्मा दुर्योधन धर्मराज से इस तरह कहकर हँसने लगा। इसके बाद द्रौपदी की ओर देखकर, वज्र के समान मजबूत अपनी बाईं जाँघ पर हाथ रखकर उसने अपमान सूचक इशारा किया। यह देखकर कर्ण भी हँसने लगे।

दुर्योधन और कर्ण का यह कृत्य देखकर महाक्रोधी भीमसेन अत्यन्त क्रोधित हो, लाल-लाल आँखें कर, चिल्लाकर कहने लगे —

'हे भूपतिगण! हम प्रतिज्ञा करते हैं कि, यदि अपनी गदा से युद्ध में हम दुर्योधन की यही जाँघ न तोड दें, तो अन्त समय हम उस गति से वञ्चित रहें, जिसे हमारे पितर प्राप्त हुए हैं।"

यह प्रतिज्ञा करते-करते भीमसेन औरभी क्रोधित हो उठे। उनके रोम रोम से मानो अग्नि निकलने लगी।

उस समय विदुर ने फिर कहा —

"हे नरेशगण! देखिये, भीमसेन ने बडी ही भयानक प्रतिज्ञा की है। जान पडता है, दैव ही ने भरतवश में यह बडी अनीति उत्पादित कर दी है। गजब हो रहा है। स्त्री पर इतना कठिन अत्याचार! दुराचार की हद हो चुकी। यदि युधिष्ठिर पहले अपने आप को न हारकर द्रौपदी को दाँव पर रखे होते, तब तो कहा जा सकता था कि, कौरवों ने जूए में धर्मपूर्वक द्रौपदी को जीता है, पर ऐसा नहीं हुआ, इससे हमारी राय में द्रौपदी नहीं जीती गयी।"

दुर्योधन ने विदुर का कथन समाप्त हो जाने पर फिर द्रौपदी से कहा —

"याज्ञसेनि ! हम फिर भी कहते हैं कि, यदि सब भाई युधिष्ठिर की प्रभुता न मानें, तो दासीपन से तुम्हें शीघ्र ही छुटकारा मिल सकता है।"

उस समय अर्जुन ने कहा —

यह सत्य है कि धर्मराज पहले हमारे प्रभु थे, पर अब वे स्वय दूसरे के वश में हैं। इसलिये किस तरह वे किसी के मालिक हो सकते हैं, इसका विचार कौरव ही करें।"

इस तरह वाद-विवाद हो ही रहा था कि, अग्निहोत्र-गृह में शृगाल और गर्दभ चीत्कार करने लगे और चारों ओर उल्लू बोलने लगे। ये बडे बुरे अपशकुन थे, सहार ही इनका फल था। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य उस समय स्वस्ति स्वस्ति कहने लगे। विदुर और गान्धारी को बहुत ही डर लगा। महाराज धृतराष्ट्र भी यह सुनकर बहुत घबराये। वे दुर्योधन को डाँटकर कहने लगे —

"अरे दुर्विनीत दुर्योधन ! तू क्या समझकर कुरुकुल कामिनी और पाण्डवों की धर्मपत्नी द्रौपदी पर इतना अत्याचार कर रहा है ?"

दुर्योधन का इस भाँति तिरस्कार करके महाराज धृतराष्ट्र द्रौपदी को सान्त्वना देकर कहने लगे —

"हे द्रुपदपुत्रि ! तुम हमारी सब बहुओं में बडी हो, तुम्हारी जो इच्छा हो वर माँगो।"

द्रौपदी ने कहा —

'हे भरतकुलप्रदीप ! यदि आप प्रसन्न हो हैं, तो यही वर दीजिये कि, सर्वधर्मयुक्त श्रीमान् युधिष्ठिर दासत्व से मुक्त कर दिये जायँ। आप के पुत्र उन महात्मा को कभी दास न कहें और हमारा पुत्र प्रतिविन्ध्य दासपुत्र न हो, क्योंकि प्रतिविन्ध्य राजपुत्र है, विशेष करके नृपतिगण उसको बहुत प्यार करते हैं। इससे उसका दासपुत्र होना किसी तरह भी ठीक नहीं।"

धृतराष्ट्र ने कहा —

"हे कल्याणि ! तुम्हारी यह बात हमने मान ली। ऐसा ही होगा। अब तुम्हें एक वर देने की और भी इच्छा है। तुमको केवल एक ही वर देने से हमें शान्ति नहीं।"

तब द्रौपदी ने कहा —

"महाराज ! अब आप रथ और शरासन सहित भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को भी दासत्व से छोड दीजिये।"

धृतराष्ट्र ने यह भी स्वीकार कर लिया और कहा —

"हे कल्याणि ! अब तुम तीसरा वर माँगो। इन दो वरदानों द्वारा तुम्हारा यथेष्ट सत्कार नहीं हुआ।"

द्रौपदी ने कहा —

"हे भगवन् ! लोभ ही के कारण धर्म नष्ट होता है, लोभ करना बहुत बुरी बात है इससे मैं और वर लेना नहीं चाहती। तीसरा वर पाने का मेरा हक नहीं। शास्त्र में लिखा है कि, वैश्य को एक वर और क्षत्रियपत्नी को दो वर लेने उचित हैं। उस



धृतराष्ट्र का अभय दान।

"हे कल्याणि! तुम्हारी यह बात हमने मानली।" (पृष्ठ १२६)

मर्यादा को उल्लङ्घित करना मुझे स्वीकार नहीं, इससे तीसरा वर लेना मुझे ठीक नहीं ऊँचता। मेरे पति दासत्वरूपी दलदल में फँस गये थे, उससे वे निकल आये हैं— यही मेरे लिये यथेष्ट है। वे अपने अच्छे अच्छे कर्मों द्वारा स्वयं अपना कल्याण करने में समर्थ होंगे।"

द्रौपदी के इस कथन को सुनकर बड़े बड़े बुद्धिमान् लोगों ने, जो वहाँ बैठे थे, दाँतों तले उँगली दाबी। वे दङ्ग रह गये। सब ही ने मन ही-मन उसकी चतुराई और उसके सन्तोष की प्रशंसा की।

द्रौपदी सुशिक्षिता, सदाचारशीलसम्पन्ना और नम्रा थी, पर उसका आत्माभिमान बढ़ा-चढ़ा था—आत्माभिमान के विरुद्ध छोटीसी बात का भी सहन करना उसके लिये असम्भव था। इसीसे सभा में बुलाई जाने पर पहले वह नहीं आई। अपनी बुद्धि और वाक्चातुरी के बल से वह सभासदों से प्रश्न कर बैठी, उसने धर्म और अधर्म का निर्णय करना चाहा। अपने पतियों के हार जाने पर भी—पराधीन, अवश और असहाय होते हुए भी—शत्रुओं की सभा में उसने दुःशासन के दुष्कर्म की खुले खुले निन्दा की। इसके लिये वह तनिक भी नहीं डरी और उसका साहस रत्ती भर भी कम न हुआ। यह बात उसके आत्मबल का उज्ज्वल प्रमाण देती है। धृतराष्ट्र द्वारा वर पाने पर उसने पहले युधिष्ठिर के छोड़ दिये जाने की प्रार्थना की। उस समय उसने कहा,— "मैं यह वर इसलिये माँगती हूँ और धर्मराज युधिष्ठिर के दासत्व से मुक्त हो जाने के लिये इस कारण से प्रार्थना करती हूँ कि, उन्हें

कोई दास न कहे। धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा मेरे गर्भ से उत्पन्न हुए मेरे जेठे राजपुत्र प्रतिविन्ध्य का दासपुत्र कहा जाना मुझे किसी तरह भी सह्य नहीं।"

धन्य! देवी द्रौपदी धन्य!! इस अभागे भारत को अब भी तुम्हारी ऐसी वीर रमणियों और वीर माताओं की यशोगाथा पर गर्व है। अपने पति और पुत्रों का दास तथा दासपुत्र कहा जाना जो सहन नहीं कर सकतीं, उन देवियों की वलिहारी! आत्म गौरव को उच्च करने वाले वीर ऐसी ही सबल आत्मा वाली देवियों की कुक्षि में जन्म ले सकते हैं।

महाराज धृतराष्ट्र द्वारा दूसरा वर पाने के समय भी आत्म गौरव और आत्मबल की रक्षा करते हुए उस देवी ने रथ और शरासन सहित अपने पतियों के दासत्व से मुक्त कर दिये जाने की इच्छा प्रकट की और तीसरा वर लेने के लिये तो स्पष्ट इनकार ही कर दिया।

देवि! द्रौपदी! इसीसे वीर रमणियों की बात उठते ही सब से पहले तुम्हारा नाम लिया जाता है। अपने आत्मबल के विशद उदाहरणों के कारण तुमने अपने वीर पतियों की कीर्त्ति और भी बढ़ा दी है। महाराज धृतराष्ट्र से तीसरा वर न लेकर तुमने जिस आत्मगौरव का परिचय दिया है, वह एक बार नहीं—हजार बार स्तुत्य है, इसीसे तुम्हारा नाम और यश सदैव ही अमर रहेगा।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद।

वनगमन के समय द्रौपदी और कुन्ती।

यशस्विनी द्रौपदी ने महाराज धृतराष्ट्र से तीसरा वर लेने के लिये इनकार कर दिया। दो वर लेकर ही उसने रथ और शरासन सहित अपने पाँचों पतियों को छुडा लिया। इस पर कर्ण ने कहा —

"हमने बहुतसी सुन्दरी स्त्रियों की कथाएँ सुनी हैं, पर जैसा काम द्रौपदी ने कर दिखाया है, किसी भी स्त्री द्वारा वैसे काम किये जाने की बात हमने नहीं सुनी। पाण्डव लोग अथाह जल में डूब रहे थे, दासत्व के जलाशय से उनका पार होना असम्भव सा था, पर द्रौपदी ने नाव बनकर उन्हें पार लगा दिया।"

भीमसेन कर्ण की तानेभरी बात सुनकर क्रुद्ध हो उठे। वे सह न सके, उनकी आँखें लाल हो आईं और उनके चेहरे से क्रोध के भाव प्रकट हो उठे।

युधिष्ठिर ने उनको शान्त करके, महाराज धृतराष्ट्र से हाथ जोडकर निवेदन किया —

"महाराज! आप हमारे लिये अब क्या आज्ञा देते हैं? आप का जो कुछ आदेश हो, उसका पालन करें।"

युधिष्ठिर की नम्रता भरी बातें सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा —

"हे धर्मराज ! तुम्हारा नाम अजातशत्रु है, अर्थात् तुम्हारा कोई शत्रु नहीं, यह बहुत ठीक है। तुम्हारा कल्याण हो। मेरी आज्ञा यही है कि, अपना हारा हुआ सारा धन और सारी सामग्री लेकर तुम अपने राज्य को लौट जाओ और आनन्दपूर्वक राज्य शासन करो। तुम धर्म की सूक्ष्म गति जानते हो, नम्र हो और वृद्ध लोगों की सेवा करते हो, मैं भी वृद्ध हूँ, इससे मेरी बात भी मान लो, ऐसा करने से अवश्य ही तुम्हारा कल्याण होगा। जो लोग बुद्धिमान होते हैं, वे ही क्षमा करना जानते हैं। इससे तुम भी क्षमाशील बनो। जो लोग किसी के किये हुए बुरे कर्मों को भूल जाते और दोषों पर ध्यान न देकर केवल गुणों और भलाइयों पर ही दृष्टि रखते और विरोधभाव का परित्याग करते हैं, वे ही बड़े आदमी कहलाते हैं। सज्जन लोग शत्रु द्वारा किये हुए भले कार्यों को ही याद रखते हैं और वैरभाव उनके हृदय में स्थान नहीं पाता।"

यह कहकर धृतराष्ट्र ने कहा —

"वत्स ! दुर्योधन के निष्ठुर व्यवहारों की बात मन में न लाना, अपनी बूढ़ी माता गान्धारी की ओर और मेरी ओर देखकर दुर्योधन के अपराध क्षमा कर दो। तुम्हारा कल्याण हो।"

धर्मराज युधिष्ठिर ने चचा की बात मान ली। उनकी आज्ञा लेकर वे अपने भाइयो और द्रौपदी के साथ रथों पर सवार होकर इन्द्रप्रस्थ को लौट पड़े।

दुःशासन ने देखा कि, यह तो कुछ भी न हुआ। पाण्डव लोग

फिर राजधानी को लौटने की आज्ञा पा गये और वे लौटे जा रहे हैं। उनका हारा हुआ द्रव्य भी लौटा दिया गया है। इससे उसने तत्क्षण ही दुर्योधन को इस बात की सूचना दी।

राजा दुर्योधन उस समय सभा से अपनी मित्रमण्डली के साथ उठ गये थे, जब उनके बूढ़े पिता ने उनके कार्य की निन्दा करके उन्हें फटकार बतलाई थी। महाराज धृतराष्ट्र द्वारा द्रौपदी को वर दिये जाने और पाण्डवों के दासत्व से मुक्त हो जाने की बात उन्हें मालूम न थी। यह सुनकर वे व्याकुल हो उठे और कर्ण तथा शकुनि के साथ सभा भवन में वे फिर महाराज धृतराष्ट्र के पास आये।

उन्होंने कहा —

"महाराज! देवराज इन्द्र को हितोपदेश करने के समय सुरगुरु परमविद्वान्, नीतिकुशल वृहस्पति ने कहा है कि, जिस किसी भाँति भी हो, अपने शत्रु का संहार करना ही ठीक है। क्या आप यह बात भूल गये? पाण्डव लोग अब हमारे शत्रु हो उठे हैं। इस समय उनका जो अपमान हुआ है, उससे शत्रुता के भाव औरभी बढ़ गये हैं। वे हम से अवश्य ही बदला लेंगे। साँप को कुचलकर बिना मारे हुए छोड़ देना भली बात नहीं, इसी तरह अब पाण्डवों को बिना निरुपाय किये भी भलाई नहीं। आप एक बार जूआ खेलने की फिर आज्ञा दें, इस समय एकमात्र यही युक्ति है। इस बार यह दाँव बदा जाय कि, जो कोई हारे, वह बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करे। अज्ञातवास के समय यदि कोइ

पहचान ले, तो फिर बारह वर्ष वनवास करना पड़े। या तो अपने मित्रों और भाइयों के साथ हारकर हम ही वनवास करेंगे या पाण्डव लोग ही इस दुःख के भागी होंगे। इसी में हमारा उनका निपटारा है।"

धृतराष्ट्र स्नेहवश फिर इस प्रस्ताव पर राजी हो गये। उन्होंने फिर पाण्डवों को बुलाने और जूआ खेलने की आज्ञा दे दी। पुत्र पर अनुचित स्नेह के सामने उन्होंने अन्य बातों की परवा न की।

भीष्म, द्रोण, विदुर और यहाँ तक कि गान्धारी देवी ने भी उन्हें ऐसा करने और ऐसी आज्ञा देने से रोका, पर उन्होंने कुछ भी न माना, केवल यही कहकर बात टाल दी कि, जो कुछ बदा होगा, वह होवेहीगा, उसे कोई नहीं टाल सकता।

धर्मराज युधिष्ठिर फिर बुलाये गये। चचा की आज्ञा सुनकर वे लौट आये। दुर्योधन ने पिता की आज्ञा बतलाकर उनसे फिर जूआ खेलने की बात कही।

युधिष्ठिर ने कहा—

"भाग्य से ही मनुष्य इस लोक मे दुःख और सुख भोग करते हैं। जो कुछ भाग्य में लिखा है, उसे कोई टाल नही सकता। वृद्धराज ने हमें फिर बुलाया है और फिर जूआ खेलने की आज्ञा दी है, इससे जूए के खेल को बुरा जानकर भी हम खेलने से मुँह नहीं फेर सकते।"

शकुनि ने उस समय राजा युधिष्ठिर से कहा —

"महाराज! बूढ़े राजा ने आप का हारा हुआ धन आप को

लौटा दिया है, यह भला ही किया। पर इस बार की बाजी और ही कुछ है, उसे सुन लीजिये। यदि हम आप से हार जायें तो हम लोग मृगचर्म पहनकर बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करें और यदि आप हार जायें तो आप लोग भी ऐसा ही करें। यदि अज्ञातवास के समय हारनेवाले का पता लग जाये या वह पहचान लिया जाये तो फिर बारह वर्ष वनवास करना पड़े। वनवास और अज्ञातवास की अवधि पूरी हो जाने पर राज्य वापिस मिले।"

शकुनि की यह बात सुनकर सभासद् लोग उद्विग्न हो उठे। उन्होंने ऐसे खेल को रोकना चाहा, पर कुछ भी फल न हुआ। युधिष्ठिर बोल उठे —

"हम धर्म नहीं छोड़ सकते। जूआ खेलने के लिये बुलाये जाने पर हम अवश्य ही जूआ खेलते हैं। इससे हम हटने वाले नहीं। शकुने! खेल आरम्भ करो। हम तुम्हारी शर्त्त पर राजी हैं।

शकुनि ने यह सुनकर पाँसे फेंक दिये। युधिष्ठिर की हार हुई और दुर्योधन जीते।

हार जाने पर पाण्डव लोग चुपचाप वनवास की तैयारी करने लगे। उन्होंने मृगचर्म पहन लिया और खेल घर से बाहर निकल पड़े। उन्हें राज्य भ्रष्ट और इस वेश में देखकर धृतराष्ट्र के पुत्र और उनके साथी बहुत प्रसन्न हुए। दुःशासन ने कहा —

"ये वे ही पाण्डव हैं, जिन्होंने धन के मद में मत्त होकर हम लोगों की हँसी की थी, जो त्रिलोक में अपनी बराबरी वाला नहीं देखते थे, उन्हीं की आज यह दशा हो रही है। बहुत ठीक!"

यह कहकर उसने द्रौपदी से कहा —

"राजा द्रुपद बड़े बुद्धिमान् कहे जाते हैं, पर पाण्डवों को अपनी पुत्री देकर उन्होंने बड़ी भूल की! पाण्डव लोग तो नपुंसक हैं। हे द्रौपदी! अब कौरवों के ऐश्वर्य को देखो। पाण्डवों के साथ वन में जाकर तुम्हें दुःख ही दुःख होगा। अब तुम हम लोगों में से किसी एक के साथ विवाह कर लो, जिस से तुम्हें आगे ऐसा दुर्दिन न देखना पड़े। पाण्डवों के साथ रहकर तुम अपना जीवन बरबाद न करो।"

यह कहकर उसने औरभी अश्लील तथा अपमानसूचक बातें कहीं। उन्हें सुनकर भीमसेन से चुप न रहा गया। वे कहने लगे —

"हे क्रूर! अपने मुँह अपनी प्रशंसा करके हम सब को जिस तरह तू कष्ट दे रहा है, उसका बदला हम तुझे अवश्य ही देंगे। क्रोध और लोभ के वश होकर, जो लोग तेरी बात का अनुमोदन कर रहे हैं, हम उन्हें भी उन के कर्मफल का मजा चखावेंगे।"

भीमसेन की ये बातें सुनकर दुःशासन उन्हें "पशु" "पशु" कहकर हँसने और कूदने लगा।

यह देखकर भीमसेन औरभी क्रोधित हो उठे। उन्होंने कहा —

"रे दुष्ट! यदि युद्ध में तेरी छाती फाड़कर तेरा रुधिर पान न करूँ, तो मैं पुण्यलोक न पाऊँ। सत्य ही समझ, थोड़े ही दिनों में, तुझे और तेरे भाइयों को मैं अवश्य ही यमलोक पहुँचाऊँगा। यह बात मिथ्या नहीं हो सकती।"

दुर्योधन उस समय भीमसेन की चाल की नकल करने लगे। यह देखकर भीमसेन ने फिर कहा —

"अरे मूढ़! तुझे और तेरे भाइयों को हम मरा हुआ ही समझते हैं। निश्चय समझ ले, कि हम तुझे और तेरे भाइयों को, अर्जुन कर्ण को और सहदेव शकुनि को मारेंगे।"

अर्जुन ने कहा —

"हे भीमसेन! बातें करने से काम ही क्या? जो कुछ हमें करना होगा, वह सब लोग कुछ दिनों बाद जान ही जायेंगे। पर तुम्हारे कहने के अनुसार हम प्रतिज्ञा करते हैं कि, युद्ध में हम कर्ण को अवश्य मारेंगे। चाहे हिमालय अपने स्थान से टल जाये, और चाहे सूर्य देवता तेजहीन हो जायें, चाहे चन्द्रमा शीतलता का परित्याग कर दे, पर हमारी प्रतिज्ञा टल नहीं सकती। यदि तेरह बरस बाद लौटने पर दुर्योधन हमारा सत्कार करके हमारा राज्य न लौटा देगा, तो अवश्य ही वैसा होगा जैसा हम कह चुके हैं।"

अर्जुन की बात समाप्त होने पर माद्री के पुत्र, सहदेव, शकुनि पर अपना रोष प्रकट करते हुए कहने लगे —

"अरे दुष्ट शकुनि! पाँसे समझ कर तूने जिन वस्तुओंकी प्रीतिकी है वही चीजें युद्धस्थलमें बाणोंके रूपमें तुझे माथे पर धारण करनी पड़ेंगी।"

फिर नकुल ने कहा —

"जिन जिन लोगों ने दुर्योधन को प्रसन्न रखने के लिये, जूए के खेल में, द्रौपदी को कठोर वाक्य कहे हैं, लड़ाई का समय आने पर हम अवश्य ही उन सब को यमलोक भेजेंगे।"

युधिष्ठिर बड़े नम्र थे। वे सब की बातें सुनते रहे और सब चुप रहे। उन्होंने किसी प्रकार की भी प्रतिज्ञा करके कठोर वाक्य नहीं कहे। उन्होंने केवल यही कहा :—

"इस समय हम वृद्ध पितामह भीष्म, गुरुद्रोणाचार्य, कृपाचार्य, गुरुपुत्र अश्वत्थामा, महाराज धृतराष्ट्र, उनके पुत्रों तथा महात्मा विदुर और सञ्जय से विदा होते हैं। वनवास करके यदि कुशल पूर्वक लौटे तो फिर मिलेंगे।"

विदुर ने कहा —

"हे धर्मराज! तुम्हें क्या समझावें? तुम और तुम्हारे सब भाई समझदार हैं। जब-जब तुम पर जैसा-जैसा पड़ेगा, तुम स्वय ही बुद्धिपूर्वक समझकर काम करोगे—तुम्हारा कल्याण हो। यह भली भाँति समझ लो कि, अधर्मपूर्वक कोई किसी पर जय नहीं प्राप्त कर सकता। ऐसी अवस्था में फल कभी भला नहीं।"

अपने पतियों को वन जाते हुए देखकर द्रौपदी अपनी सास, कुन्तीदेवी, के पास गयी। उसने सास के चरण छुए और वहाँ पर बैठी हुई अन्य स्त्रियों को भी यथायोग्य प्रणाम कर और गले मिलकर अपने पतियों के साथ वन जाने की आज्ञा माँगी। यह सुनकर अन्तःपुर की अधिक स्त्रियाँ रोने लगीं।

द्रौपदी को वन जाते हुए देखकर और यह जानकर कि, द्रौपदी अपने पतियों के साथ न जाने के लिये किसी तरह भी राजी न होगी, कुन्तीदेवी को बड़ा दुःख हुआ—उनका गला भर आया और आँसू बहाकर रुँधे हुए कण्ठ से उन्होंने कहा :—



सास की चरण वन्दना।

"अपने पतियों को वन जाते देख, द्रौपदी ने अपनी सास,

न्ती के [illegible]"

"वत्से ! दुःख उपस्थित है, यह सोचकर कभी शोक न करना। स्त्रियों को क्या करना चाहिये और उनका क्या धर्म है, इसे तुम भली भाँति जानती हो। तुम सुशीला, पतिव्रता और सदाचार का मर्म जानने वाली हो, तुमने अपने गुणों से दोनों कुलों की शोभा बढ़ाई है; इससे पतियों के साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, इस विषय में तुम्हें उपदेश देने की आवश्यकता नहीं। कौरव लोग अवश्य ही बड़े भाग्यवान् हैं, इसीसे वे तुम्हारे क्रोध की अग्नि में नहीं जले। मैं सदैव ही तुम्हारा कल्याण चाहती हूँ, तुम सुखपूर्वक जाओ, मार्ग में तुम्हें तनिक भी कष्ट न हो। बुद्धिमती स्त्रियाँ, यह सोचकर कि होनहार को कोई भी मेटने वाला नहीं, कभी नहीं घबरातीं। थोड़े ही दिनों में तुम्हारे ये दुःख अवश्य दूर हो जायँगे।"

द्रौपदी की वेणी खुली हुई थी, वह वैसी ही पड़ी रही। अपनी सास की आज्ञा पाकर, केवल एक ही वस्त्र पहने, पतियों के साथ वह जङ्गल को चल दी।

द्रौपदी को इस तरह जाते हुए देखकर कुन्ती को बड़ा दुःख हुआ। वे उनके पीछे दौड़ी और थोड़ी ही दूर पर जाकर उन्होंने देखा कि, उनके पुत्र मृगचर्म धारण किये और लज्जा से शिर झुकाये चले जा रहे हैं। यह देखकर वे उनसे लपटकर रोने लगीं। उन्होंने कहा —

"हाय री [illegible] का फेर !! क्या मैं यही सुख देखने के लिये आजतक [illegible]

लो। प्रति दिन जब तक द्रौपदी भोजन न करेगी, तब तक इसमें अनेक प्रकारके अन्न बराबर बने रहेंगे—तब तक किसी भी वस्तु की कमी न पड़ेगी।"

सूर्य्य देव से यह वरदान पाकर महात्मा युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए। पुरोहित धौम्य के चरण छूकर और भाइयों को गले लगाकर वे द्रौपदी के पास गये, वहाँ पर उन्होंने उससे सब हाल कहा। पवित्र होकर द्रौपदी नित्य-प्रति थोड़े परिमाणमें चतुर्विध भोजन तैयार करती। पहले ब्राह्मणों को भोजन कराती और फिर राजा युधिष्ठिर की आज्ञा से उनके चारों भाई भोजन करते। उनके भोजनकर चुकने पर जो कुछ शेष रहता, उसे राजा युधिष्ठिर भोजन करते। उनके भोजन कर चुकने पर द्रौपदी भोजन करती। उस स्थालीके प्रताप से और सूर्य देवता के वरसे बहुत से ब्राह्मणों को जिमाने पर भी अन्न की कमी न पड़ती। हाँ, द्रौपदी के भोजन कर चुकने पर अन्न निःशेष हो जाता।"

पाण्डव लोग उधर वन में थे, इधर उनकी माता कुन्ती विदुर के घर पर थीं। सुभद्रा, अभिमन्यु और द्रौपदी के पाँचो पुत्रों के साथ, द्वारका चली गईं। वहाँ वे अभिमन्यु हीके समान द्रौपदी के पुत्रों का प्यार करतीं और उन्हें स्नेह से रखतीं। विदुर पाण्डवों के बड़े हितैषी थे, इसीसे राजा धृतराष्ट्र एक दिन उन पर नाराज हो उठे और उन्हें निकाल दिया। विदुर युधिष्ठिर के पास चले आये, पर कुछ सोच-समझकर महाराज धृतराष्ट्र ने अपने परम विश्वासपात्र सञ्जय के द्वारा उन्हें फिर बुलवा लिया।

पाण्डव लोग काम्यक वनमें थे। उनकी खबर पाकर अपने विश्वस्त यादवों को साथ लेकर श्रीकृष्ण उन्हें देखने चले। राजा द्रुपद के पराक्रमी पुत्र, धृष्टद्युम्न भी अपनी बहिन की खबर पाकर उसे और पाण्डवों के देखने के लिये आ गये थे। सयोग से सब लोग साथ ही पहुँचे।

जब सब लोग बैठ गये, तब कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा —

"महाराज! पृथिवी अवश्य ही दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और शकुनि का रक्त पियेगी। इनको और इनके साथियों को यम धाम भेजकर हम अवश्य ही आप को राजा बनायेंगे।"

धृष्टद्युम्न अपनी बहिन के पास बैठे थे। द्रौपदी उन्हीं की ओर देखती और मन ही मन कुछ सोचती जा रही थी। कृष्ण के मुख से दुःशासन इत्यादि का नाश करने की बात सुनते ही क्रोधाविष्ट होकर वह कहने लगी —

"हे मधुसूदन! जिस तरह बालक हाथ में खिलौने लेकर खेल खेलता है, उसी तरह तुम भी ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्र इत्यादि देवताओं को लेकर बारम्बार मेल खेलते हो। तुम ही इस जगत् के स्वामी हो और इस संसारमें जो कुछ हो रहा है, वह सब तुम्हारी ही माया है। देवता और मनुष्य सब ही तुम्हें अपना स्वामी जानते और तुम सब ही के ईश्वर हो। इसी से मैं पूर्वक मैं अपना दुःख तुम्हीं से कहती हूँ। हे कृष्ण! मैं धृष्टद्युम्न की बहिन, पाण्डवों की सहधर्मिणी और तुम्हारी प्यारी सखी होकर क्या भरी सभा में दुष्ट दुःशासन ... जाने के योग्य हूँ? उस

रजस्वला थी, केवल एक वस्त्र मेरे शरीर को ढके हुए था, पर दुष्ट कौरवोंने कुछ भी ध्यान न करके मेरी हँसी की। हाय! दुर्भाग्य !! पाण्डव, पाञ्चाल और यादवों के जीवित रहते हुए भी, धृतराष्ट्र के पुत्रोंने मुझे दासी बनाकर रखना चाहा! हे जनार्दन! मैं धर्म्म से भीष्म और धृतराष्ट्र की नतोहू और पतोहू हूँ, फिर भी उनके सामने कौरवों ने जबरदस्ती मेरा अपमान किया। पाण्डव लोगों की मैं इसीसे निन्दा करती हूँ कि, अपनी सहधर्म्मिणी को दुःसह दुःखमें देखकर भी वे चुप रहे। हा! महापराक्रमी भीमसेन की गदा को और अर्जुन के गाण्डीव धनुषको धिक्कार है! क्योंकि तुच्छ जनों द्वारा किये गये मेरे अपमान को देखकर भी वे चुप रहे। सनातम धर्म यही कहता है और ससार में लोकरीति भी यही है कि,कमजोर होकर भी अपनी स्त्री की रक्षा करनी चाहिये। स्त्री के रक्षित रहने से सन्तान की रक्षा होती है और सन्तान के रक्षित रहने से आत्माकी रक्षा होती है। पाँचों पाण्डवों से मेरे पाँच पुत्र हुए हैं, उनकी रक्षा और देख भाल करने के लिये ही वे मेरी रक्षा करते, पर उन्होंने ऐसा न किया। अपनी शरण आने पर पाण्डव लोग सब को अभयदान देते और सब की रक्षा करते हैं, पर मैं उनकी शरण भी आई, फिर भी उन्होंने मेरी ओर ध्यान न दिया। हे कृष्ण! जैसा तुम प्रद्युम्न को प्यार करते हो, वैसा ही मेरे पुत्रों को भी करते हो। वे सब धनुर्विद्या विशारद और पराक्रमी हैं। फिर मैं धृतराष्ट्र के पुत्रों का अत्याचार क्यों सहूँ?

द्वारा मेरा घोर अपमान हुआ, दुःशासनने मेरी लाज लेनी

चाही और ये लोग अब भी जीते हैं। इससे भीमसेन के बाहुबल और अर्जुनके पौरुष को सचमुच धिक्कार है! इसी पापात्मा दुर्योधन ने भीमसेन को ज़हर खिलवाया और वारणावतमें माता कुन्ती के साथ सब भाइयों को लाक्षागृह में जला देने का षड्यन्त्र रचा, फिर भी ये लोग उसे दण्ड नहीं देते, यह क्यों? हे जनार्दन! जिस तरह तुमने राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी को बहुत कष्ट उठाकर पाया है, उसी तरह स्वयंवर में और स्वयंवर हो जाने के बाद भी प्रबल पराक्रम करके और अनेक कष्ट झेलकर सव्यसाची अर्जुन ने मुझे प्राप्त किया है। फिर भी तुच्छ जनों द्वारा मेरे अपमान की बात देख सुनकर भी ये लोग क्यों चुप बैठे हैं, कुछ कह नहीं सकते। हे वासुदेव! ये सब बातें सोच सोचकर मुझे बार बार धृतराष्ट्र के पुत्रों पर क्रोध आता है। हा! बड़े अच्छे वंशमें मैंने जन्म ग्रहण किया, बड़े अच्छे कुलमें मेरा विवाह हुआ। विवाह होने पर मैं महात्मा पाण्डु की पतोहू हुई, गुणोंमें अद्वितीय मुझे पाँच पति मिले। फिर भी मेरी यह दुर्दशा! हा!! हन्त!!!"

यह कहकर और अपने कमल मुख को दोनों हाथों से ढककर पाञ्चाल राजपुत्री द्रौपदी रोने लगी। उसके नेत्रों से आँसुओं की ऐसी धारा बही कि, उसकी छाती भीग गयी। इसके बाद आँसू पोंछ,लम्बी साँस लेती हुई,रुँधे हुए गले से वह फिर कहने लगी—

'हे कृपामय! क्या मै यही समझ लूँ, कि मेरे पति, मेरे पुत्र, मेरे बन्धुजन, मेरे भाई और मेरे पिता, इन मेंसे कोई एक भी मेरा नहीं और क्या तुमने भी मेरा पक्ष छोड दिया है? तुम लोग मेरे

दु:खों की बात पर ध्यान नहीं देते और कौरवों की सभा में कर्णने जो मेरी हँसी की है, उसकी याद करके मेरी छाती जल रही है। ऐसी दशामें तुम्ही बताओ, मैं क्योंकर धीरज धरूँ? हे कृष्ण! रिश्तेदारी, बड़प्पन, सख्यभाव इत्यादि अनेक कारणों से तुम आज तक मेरी रक्षा करते आये हो, पर अब तुम्हें क्या हो गया है? मेरी दुर्दशा देखकर भी तुम क्यों चुप हो? औरोंका मौनभाव धारण करना मुझे उतना दु:खदायी नहीं, जितना तुम्हारा चुप रहना! हाय! अब मैं क्या करूँ?"

द्रौपदी की बातों से और उसके कहने के ढँगसे कृष्ण उत्तेजित हो उठे। उन्होंने कहा —

'हे सुन्दरी! चाहे आकाश टूटकर इस जमीन पर गिर पड़े और चाहे हिमालय पर्वत चूर-चूर हो जाये, चाहे समुद्र सूख जाये और चाहे यह भूमण्डल खण्ड-खण्ड हो जाये, पर मेरी बात कभी झूठ होने की नहीं। तुम सच ही समझो, एक दिन फिर अवश्य ही तुम राजरानी बनोगी। इस में तनिक भी सन्देह नहीं। तुम्हें जिन लोगों पर रोष है, उनको अर्जुन अवश्य ही अपने बाणों द्वारा पृथ्वीतल पर सुला देंगे और उनकी स्त्रियाँ अनाथाओं की भाँति चिल्ला चिल्लाकर रोयेंगी और नेत्रोंसे आँसुओं की धारा बहायेंगी। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, कि पाण्डवोंके उद्देश्य-साधन के लिये युक्ति करने में मुझ से तनिक भी त्रुटि न होगी। अब तुम दु:खका परित्याग करो। इस तरह शोक करना किसी भाँति भी उचित नहीं।"

कृष्ण से अपनी बातों का इस भाँति जवाब पाने पर द्रौपदी ने अर्जुन की ओर देखा। अर्जुनने कहा —

"हे प्रिये! अब मत रोओ, कृष्णने जो कुछ कहा है, वह टल नहीं सकता।"

उसी समय धृष्टद्युम्नने कहा —

"बहिन! अधिक बातें करने से लाभ ही क्या? हम प्रतिज्ञा करते हैं कि, हम युद्ध होने पर द्रोण को मारेंगे। हमें यह भी निश्चय है कि, शिखण्डी भीष्म का, भीमसेन दुर्योधन का और अर्जुन कर्ण का संहार करेंगे। कृष्ण सरीखे नीतिकुशल महात्माका अवलम्बन करके हम लोग देवताओं के राजा इन्द्र को भी हरा सकते हैं, धृतराष्ट्र के पुत्रों की तो बात ही क्या है? तुम रोओ मत, धीरज धरो।"

तब कृष्णने युधिष्ठिर से कहा —

"हे राजन्! जिस समय तुम पर विपत्ति पड़ी थी, उस समय हम द्वारका में न थे। यदि हम वहाँ होते, तो अवश्य ही हस्तिनापुर पहुँचते और जूए के खेल के दोष दिखाकर जूए का खेल ही न होने देते और आज तुम्हें यह क्लेश न भोगना पड़ता। यदि दुर्योधन हमारी बात न मानता, तो हम उसे अवश्य ही दण्ड देते। यदि कौरवों के साथी हमारे इस कार्य में बाधा डालते, तो हम उन्हें भी मजा चखाते, पर हम उस समय आनर्त देशमें थे। आप के राजसूययज्ञमें जब हमने शिशुपालको मारा, सौभराज शाल्वने—जब हम खाण्डवप्रस्थ ही में थे तभी—द्वारका पर चढ़ाई की। यदुव-

शियोंने उसके साथ युद्ध किया, पर लडने वाले सब लडके और नवयुवक ही थे। उसने इनका नाश कर के नगरी को छिन्न भिन्न कर दिया और खूब लूट मचाई। जब हम लौट कर वहाँ पहुँचे, तो हमने सुना, कि उसने हमें भी सैकडों बुरी बातें कहीं और युद्ध के लिये चुनौती दी है। इस बात को हम सहन न कर सके, हमारा क्रोध न रुक सका और उसको दण्ड देने के लिये हमने उसकी नगरी पर चढाई कर दी। वहाँ से लौट आने पर हमने आप के यहाँ का सवाद सुना, पर जो कुछ होना था वह हो चुका था। उस समय हम करते ही क्या ? चुप रहे। किसी नदी का पुल टूट जाने पर जिस प्रकार जल का रोकना कठिन हो जाता है, ठीक वैसी ही दशा इस समय यहाँ उपस्थित है। इस समय हमें बहुत सोच समझ कर काम करना होगा।"

यह कहकर कृष्ण ने विदा माँगी। धर्मराज युधिष्ठिर और भीमसेन उनका मस्तक सूँघकर, अर्जुन ने गले लगाकर, नकुल और सहदेव ने प्रणाम करके, पुरोहित धौम्य ने आशीर्वाद देकर और द्रौपदी ने आँसू बहाकर उन्हें विदा किया। उन्होंने चलते चलाते धर्मराज युधिष्ठिर को आश्वासन दिया और कहा —

"धर्मराज! अवश्य ही धर्म की जय होगी और किसी न किसी दिन अवश्य ही तुम्हें हम धराधीश बनायेंगे।"

परम प्रतापी कृष्ण और वीर धृष्टद्युम्न के अतिरिक्त जो सम्बन्धी पाण्डवों को देखने के लिये आये थे, वे लोग भी कृष्ण के चले जाने पर विदा माँगकर अपने अपने देश को लौट गये।

सत्रहवाँ परिच्छेद ।

द्वैत वन में युधिष्ठिर और द्रौपदी ।

कृष्ण आदि के लौट जाने पर, अर्जुन की सलाह से, अपने भाइयों और प्यारी सहधर्मिणी द्रौपदी को लेकर राजा युधिष्ठिर द्वैत वन को चले गये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि, वर्षा ऋतु का आरम्भ हो जाने के कारण ताल, तमाल, आम, जामुन, कदम्ब, कनेर इत्यादि वृक्ष अपने फूलों और फलों से अपनी ही नहीं, बल्कि, सारे वन की शोभा बढ़ा रहे हैं । मोर, चकोर, कोयल इत्यादि पक्षी उन वृक्षों की चोटियों पर बैठे हुए आनन्दमत्त होकर गा रहे हैं , पर्वतों के पास मतवाले हाथी, हथिनियों के साथ, इधर-उधर घूम रहे हैं । भोगवती नदी के किनारे जटाधारी महात्मा लोग आनन्द से बैठे हैं । उन्हीं के आश्रमों के पास सुन्दर स्थान देखकर पाण्डव भी उतर पड़े । वहाँ पर तपस्वियों की सङ्गति से वे अपने दुःखों को, कुछ दिनों के लिये, भूलने गये और उनका समय शान्तिपूर्वक बीतने लगा ।

एक दिन सन्ध्या का समय था, भगवान् भास्कर तेजोहीन हो चुके थे । युधिष्ठिर और भीमसेन साथ ही बैठे थे । उस समय द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा —



द्रौपदी और धर्मराज की बातचीत ।

द्रौपदी ने कहा—"हे नाथ ! हम सब को वनवासी बनाकर भी दुष्ट दुर्योधन को तनिक दुःख न हुआ ।" (पृष्ठ १४०)

याद जोहा करते थे, वे ही आप के भाई जङ्गली फलों पर गुजर करते हैं, यह देखकर मेरे शोक के समुद्र ने मर्यादा तोड दी है। जो भीमसेन सुन्दर-सुन्दर कपडे पहनते और मनोहर सवारियों पर सवार होते थे, जो कौरवों को एक क्षण में नाश करने की शक्ति रखते हैं, वे ही आज इस वन में दीन मनुष्यों की भाँति दासों का काम करते हैं। यह देख करके भी आप के क्रोध की आग क्यों नहीं प्रज्वलित होती? वे केवल आप की प्रतिज्ञा के पाश में बँधे हुए होने के कारण ही ऐसी तकलीफ झेल रहे हैं। जो अर्जुन दो भुजा वाले होने पर भी सहस्रार्जुन की बराबरी का दावा रखते हैं, जो बाण चलाने के करतब में अद्वितीय हैं, जिनके पराक्रम से ही दबकर बडे बडे राजाओं ने आप की वश्यता स्वीकार करके राजसूय यज्ञ में आप के आज्ञाकारियों की भाँति काम किया था, जो एक ही समय पाँच सौ बाण एक साथ ही चला सकते हैं और देव, दनुज, गन्धर्व, किन्नर इत्यादि सब ही जिन की बाण-वेद्या की धाक मानते हैं, उन्हें वनवासी और तपस्वी के वेश में देखकर भी आप टस से मस नहीं होते? अपने प्यारे भाई वीर नकुल और सहदेव के कष्ट देखकर भी आप क्षमाभाव क्यों धारण किये हैं? कुछ समझ में नहीं आती, क्या बात है। अपनी कथा अपने आप ही मैं क्या कहूँ। मैं राजा द्रुपद की पुत्री, महात्मा पाण्डु की पतोहू, वीर धृष्टद्युम्न की बहिन, आप सब की सहधर्मिणी भार्या और प्रतिविन्ध्य इत्यादि राजकुमारों की माता होकर भी इतने कष्ट झेल रही हूँ, इससे बढ़कर दुःख की बात

"हे नाथ! देखिये तो, दुष्ट दुर्योधन कितना कठोर है, हम सब को राज्यभ्रष्ट और वनवासी बना देने पर भी उसे तनिक अनुताप और दुःख न हुआ। सचमुच ही उसका हृदय लोहे का है, आप सरीखे धर्मात्मा बड़े भाई को भी कठोर वाक्य कहने में उसे हिचक न हुई। वह आप को कष्ट देकर आनन्द मना रहा है। आप जिस समय वन चलने के लिये तैयार हुए और आपने मृगचर्म धारण किया, उस समय सब रो उठे, सब के नेत्रों से आँसू बहने लगे, पर दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासन इन चार पापियों को कुछ भी न जान पड़ा, इनके एक बूँद भी आँसू न निकला। हे महाभाग! आप की यह नई सेज और कुश का आसन देखकर पुरानी सेज और उत्तमोत्तम राजसिंहासन की बरबस याद हो आती है। हा! नाथ! आप को इन्हीं आँखों से मैंने राजमण्डली द्वारा घिरे हुए देखा है, फिर आप को इस दशा में देखकर, आप ही बतलाइये, मुझे क्योंकर शान्ति मिल सकती है? हा! पहले आप को मैंने सुन्दर रेशमी कपड़े पहने, चन्दन लगाये, चमकते हुए सूर्य की भाँति देखा था और आज देख रही हूँ कि, आप चीर पहने हैं, शरीर पर उड़ उड़कर धूल जम रही है। पहले आप के घर में हजारों ब्राह्मण सोने के पात्रों में सुस्वादु भोजन करते और यथायोग्य दक्षिणा पाकर आशीर्वाद देते हुए विदा होते, पर आज वह दृश्य देखने को आँखें तरसती हैं। हाय, क्या करूँ और कैसे धीरज धरूँ? आप के जिन भाइयों को सुन्दर सुन्दर भोजन-सामग्री जिमाने के लिये, कुण्डल पहने हुए सुन्दर नौजवान रसोइये

स्वयम् क्रोध के वश में हो जाता है, वह हानि सहन करता है। क्रोध ही के कारण लोग बहुत बुरे काम कर बैठते हैं, वे बड़े लोगों का अपमान करते और क्रोध के वश होकर उन्हें कड़ी बातें कह देते हैं, अधिक क्या, क्रोधी लोग कभी कभी ऐसे काम कर बैठते हैं, जो उन्हीं के सर्वनाश का कारण होते हैं। इन्हीं बातों को समझ बूझकर बुद्धिमान् लोग क्रोध को जीतकर इसी लोक में नहीं, बल्कि, परलोक में भी सुख भोग करने में समर्थ होते हैं, यही सोचकर हमने अपनी क्रोधाग्नि को शीतल कर दिया है। जिस भाँति झूँठ की अपेक्षा सत्य ही बढ़कर है, उसी तरह क्रोध की अपेक्षा क्षमा ही का पद ऊँचा है। सच्चे तेजस्वी वही लोग हैं, जिनके हृदय में क्रोध का लेश भी नहीं। क्रोध को तेज समझना [मू]ढ़ लोगों का काम है। सच्चा तेज क्षमा में ही है इसीसे तत्व [द]र्शी पण्डितों ने क्षमा की बड़ी प्रशंसा की है। उन्होंने कहा है —

क्षमा तेजस्विना तेजः क्षमा ब्रह्म तपस्विना।
क्षमा सत्य सत्यवता क्षमा यज्ञ क्षमा शम ॥

अर्थात् तेजस्वियों का तेज, तपस्वियों का ब्रह्म और सत्य बोलने वालों का सत्य क्षमा ही है। तेजस्वी लोग यदि क्षमा नहीं कर सकते तो वे तेजस्वी नहीं, तपस्वी लोग यदि क्षमा का गुण न धारण करें तो उन्हें ब्रह्मप्राप्ति असम्भव है, और सत्यवक्ता यदि क्षमा से रहित हों तो उनका सत्य फलदायी नहीं। अधिक क्या, जो कोई दूसरों को क्षमा कर सकता है, उसे कोई यज्ञ करने

हो सकती है ? मेरी और अपने भाइयों की यह दशा देखकर भी जब आप व्यथित नहीं होते,तो मैंने समझ लिया कि आप निस्सन्देह ही क्रोधशून्य हैं। ससार में यह बात प्रसिद्ध है कि, इस जगती तल पर कोई भी क्षत्रिय ऐसा नहीं, जो क्रोधशून्य हो , पर आप में तो उलटी बात देखती हूँ।

यो न दर्शयते तेज. क्षत्रिय. काल आगते।
सर्वभूतानि त पार्थ सदा प्रतिभवन्त्युत॥

हे पृथापुत्र धर्मराज ! समुचित समय आने पर भी जो क्षत्रिय अपना तेज नहीं दिखाता, वह मनुष्यों के निकट पराभव को प्राप्त होता है।

"इससे क्षात्रधर्म की रक्षा कीजिये। इस समय शत्रुओं को क्षमा करना किसी भाँति भी आप का कर्त्तव्य नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि, तेज दिखाकर अपने शत्रुओं का नाश करना ही इस समय कल्याणकर है। मैं यह नहीं कहती कि, आप क्षमा का परित्याग ही कर दें। क्षमा करना भी क्षत्रियों का परम धर्म है , पर सब बातें समय के अनुसार ही होती हैं। जब क्षमा का अवसर आवे, तब क्षमा भी धारण कीजियेगा। मेरी समझ में तो यह समय क्षात्र तेज दिखाने का ही है, क्षमा का नहीं।"

युधिष्ठिर ने कहा —

"प्रिये ! सब भली और बुरी बातें क्रोध ही से होती हैं। जो मनुष्य क्रोध को रोक सकता है,उसी का कल्याण होता है और जो

स्वयम् क्रोध के वश में हो जाता है, वह हानि सहन करता है। क्रोध ही के कारण लोग बहुत बुरे काम कर बैठते हैं, वे बड़े लोगों का अपमान करते और क्रोध के वश होकर उन्हें कड़ी बातें कह देते हैं, अधिक क्या, क्रोधी लोग कभी कभी ऐसे काम कर बैठते हैं, जो उन्हीं के सर्वनाश का कारण होते हैं। इन्हीं बातों को समझ-बूझकर बुद्धिमान् लोग क्रोध को जीतकर इसी लोक में नहीं, बल्कि, परलोक में भी सुख भोग करने में समर्थ होते हैं, यही सोचकर हमने अपनी क्रोधाग्नि को शीतल कर दिया है। जिस भाँति झूँठ की अपेक्षा सत्य ही बढ़कर है, उसी तरह क्रोध की अपेक्षा क्षमा ही का पद ऊँचा है। सच्चे तेजस्वी वही लोग हैं, जिनके हृदय में क्रोध का लेश भी नहीं। क्रोध को तेज समझना मूढ लोगों का काम है। सच्चा तेज क्षमा में ही है इसीसे तत्व दर्शी पण्डितों ने क्षमा की बड़ी प्रशंसा की है। उन्होंने कहा है —

क्षमा तेजस्विना तेज क्षमा ब्रह्म तपस्विना ।

क्षमा सत्य सत्यवता क्षमा यज्ञ क्षमा शम ॥

अर्थात् तेजस्वियों का तेज, तपस्वियों का ब्रह्म और सत्य बोलने वालों का सत्य क्षमा ही है। तेजस्वी लोग यदि क्षमा नहीं कर सकते तो वे तेजस्वी नही, तपस्वी लोग यदि क्षमा का गुण न धारण करें तो उन्हें ब्रह्मप्राप्ति असम्भव है, और सत्यवक्ता यदि क्षमा से रहित हों तो उनका सत्य फलदायी नहीं। अधिक क्या, जो कोई दूसरों को क्षमा कर सकता है, उसे कोई यज्ञ करने की

आवश्यकता नहीं , क्षमा करना ही यश है, क्षमा ही शान्ति है और बिना क्षमा के शान्ति हो ही नहीं सकती।

"हे प्रिये ! महर्षि काश्यपने क्षमा-गुण को सब गुणों से श्रेष्ठ बतलाया है। इससे क्षमा की इतनी महिमा जान कर तुम भी अपना क्रोध रोको और सन्तोष धारण करो। पितामह भीष्म और वासुदेव कृष्ण भी शान्ति और क्षमा की महत्ता स्वीकार करते हैं। आचार्य्य कृप, द्रोण, विदुर, सजय और अन्य सज्जन शान्ति ही चाहते हैं—इस शान्ति के लिये वे लोग महाराज धृतराष्ट्र और दुर्योधन को समझावेंगे और हमारा राज्य वापिस दिलाने का यत्न करेंगे। यदि उन्होंने मान लिया तो भली ही बात है, नहीं तो अशान्ति की आगमें जलकर वे स्वयम् ही भस्म हो जायेंगे। जिस भरतवश में हम उत्पन्न हुए हैं, उस वश के लिये यह समय बड़ा कठिन है। उस स्थिति को हम भली भाँति समझ गये हैं। उसके नाश होने के लक्षण ही नेत्रों के सामने हैं, यह बात हम तुम से पहले ही कह चुके हैं। दुर्योधन बेसमझ है, वह शान्ति रखना और क्षमा करना क्या जाने? पर हम जानते हैं कि, इस समय हमारा धर्म क्षमा करना ही है, इससे हम अवश्य ही उस धर्म का पालन करेंगे।"

यह सुनकर द्रौपदीने कहा —

"अपने वश की परम्परा के अनुसार राज्य की रक्षा करना आप का कर्तव्य था। सो जिन धाता और विधाताने उस कर्तव्य के सम्बन्ध में आप की बुद्धि भ्रष्ट कर दी, उन दोनों को नमस्कार

है। कर्म ही सब से बढ़कर है और बिना कर्म किये फल की आशा नहीं। कर्म को छोड़ दया, धर्म और क्षमा का सहारा लेकर कोई भी इस संसार में उन्नति नहीं कर सकता। लोकापवाद से डरकर अपनी उन्नति के लिये कर्म न करना, किसी प्रकार भी विधेय नहीं। आप सदैव ही धर्म धर्म चिल्लाया करते हैं। और मैं भली भाँति जानती हूँ कि, आप मुझे और अपने भाइयों को छोड़ देंगे, पर जिसे आप धर्म समझे बैठे हैं उसे कभी न छोड़ेंगे। सुनती हूँ, आर्य लोगों का कथन है कि, जो राजा धर्म की रक्षा करता है, उसकी रक्षा धर्म भी करता है। जिस तरह मनुष्य की छाया मनुष्य के पीछे ही जाती है, उसी तरह आप की बुद्धि भी सदैव ही धर्म के पीछे रही है। चोरों से भरे हुए इस जङ्गल में भी आप निरन्तर धर्म ही करते रहते हैं। आपके वाक्यों और कार्यों दोनों ही में धर्म वर्तमान है। पर आप के धर्म ने आप की रक्षा कहाँ की? मैं नहीं समझती कि, इस प्रकार धर्मनिष्ठ होते हुए भी जूआ खेलनेके लिये आपके हृदय में विपरीत बुद्धिने क्योंकर स्थान पाया? हे धर्मराज! कुछ भी हो, आप का यह दुःख मुझ से नहीं देखा जाता और इसे मैं नहीं सहन कर सकती। लोग कहते हैं कि, सब प्राणी ईश्वर के वशीभूत हैं, ईश्वर ही उनके सुख और दुःखका विधाता है, वह पूर्व जन्म में अर्जित कर्मों के अनुसार प्रत्येक वस्तु का विधान करता है—मनुष्यजाति ईश्वर के हाथ की कठपुतली है। अज्ञान के अन्धकार से घिरे हुए प्राणी अपने सुखों और दुःखों के स्वामी नहीं हो सकते, वे ईश्वर द्वारा भेजे जाकर

स्वर्ग और नरक को गमन करते हैं। देखिये,ईश्वर ने अपनी मायाका कैसा जाल फैला रक्खा है। अपनी मायामें मोहित करके वह प्राणियों के द्वारा ही प्राणियों का संहार करता है। तत्वदर्शी मुनि सृष्टिके इस तमाशेको इन्द्रजालका खेल समझते हैं। जिस तरह बालक खिलौने लेकर खेल करता है, उसी तरह ईश्वर भी कभी जीवों को संयोग और कभी वियोग देकर उनके द्वारा अपना मनोरञ्जन करता है। हे राजन्! वह ईश्वर प्राणियों के साथ पिता माता की भाँति स्नेह नहीं करता। क्रुद्ध होने पर वह इतर प्राणियों की भाँति व्यवहार करता है। सुशील, लज्जाशाली और धर्मनिष्ठ सज्जन कष्ट झेलकर दिन काटें और पापात्मा लोग विषयवासना में विह्वल होकर आनन्द में मौजें मारें, क्या यही ईश्वरका न्याय है? और क्या इसी से कहा जा सकता है कि, वह पक्षपातशून्य है? हे महाराज! आप को दुःख और दुर्योधन आदि को सुख की प्राप्ति देखकर ही मैं विषमदर्शी विधाताका तिरस्कार करती हूँ। क्रूर, लोभी और नृशंस दुर्योधन का राज्यभोग देखकर तो अधर्म ही की जीत दृष्टिगोचर होती है। इस अधर्म से उत्पन्न हुए पाप का फल स्वयम् ब्रह्मा को क्यों नहीं भोगना पडता, क्या आप जानते हैं? कारण इस का यही है कि, वह बलवान् है। इस लिये हे धर्मराज! बलही मुख्य है। दुर्बल मनुष्य ही दूसरे के अधीन होते हैं और उन्ही की दशा शोचनीय होती है।"

युधिष्ठिर बोले —

"हे याज्ञसेनि! तुमने जो कुछ कहा है, वह ऊपर से कानों को

भला भले ही लगे, परन्तु यह नास्तिकों का मत है। फलप्राप्ति की इच्छा करके कर्म करना ठीक नहीं। हम ऐसा करना उचित नहीं समझते। हम धर्माचरण इस लिये नहीं करते कि, उसके द्वारा हमें उत्तमोत्तम फलों की प्राप्ति हो, बल्कि, धर्म करना उचित है, यही जानकर करते हैं। धर्म की निन्दा करना पाप है, इससे तुम धर्म पर अश्रद्धा न करो और धाता का तिरस्कार करके पाप भागिनी न बनो। तुमको अपने और अपने भाई धृष्टद्युम्न के जन्मकी कथा ज्ञात ही है। तुम्हीं समझो कि, धर्मानुष्ठान करने से फल प्राप्त होता है या नहीं। धीर लोग अपने किये हुए कर्मों का थोड़ा फल पाकर भी सन्तुष्ट हो जाते हैं और मूर्ख लोगों को अधिक फल प्राप्त करके भी तुष्टि नहीं होती और इसीसे मरकर दूसरा जन्म लेने पर भी धर्मजनित सुख उन्हें नहीं प्राप्त हो सकता। फल न पाने पर भी धर्म या देवता पर अश्रद्धा करना ठीक नहीं, क्योंकि देवता लोग भी भली भाँति यह बात नहीं जानते कि, कर्मों का फलोदय कब होगा। हे कृष्णे! तुम नास्तिकता छोड़ दो और ईश्वर को प्रणाम करो कि, धर्म का अपमान अथवा विधाता की निन्दा करने वाली बुद्धि तुम्हारा आश्रय न ग्रहण करे।"

द्रौपदी ने कहा —

"हे धर्मराज! मैं न तो धर्म ही की निन्दा करती हूँ और न विधाता ही का अपमान कर सकती हूँ। दुःख से पीड़ित होने के कारण मैंने जो कुछ कहा है, उसे मेरा विलाप समझिये। मैं अभी और भी रोना रोऊँगी, उसे ध्यान देकर सुनिये। मैं तो

समझती हूँ कि, इस ससार में ज्ञानी पुरुषों को कर्म करते ही जाना चाहिये, क्योंकि चाहे स्थावर हो चाहे जङ्गम, कर्मविहीन होकर कोई भी समय नहीं विता सकता। जीविका निर्वाह करने के लिये भी कर्म करते रहना आवश्यक है। इससे आपसे भी अनुरोध है कि, आप भी कर्मानुष्ठान में लग जायें और ग्लानि का परित्याग कर दें। कर्म करने से ही ऐश्वर्य की प्राप्ति है। जो कुछ बदा होगा, वही होगा, ऐसा सोचने वाले लोग सदैव अपनी हानि करते हैं। हे धर्मराज! अकस्मात जो कुछ प्राप्त होता है, उसे हठलब्ध और भाग्यवश जो कुछ प्राप्त होता है, उसे दिष्टलब्ध कहते हैं। इन दोनों से भी बढ़कर वह पाना है, जो कर्मोंके द्वारा मिलता है। उसे प्रत्यक्ष अथवा पौरुषलब्ध कहते हैं। सच्चा आनन्द उसी की प्राप्ति में है। वाञ्छित फल की सिद्धि हो या न हो, कर्म करते ही जाना कल्याणकर है, कर्म की उपेक्षा करना किसी समय भी ठीक नहीं। सब कारण इकट्ठे होने पर अवश्य ही सिद्धि प्राप्त होती है। जब तक अभिलषित फल न प्राप्त हो, तब तक काम करते जाना ही उन्नतिका मार्ग है। जो लोग कर्म करने से नहीं हिचकते, उन्हें किसी न किसी समय सिद्धि अवश्य ही प्राप्त होती है। पुरुष को अपने तई कभी अशक्त समझकर चुप बैठना उचित नहीं। इससे आप भी ऐसा ही करें।"

प्रिया द्रौपदी की बातें सुनकर भीमसेन उत्तेजित हो उठे। वे कहने लगे —

"राजन्! द्रौपदी की बातें बहुत ही ठीक हैं। आप जिसे धर्म

समझे बैठे हैं वही धर्म नहीं उसके अतिरिक्त भी आप का कुछ धर्म है। प्रजा का पालन करना आप का मुख्य धर्म था, राज्य को खोकर आप उससे विमुख हो बैठे। अब इस समय आप का धर्म यही है कि, उस राज्य के लिये यत्न करें। यदि आप ऐसा न करेंगे, तो प्रजापालन से विमुख रहकर धर्म की हानि करने का अपयश शिर लेंगे। जिस तरह सिंह का भोजन सियार छीन ले, उसी तरह हमारा राज्य दुर्योधन ने ले लिया है। यह सब आप ही की बदौलत, नहीं तो हम किसी से कमजोर नहीं। इस पृथ्वी पर ऐसा कौन वीर है, जो अर्जुन के गाण्डीव के सामने ठहर सके? जिस समय हम गदा लेकर युद्धस्थल में निकल पड़ें, उस समय हमारे सामने कौन आ सकता है? पाञ्चाल, कैकय, सञ्जय गण और यदुवंशियों समेत कृष्ण हमारे सहायक हैं, फिर हमें किस का डर? हम शत्रुओं को पराजित करके अपना राज्य ले सकते हैं।"

युधिष्ठिर ने कहा—

"भाई! तुम्हारी बातें नहीं, बाण हैं। उनसे हमारी छाती छिद गई है, फिर भी तुम्हें दोष नहीं दे सकते। हम ही इसके लिये दोषी हैं। हमहीने जूए के खेल में हारकर सर्वस्व खोया और तुम सब को इस दुःख में लिप्त किया है। पर हम वनवास की प्रतिज्ञा में बँध गये हैं। तेरह बरस धीरज धारण करके अनुकूल समय की प्रतीक्षा करो।"

भीमसेन ने कहा —

"संसार में सैकड़ों और सहस्रों लोग नित्यप्रति मरते हैं।

कौन जानता है, तब तक हम सब जीवित ही रहेंगे ? बारह वर्ष वनवासके बीतने पर भी, एक वर्ष अज्ञातवास करना है, वह बड़ा ही कठिन काम है। आप ऐसे यशस्वी पुरुष किसी से कैसे छिप सकेंगे और अज्ञातवास कैसे पूरा होगा, यह हमारी समझ में नहीं आता। अजगर की भाँति निश्चेष्ट बैठे रहना, हमारी समझ में तो किसी तरह ठीक नही।"

युधिष्ठिर यह सुनकर कुछ देर सोचते रहे, पर थोड़े ही समय के बाद उन्होंने कहा —

"हे महाबाहु ! तुमने जो कुछ कहा, वह ठीक है। तुम बड़े साहसी हो, पर तुम में समझ कम है। तुम आगे की बात भली भाँति नही सोचते। क्या तुम यह नहीं जानते कि भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य सरीखे अगणित रथी और महारथी दुर्योधन की ओर होकर लड़ेंगे ? राजसूय-यज्ञ में जिन राजाओं से तुमने वश्यता स्वीकार कराई है, वे भी इस समय हम लोगों से खिंचकर दुर्योधन की ओर हो जायँगे। असमय में कोई किसी का साथ नहीं देता। ऐश्वर्यके समय जो साथी रहते और हाँ में हाँ मिलाते हैं, बुरा समय आने पर वे [illegible]
हो जाया करते हैं। कौरवों की [illegible] हैं, वे
स्नेह भले हो करें, पर राज्य का अन्न
है और अब भी वे राज्या[illegible]
[illegible] हैं,
[illegible]।

काम नहीं। औरों की तो बात जाने दो, वीरशिरोमणि कर्ण अद्वितीय धनुर्धर है, उसके रणकौशल की बात का ध्यान कर के हमें नींद नहीं आती।"

ये बातें सुनकर भीमसेन चुप रहे। इसी समय दैवयोग से महात्मा वेदव्यास आ पहुँचे थे। युधिष्ठिर की अन्तिम बातें उन्होंने भली भाँति सुनी थीं। वे बोले —

"हे युधिष्ठिर! भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण इत्यादि वीरों से शङ्कित रहना ठीक ही है, पर प्रतिस्मृति नाम की यह विद्या हम तुम्हें देते हैं। महावन्री अर्जुन इसकी सहायता से दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिये तपस्या करें। यदि वे अपनी तपस्या द्वारा इन्द्र और भवानीपति शङ्कर को सन्तुष्ट कर सके और अस्त्र प्राप्त करके उनके चलाने की युक्ति भी उन्होंने जान ली, तो निश्चय समझो कि फिर अर्जुन के जोड का कोई भी धनुर्द्धर न रह जायेगा। उस समय तुम्हें किसी से डर न रहेगा और तुम वेधडक होकर युद्ध कर सकोगे।"

इस तरह समझा-बुझाकर व्यासदेव चले गये। उनके चले जाने पर पाण्डव लोग द्वैतवन से काम्यक वन को फिर लौट आये।

अठारहवाँ परिच्छेद।

द्रौपदी और सौगन्धिक कमल का फूल।

काम्यकवन में आकर कुछ काल बाद व्यास की दी हुई प्रतिस्मृति नामक विद्या धर्मराज ने अर्जुन को सिखला दी और उन्हें अस्त्र प्राप्ति के लिये तप करने के हेतु उत्तर की ओर जाने का आदेश दिया।

युधिष्ठिर के कथनानुसार अर्जुन ने कवच और दस्ताने पहने, गाण्डीव धनुष और अक्षयतूणीर साथ लिया, इसके बाद अग्निहोत्र करके वे चलने के लिये तैयार हो गये। उस समय द्रौपदी के हृदय में करुणा रस का सञ्चार हो आया, उसकी बातें सुनकर सब की छाती उमड आई। द्रौपदी ने कहा —

"हे महाबाहो! आप के जन्म ग्रहण करने के समय आप की माता ने जो कुछ अभिलाषा की हो और जो कुछ आप की इच्छा हो, वह सब पूरी हो। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि, वह हम लोगों को क्षत्रिय कुल में जन्म न दे। मैं ब्राह्मणों को नित्यप्रति नमस्कार करती हूँ, जो भीख माँगकर अपनी गुज़र करते हैं। इन ऐसे क्षत्रियों से तो वे ब्राह्मण ही भले। दुर्योधन ने सभा में मेरा जो अपमान किया था और उससे मुझे जो दुःख पहुँचा था, उससे

भी बढ़कर दुःख आज आप के वियोग का ध्यान करके हो रहा है। हे नाथ! आप ही जब साथ न रहे, तो भोग, ऐश्वर्य और जीवन सब ही कुछ बेकार है। हम सब का सुख दुःख, जीवन मरण, राज्य और ऐश्वर्य सब आप ही में है। पर आपने जिस कठिन कार्य के करने का बीडा उठाया है, वह आप सरीखे वीर-पुरुषों के ही करने के योग्य है, इससे मैं आप का कल्याण चाहती हुई यही कहूँगी कि जाइये, आप का कार्य पूरा हो। परमात्मा से यही विनय है कि, प्रवास में आप का कल्याण हो। ह्री, श्री, कीर्त्ति, द्युति, उत्तमा, पुष्टि, लक्ष्मी और सरस्वती मार्ग में आप की रक्षा करें। आप अपने बड़े भाई के आज्ञानुसार जा रहे हैं और सदैव ही आपने बड़ों की आज्ञा पालन की है, इससे अवश्य ही आप का मनोरथ सफल होगा। मैं देवताओं की पूजा करके यही विनती करूँगी कि, जहाँ कहीं आप रहें, सुख से रहें।"

द्रौपदी की बात समाप्त होने पर अर्जुन ने अपने भाइयों समेत पुरोहित धौम्य और अन्य ब्राह्मणों को प्रणाम किया और उत्तर की ओर चल दिये। गन्धमादन इत्यादि पर्वतों को पार कर वे दूर निकल गये। वहाँ पर उन्होंने अपनी तपस्या द्वारा, इन्द्र और भवानीपति शङ्कर को सन्तुष्ट किया और मनमाने अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये।

इधर अर्जुन विहीन पाण्डव चिन्ता में लीन रहने लगे। सब भाई अर्जुन की याद करके, प्राय उन्हीं की बातें किया करते। एक दिन अपने पतियों पर नेह रखने वाली पतिपरायणा द्रौपदी

मध्यम पति अर्जुन की याद करके व्याकुल हो उठीं। उस दिन उनका धीरज जातासा रहा। उन्होंने महाराज युधिष्ठिर के पास जाकर देखा तो वेभी अर्जुन की याद में अधीर थे। उनसे वे कहने लगीं —

"हे महाराज! दो भुजाओं वाले होकर भी जो पाण्डव अर्जुन, सहस्र भुजाओं वाले कार्त्तवीर्य अर्जुन से पराक्रम में किसी भाँति भी कम नहीं, उनके विरह के कारण इस काम्यकवन में तनिक भी मेरी तबियत नहीं लगती। मुझे यह स्थान सूनासा लगता है। इस वन में वैसे ही फूल फूले हैं और वैसे ही जीव जन्तु घूम रहे हैं, पर सव्यसाची अर्जुन के होते हुए मेरे नेत्रों के लिये इसकी जो शोभा थी, वह अब नहीं है। उनकी धनुष टङ्कार सुनकर दुखित और चिन्तित रहते हुए भी मेरी हृदय तन्त्री बज उठती थी, पर अब तो उनकी याद करके एक घड़ी के लिये भी मुझे चैन नहीं।"

यह सुनकर भीमसेन ने कहा —

"प्रिये! तुम सच कहती हो। अर्जुन के बिना यह काम्यक वन मुझे भी सूनासा लगता है।"

नकुल और सहदेव भी उसी समय बोल उठे.—

"राजन्! भाई भीमसेन ने ठीक कहा है। आप की अनुमति हो तो हम लोग कहीं दूसरी जगह चलकर रहें।"

बहुत दिनों के बाद एक दिन लोमश ऋषि ने आकर महाराज युधिष्ठिर को आनन्द सवाद सुनाया। वे कहने लगे —

"इन्द्र की कृपा से यम, वरुण, कुबेर इत्यादि देवताओं ने अर्जुन को बहुत से अच्छे अच्छे अस्त्र शस्त्र दिये हैं। तपस्या करके अर्जुन ने शङ्करजी से पाशुपत नाम का अस्त्र भी प्राप्त कर लिया है। अब इस पृथ्वीतल पर उन्हें जीतने की किसी में भी शक्ति नहीं। यही नहीं, वहाँ रहकर गाने बजाने से सम्बन्ध रखने वाली गान्धर्व विद्या भी उन्होंने भली भाँति सीख ली है। इन्द्र ने उनसे यह भी कहा है कि, कर्ण के सहजात कुण्डल और कवच का तोड़ करने के लिये भी वे यत्न करेंगे।"

यह सुनकर द्रौपदी समेत सब पाण्डव बहुत प्रसन्न हुए। राजा युधिष्ठिर तो अत्यन्त ही पुलकित हुए। इसके अनन्तर उन्होंने लोमश ऋषि के साथ तीर्थ-यात्रा करने की ठानी। लोमश-ऋषि को तीर्थों और पुण्यस्थानों की उत्पत्ति का हाल, इतिहास और माहात्म्य भली भाँति मालूम था, इसीसे उन्होंने पाण्डवों को तीर्थयात्रा कराना स्वीकार भी कर लिया। पतिव्रता द्रौपदी को साथ लेकर पाण्डव लोग उनके साथ चल पड़े।

प्रभास क्षेत्र में पहुँचने पर, यादवों के साथ कृष्ण आकर उनसे मिले और सहानुभूति प्रकाश करके उन्होंने सब को सान्त्वना दी। नैमिषारण्य, प्रयाग, वेदितीर्थ, महीधरतीर्थ, कौशिकी तीर्थ, गङ्गासागर सङ्गम इत्यादि स्थानों के दर्शन करते हुए वे लोग प्रभास क्षेत्र पहुँचे। वहाँ पर कृष्ण से भेंट हो जाने पर सब लोग बहुत खुशी हुए। युधिष्ठिर ने बलराम और कृष्ण से कहा —

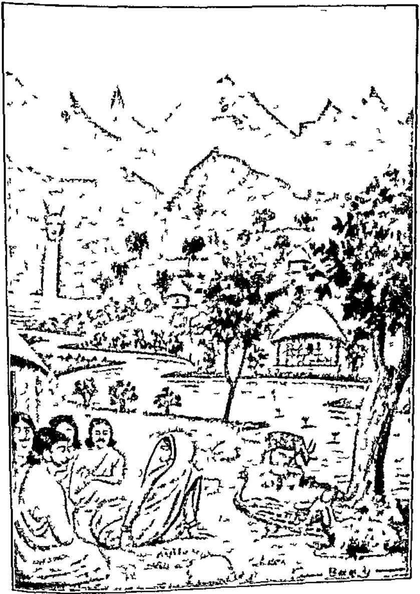
"इस समय आप लोग लौट जाये, समय आने पर फिर हम सब लोग इकट्ठे हो सुख से मिलेंगे।"

वहाँ से चलकर इधर-उधर घूमते और पहाड़ी मार्गों को पार करते हुए गन्धमादन पर्वत के नीचे पहुँचकर, सब लोग पहाड़ की चोटी पर चढ़ने लगे। इसी समय बड़े ज़ोर से आँधी आई, अन्धकार हो गया और हवा के झकोरों से उड़-उड़कर धूल आँखों में घुसने लगी। भीम द्रौपदी को लेकर धनुष के सहारे बैठ गये। कोई गुफा में, कोई विकट जङ्गल मे घुसकर, कोई वृक्ष से लिपट कर, कोई पत्थर का मजबूत टुकड़ा पकड़कर किसी न किसी तरह ठहर गया।

हवा के बन्द होते ही भयङ्कर वृष्टि होने लगी। बिजली चमकने लगी और बादल गरजने लगे। टूटते हुए पेड़ों को लिये हुए झरने उमड़ते हुए कल कल करते बड़े वेग से बह चले।

धीरे धीरे सब कुछ शान्त हुआ। पानी बन्द हुआ और आँधी भी बन्द हो गयी। भीम ने उस समय अपने भाइयों और साथियों को पुकारना शुरू किया। भीमसेन की आवाज तेज थी। दूर ही से सब लोगों ने उसे सुन लिया। सब लोग इधर-उधर बिखरे हुए थे, उस समय वे लोग फिर आकर इकट्ठे हुए।

एकत्रित होकर वे लोग फिर चल पड़े। पर थोड़ी ही दूर जाने पर द्रौपदी के पैरों ने जवाब दे दिया। कई कोस वह साहस पूर्वक चली आई थी, पर अब पैदल चलना उसके मान की बात न रही। रथ पर्वत के नीचे ही छोड़ दिये गये थे, क्योंकि उस



द्रौपदी की शान्ति ।
"द्रौपदी के पैरों ने जवाब दे दिया ।"
(पृष्ठ १६४)

पार्वत्य प्रदेश में रथ चलने के लिये मार्ग ही न था। थके होने पर पहाडी हवा लगने से द्रौपदी पहले ही से मन-ही मन हार बैठी थी, पर अपने पतियों के साथ साथ पैदल चलने से उसने नाहीं न की थी। इस समय तो वह बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पडी।

उसकी यह दशा देखकर पाण्डवों को बडा दु ख हुआ। नकुल ने युधिष्ठिर से कहा —

"महाराज! द्रुपदनन्दिनी ने कभी ऐसे कष्ट नहीं झेले, इसीसे वे बेहोश होकर गिर पडी हैं। आप उन्हें होश में लाने का यत्न कीजिये।"

राजा युधिष्ठिर यह दशा देखकर रो उठे। द्रौपदी को अपनी गोद में बिठाकर वे कहने लगे —

"हा! जो पहरा-चौकी वाले महलों मे, दूध के फेन की तरह मुलायम और सफेद सेजों पर सोती थी, उस राजदुलारी की यह दशा! राजा द्रुपद ने यही सोचकर हमारे हाथ में इस रमणीय रत्न को सौंपा था कि, पाण्डवों की भार्या होकर यह सुख से रहेगी; पर मेरे ही दोष से इस बेचारी को आज यह दु ख देखना पडा है, जूए के खेल में हारकर मैंने जो भूल की थी, उससे भी अधिक भूल इस दुर्गम पर्वत और जङ्गल में लाकर की है।'

यह कहकर वे रोने लगे। नकुल और सहदेव धीरे धीरे द्रौपदी के चरण दाबने और भीमसेन उसे होश में लाने की तदबीरें करने लगे। थोडी देर में द्रौपदी सचेत हो उठी, तब युधिष्ठिर ने भीमसेन से

"हे भाई ! आगे ऐसे स्थान मिलेंगे, जिनमें वर्फ के कारण चलना कठिन हो जायेगा। द्रौपदी उन्हें कैसे पार कर सकेगी?"

भीमसेन बोले —

"महाराज ! आप इसके लिये चिन्ता न करें। हम द्रौपदी को खुद अपने कन्धे पर लादकर ले चलेंगे, नहीं तो हिडम्बा के पुत्र घटोत्कच को बुलायेंगे। उसने हमें वचन दिया था कि, आवश्यकता होने से याद करने पर तत्क्षण ही वह हाजिर होगा।"

तब युधिष्ठिर की आज्ञा से भीमसेन ने घटोत्कच को याद किया। उसने उपस्थित होकर कहा —

"पिता ! क्या आज्ञा है?"

भीमसेन बोले —

"पुत्र ! तुम्हारी माता बहुत थक गयी हैं, इस लिये उन्हें कन्धे पर चढ़ाकर तुम हमारे पीछे पीछे चलो।"

घटोत्कच ने कहा —

"आप इसकी चिन्ता न कीजिये। माता को तो मैं स्वयम् ले चलूँगा और मेरे साथी राक्षस आप लोगों को ले चलेंगे।"

इसके बाद घटोत्कच स्वयम् द्रौपदी को और उसके साथी राक्षस पाण्डवों और अन्य जनों को लादकर ले चले। उन्होंने उन्हें बदरिकाश्रम के पास वाले एक अत्यन्त रमणीय वन में उतार दिया।

वहाँ पर द्रौपदी बड़े आनन्द से रहने लगी। प्राकृतिक सौन्दर्य की छटाएँ देखकर उसे बड़ा आनन्द मिलता और वह मौज में



घटोत्कच की सहायता।

"घटोत्कच द्रौपदी को और उसके साथी राक्षस पाण्डवों और अन्य जनों को ... ।" (पृष्ठ 1...

इधर-उधर घूमा करती। यह देखकर पाण्डव लोग भी सुखी हुए।

कितने ही दिन इस तरह बीत गये। एक दिन बहुत बडा एक सुन्दर कमल हवा के झोके से उडकर द्रौपदी के पास आ गिरा। वह कमल जितना ही सुन्दर था, उतनी ही सुगन्ध भी उससे निकल रही थी। उसे हाथ में लेकर द्रौपदी ने भीमसेन से कहा ––

"यह फूल कैसा सुन्दर है! इसे मैं धर्मराज को उपहार दूँगी। हे प्रियतम! यदि तुम सचमुच मुझसे प्रेम करते हो, तो मुझे ऐसे ही और फूल ला दो।"

प्रिया द्रौपदी की इच्छा पूरी करने के लिये भीमसेन अपनी गदा लेकर ईशान कोण की ओर चल दिये, क्योंकि द्रौपदी ने बतला दिया था कि, वह फूल ईशान कोण की ही ओर से उडता हुआ आया था।

थोडी दूर जाकर उन्होंने देखा कि, एक बहुत विस्तृत केले का वन लगा हुआ है। उस कदली-वन में प्रवेश करते ही जङ्गली हाथी उनकी ओर दौडे। भीमसेन बडे पराक्रमी थे, उन्होंने उन्मत्त हाथियों को तुच्छ समझा। अपनी गदा के आघात से उन्होंने हाथियों को इस भाँति मारा कि, वे चिंघाडते हुए भाग निकले। इसी तरह अनेक विघ्न बाधाएँ पार करते हुए वे कुबेर के सौगन्धिक वन के पास पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि, भाँति-भाँति के सुगन्धित फूलों को स्पर्श करके वायु अत्यन्त ही सुगन्धित हो उठी है। वैसे फूल उन्होंने पहले कभी न देखे थे। उन्होंने

कि, पास ही एक सुन्दर झील बह रही है और उसमें हंस, चक्र-चाक इत्यादि अनेक जलचर पक्षी आनन्द से जल विहार कर रहे हैं। यह दृश्य देखकर उन्हें एक बार अपनी प्रियतमा द्रौपदी की याद आ गयी और थोडी देर के लिये वे उसकी याद में लीन से हो गये।

थोडी देर के बाद ही उन्होंने उसका जलपान किया। उस पहाडो जल में इतना स्वाद और इतना गुण था कि, भीमसेन की सारी थकावट जाती रही। इसी झील मे वैसे ही अगणित कमल के फूल फूले थे, जैसा फूल द्रौपदी को अकस्मात् मिला था और जैसे फूल लाने के लिये वे इतनी दूर चलकर आये थे। यह झील कुबेर-राज के जल-विहार करने की जगह थी, इसकी रक्षा के लिये कुबेर ने बहुत से राक्षस नियुक्त कर रखे थे। उन राक्षसों ने देखा कि, भीम का विचित्र वेश है। एक ओर तो, मुनियों की तरह वे मृगचर्म आदि धारण किये हुए हैं, दूसरी ओर उनके हाथ में गदा भी है। मुनिवेश और वीरवेश दोनों का समिश्रण देखकर उन राक्षसों को बडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उनसे पूछा :—

"हे बटोही! तुम कौन हो और यहाँ पर किस लिये आये हो? हम नहीं समझ सकते कि, तुम मुनि हो या कोई वीर पुरुष, क्योंकि तुम्हारे वेश से दोनों ही बातें प्रतीत होती हैं।"

भीमसेन ने कहा —

"हम महात्मा पाण्डु के पुत्र और धर्मराज युधिष्ठिर के छोटे भाई हैं। हमारा नाम है भीमसेन। इस झील में जिस तरह के

सौगन्धिक फूल फूले हुए हैं, ऐसा ही एक फूल एक दिन हवा में उड़ता हुआ बदरी तीर्थ में गिरा था। यशस्विनी द्रौपदी को साथ लेकर हम लोग वहाँ तीर्थ यात्रा के लिये आये थे। द्रुपदनन्दिनी ने ऐसे ही फूलों के पाने की इच्छा की, हम उन्हीं की इच्छा पूर्ण करने के लिये, फूलों की खोज में निकले। अब हमारा मनोरथ सफल हुआ। ये सुन्दर सुन्दर फूल तोड़कर हम ले जायँगे और पाञ्चालनन्दिनी की भेंट करेंगे।"

बाग के रक्षकों ने कहा —

"हे भीमसेन! यह सरोवर यक्षराज कुबेर का परमप्रिय क्रीडा स्थान है। मृत्युलोक के रहने वाले लोगों को यहाँ आकर घूमने का अधिकार नहीं। देव, देवर्षि, यक्ष, गन्धर्व और अप्सराएँ भी बिना कुबेर की आज्ञा के न तो यहाँ घूम हो सकती हैं और न यहाँ का जल ही पी सकती हैं। जो कोई कुबेर की यह आज्ञा नहीं मानता और इच्छापूर्वक यहाँ घूमता है, उसे अवश्य ही काल-कवलित होना पड़ता है, इसमें सन्देह नहीं। तुम यदि कुबेर की आज्ञा का उल्लङ्घन करके फूल तोड़ना चाहते हो, तो फिर तुम अपने तईं धर्मराज का भाई क्यों कहते हो? हे वीर! यदि तुम्हें फूल लेना और इस सरोवर का जल पीना है, तो कुबेर की आज्ञा ले आओ; नहीं तो, इस सरोवर और फूलों की ओर देखना भी नहीं।"

भीमसेन बोले —

'हे राक्षसो! यहाँ पर तो कुबेर मौजूद भी नहीं, उनसे हम क्योंकर आज्ञा प्राप्त कर सकते हैं? पर यदि वे होते, तोभी हम

उनसे आज्ञा न माँगते, क्योंकि बहुत दिनो से यह बात चली आ रही है कि, राजा लोग कभी किसी से कुछ नहीं माँगते। हम किसी तरह क्षात्र-धर्म नही छोड सकते। यह सरोवर महात्मा कुवेर के घर में पैदा नहीं हुआ, पर्वत के झरने से इसकी उत्पत्ति हुई है, इससे इस पर कुवेर का उतना ही अधिकार है, जितना सब लोगों का। फिर ऐसी दशा में, किसी को कुवेर से आज्ञा प्राप्त करने की आवश्यकता ही क्या ?"

यह कहकर भीमसेन तालाव में घुस पडे और फूल तोडने लगे।

यह देखकर राक्षस लोग उनकी ओर दौडे और युद्ध होने लगा। भीमसेन ने सैकडों राक्षसों को मार डाला। तब उन लोगों ने इसकी सूचना कुवेर को दी। कुवेर ने कहा —

"हमें यह मालूम हो चुका है कि, भीमसेन द्रौपदी के लिये फूल लेने आये हैं। इससे उन्हें मत रोको।"

फिर क्या था, भीमसेन ने इच्छापूर्वक खूब फूल तोड़े और अमृत के समान मीठा वहाँ का जल पिया और स्वच्छन्दता पूर्वक वहाँ की सैर करने लगे।

इधर राजा युधिष्ठिर ने वदरिकाश्रम में देखा कि, भीमसेन बहुत दिनों से गायब हैं। वे जानते थे कि, भीमसेन कलह प्रिय हैं, इससे उनके लिये वे चिन्तित हो उठे। उन्होंने द्रौपदी से कहा —

"प्रिये! भीमसेन का बहुत दिनों से कुछ पता नहीं चला, वे न जाने कहाँ चले गये ?"



भीमसेन का कुबेरके रक्षकों से युद्ध ।

"भीमसेन ने सैकड़ों राक्षसों को मार डाला ।' (पृष्ठ १७०)

द्रौपदी ने उत्तर दिया —

"उस दिन जैसा कमल का फूल मैंने आप की भेंट किया था, वैसे ही बहुत से कमल के फूल लाने के लिये मैंने उनसे कहा था। उसी हेतु वे ईशान कोण की ओर गये थे।"

यह जानकर महाराज युधिष्ठिर उसी ओर अपने साथियों के साथ भीमसेन की खबर लेने के लिये चल पड़े और पता लगाते हुए सौगन्धिक वन में जा पहुँचे। वहाँ भीमसेन को पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए। कुबेर ने उदारता पूर्वक उन्हें वहाँ कुछ दिन रहने के लिये आज्ञा दे दी। वहाँ कुछ दिन रहकर वे फिर नर-नारायण के बदरिकाश्रम में लौट आये।

इन्हीं दिनों उन्हें खबर मिली कि, अर्जुन अब शीघ्र ही इन्द्रलोक से लौटने वाले हैं। इससे उनकी प्रतीक्षा में वे लोग आनन्दपूर्वक कैलास पर्वत पर रहने लगे।

इसके बाद उन्होंने द्रौपदी से कहा —

'हे कृष्णे! प्रतिविन्ध्य इत्यादिक तुम्हारे पुत्र द्वारका में आनन्द से रहते हैं। तुम्हारे पिता और तुम्हारे भाइयों ने राज्य का लालच देकर उन्हें पाञ्चाल-नगर बुलाने और अपने पास रखने के लिये बडा यत्न किया, पर वे वहाँ नहीं गये। यादवों के साथ द्वारका में रहना ही उन्होंने पसन्द किया। जिस तरह तुम अपने पुत्रों को स्नेह से रखतीं, ठीक उसी तरह सुभद्रा उनसे स्नेह करती हैं। अभिमन्यु उन सब से बडा है, इससे वह उन्हें ढाल, तरवार, गदा चलाना और घोडे पर चढना सिखलाता है। प्रद्युम्न अभिमन्यु को और तुम्हारे पुत्रों को अन्य अन्य करतब सिखाते तथा उनकी देख-भाल रखते हैं। जहाँ जहाँ वे लोग जाते हैं, राज्य के रथ और हाथी घोडे उनके पीछे-पीछे रहते हैं।"

यह कहकर कृष्ण ने फिर युधिष्ठिर से कहा —

"सब यदुवशी आप के अधीन हैं। यदि आप की आज्ञा हो, तो वे लोग कौरवों पर चढाई करके उन्हें हरा दें और आप सुख से राज्य करें।"

युधिष्ठिर बोले —

"हे केशव! हमें आप ही का सहारा है और सदैव ही आप ने हमारी रक्षा की है, पर जैसे हमने वनवास के बारह वर्ष बिता डाले हैं, उसी तरह एक वर्ष अज्ञातवास का भी बिता लेने दीजिये। इसके बाद हम सब मिलकर फिर सलाह करेंगे कि, हमें क्या करना चाहिये। आप की सदैव ऐसी ही स्नेहदृष्टि हम सब

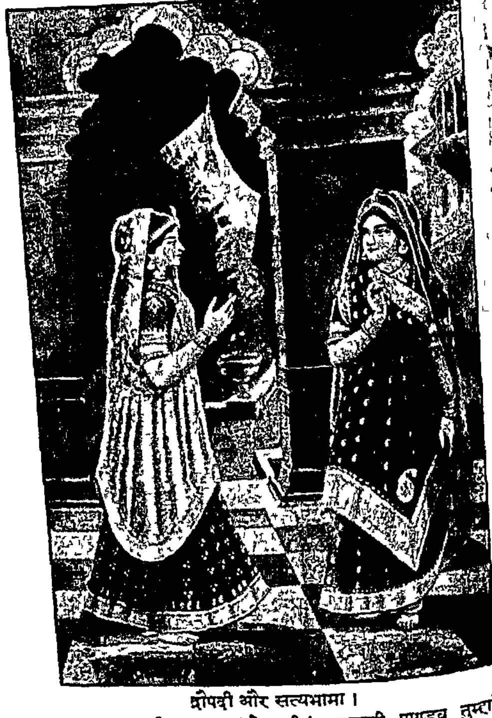
पर बनी रहे और पाण्डव लोग सदैव ही आप के आज्ञाकारी रहें।"

द्रौपदी और सत्यभामा दोनों बहुत दिनों के बाद मिली थीं, इससे वे दोनों परस्पर बडी देर तक बातें करती रहीं। एकान्त पाकर सत्यभामा ने द्रौपदी से कहा —

"हे सखी! पराक्रमी पाण्डव लोगों के साथ तुम कौनसा व्यवहार करती हो कि, वे तुमसे कभी रुष्ट नहीं होते और इस तरह तुम्हारे वश में हैं कि, तुम्हें छोडकर वे और किसी को ध्यान में भी नहीं लाते। क्या सोमवार इत्यादिक व्रत करके या गङ्गासङ्गम इत्यादि में स्नान करके, तुमने उन्हें अपने वश में किया है या तुम्हें वशीकरण मन्त्र मालूम है? अथवा तुम कोई ऐसी औषधियाँ या अञ्जन बनाना जानती हो, जिन के द्वारा तुम उनको अपने वश में किये हो? हमें भी कोई ऐसी तरकीब बतला दो कि, हम भी श्रीकृष्ण को अपने वश कर लें।"

द्रौपदी ने कहा —

"हे सखी! तुमने पति के साथ जिस तरह व्यवहार करने की बातें पूछी हैं, पापिनी स्त्रियाँ ही ऐसा किया करती हैं, इससे उन बातों का तुम्हें मैं क्या जवाब दूँ? तुम बुद्धिमती हो, भली
श्रीकृष्ण सरीखे महात्मा की रानी होने
इससे इस तरह की बातें पूछना तुम्हें
यदि कोई स्वामी यह जान ले कि,
उसे कभी चैन पडेगा?



द्रौपदी और सत्यभामा ।

सत्यभामा ने कहा—"हे सखी ! पराक्रमी पाण्डव तुम्हा
किस व्यवहार से वश में रहते हैं ?" (पृष्ठ १७"

पर बनी रहे और पाण्डव लोग सदैव ही आप के आज्ञाकारी रहें।"

द्रौपदी और सत्यभामा दोनों बहुत दिनों के बाद मिली थीं, इससे वे दोनों परस्पर बडी देर तक बातें करती रहीं। एकान्त पाकर सत्यभामा ने द्रौपदी से कहा —

"हे सखी! पराक्रमी पाण्डव लोगों के साथ तुम कौनसा व्यवहार करती हो कि, वे तुमसे कभी रुष्ट नहीं होते और इस तरह तुम्हारे वश में हैं कि, तुम्हें छोडकर वे और किसी को ध्यान में भी नहीं लाते। क्या सोमवार इत्यादिक व्रत करके या गङ्गासङ्गम इत्यादि में स्नान करके, तुमने उन्हें अपने वश में किया है या तुम्हें वशीकरण मन्त्र मालूम है? अथवा तुम कोई ऐसी औषधियाँ या अञ्जन बनाना जानती हो, जिन के द्वारा तुम उनको अपने वश में किये हो? हमें भी कोई ऐसी तरकीब बतला दो कि, हम भी श्रीकृष्ण को अपने वश कर लें।"

द्रौपदी ने कहा —

"हे सखी! तुमने पति के साथ जिस तरह व्यवहार करने की बातें पूछी हैं, पापिनी स्त्रियाँ ही ऐसा किया करती हैं, इससे उन बातों का तुम्हें मैं क्या जवाब दूँ? तुम बुद्धिमती हो, भली बुरी बातें समझती हो, श्रीकृष्ण सरीखे महात्मा की रानी होने का तुम्हें सौभाग्य प्राप्त है, इससे इस तरह की बातें पूछना तुम्हें शोभा नहीं देता। देखो तो यदि कोई स्वामी यह जान ले कि, उसकी स्त्री मन्त्र [illegible] तो भला उसे कभी चैन [illegible]

वह घरमें रहने वाले साँप की भाँति सदैव अपनी स्त्री से भी शकित रहेगा। ऐसी दशा में शान्ति कहाँ? और जहाँ शान्ति नहीं, वहाँ सुख कहाँ? जब स्वामी ही सुखी नहीं, तो स्त्री कैसे सुखी रह सकती है? हे भद्रे! सच ही समझो, स्वामी को मन्त्र द्वारा वश करना असम्भव है। दवाओं और औषधियों के द्वारा भी स्वामी वश नहीं किया जा सकता। अपने स्वामी को मार डालने और फिर स्वतन्त्रता-पूर्वक रहने की इच्छा रखने वाली कुलटा और पापिनी स्त्रियाँ ही स्वामी के खाने की वस्तुओं में विषैली दवाएँ मिला कर दे देती हैं। ऐसी हत्यारिनों की चर्चा करने मे भी पाप है। कभी कभी ऐसी ही दुष्टाओं के चक्र में आकर सीधी-सादी मूर्खा स्त्रियाँ भी अपने पतियों को वश करने के लिये दवाए दे देती हैं। फल यही होता है कि, उनके स्वामी अपनी स्त्रियों के ही दोष से कोढ़ी अन्धे, बहरे, गूँगे और पुरुषत्वहीन हो बैठते हैं। ऐसे पापों का प्रायश्चित्त भी नहीं। इससे स्त्रियों को ऐसे पापकार्यों से सदैव ही सावधान रहना चाहिये।

"हे सती, पाण्डवों के साथ मैं जिस तरह व्यवहार करती हूँ, वह तुमसे कहती हूँ। सुनो—मैं काम, क्रोध और अहङ्कार छोड कर पाण्डवों की और उनकी अन्यान्य स्त्रियों की सेवा करती हूँ। अभिमान छोड कर प्रणय-पूर्वक अपने पतियों का मन प्रसन्न करती हूँ। कभी किसी को कड़ी बात नहीं कहती, ...देखा बुरे उठती बैठती और चलती नहीं। सदैव ही अपने ...ों का इशारा पाकर उनकी सेवा करती हूँ। चाहे देवता हो,

वह घरमें रहने वाले साँप की भाँति सदैव अपनी स्त्री से भी शकित रहेगा। ऐसी दशा में शान्ति कहाँ? और जहाँ शान्ति नही, वहाँ सुख कहाँ? जब स्वामी ही सुखी नहीं, तो स्त्री कैसे सुखी रह सकती है? हे भद्रे! सच ही समझो, स्वामी को मन्त्र द्वारा वश करना असम्भव है। दवाओं और औषधियों के द्वारा भी स्वामी वश नही किया जा सकता। अपने स्वामी को मार डालने और फिर स्वतन्त्रता-पूर्वक रहने की इच्छा र[illegible] कुल्टा और पापिनी स्त्रियाँ ही स्वामी के खाने की विषैली दवाएँ मिला कर दे देती हैं। ऐसी हत्यारिनों करने में भी पाप है। कभी कभी ऐसी ही दुष्टाओं आकर सीधी सादी मूर्ख स्त्रियाँ भी अपने पतियों को लिये दवाएं दे [illegible] हैं फल यही होता है कि, [illegible] ही [illegible] अन्धे, बहरे, गूँगे [illegible] नहीं

सेवा

चाहे गन्धर्व और चाहे सुन्दर-सुन्दर अलङ्कार पहने हुए और ही कोई क्यों न हो, मेरा मन उसकी ओर नहीं जाता। जब तक मेरे पति स्नान और भोजन नहीं कर लेते, मैं भोजन नहीं करती। जब वे बाहर से आते हैं, तब उन्हें जल इत्यादि देकर स्वयम् उनके चरण धोती और उनकी सेवा करती हूँ।

"मैं सदैव ही घर और घर की चीजों की सफाई का खयाल रखती हूँ। ठीक समय पर रसोई तैयार हो जाने और पतियों को भोजन करा देने के लिये सावधान रहती हूँ। दुष्टा स्त्रियों के साथ मैं कभी नहीं बैठती, पर कडी बात उन्हें भी नहीं कहती, केवल उनसे दूर रहती हूँ। हँसने के समय को छोड मैं कभी हँसी नहीं करती। हँसी और रोष छोडकर पतियों की सेवा करना, मैं अपना प्रधान कर्तव्य समझती हूँ। उन्हें देखे बिना मुझे घडी भर के लिये भी चैन नहीं पडता। मेरे स्वामी जब कहीं बाहर जाते हैं, तो फूल आदि सुगन्धित वस्तुओं का व्यवहार करना मैं छोड देती हूँ। पति जो जो वस्तुएँ नहीं खाते पीते, वे मैं भी नहीं खाती पीती और जिन वस्तुओं का वे व्यवहार नहीं करते, उनके व्यवहार से मैं भी दूर रहती हूँ। मेरी सास ने जो जो भली बातें मुझे सिखा दी हैं, वे सदैव ही मुझे याद रहती हैं और उन्हीं के अनुसार मैं काम करती हूँ।

'हे भद्रे! मेरे मत में, पति की सेवा करना ही स्त्रियों का प्रधान धर्म है। पु[illegible] स्त्रियों का देवता और पति ही की पूजा करने से उनका [illegible] सकता है। पति के पिता,

वह घरमें रहने वाले साँप की भाँति सदैव अपनी स्त्री से भी शंकित रहेगा। ऐसी दशा में शान्ति कहाँ? और जहाँ शान्ति नहीं, वहाँ सुख कहाँ? जब स्वामी ही सुखी नहीं, तो स्त्री कैसे सुखी रह सकती है? हे भद्रे! सच ही समझो, स्वामी को मन्त्र द्वारा वश करना असम्भव है। दवाओं और औषधियों के द्वारा भी स्वामी वश नहीं किया जा सकता। अपने स्वामी को मार डालने और फिर स्वतन्त्रता-पूर्वक रहने की इच्छा रखने वाली कुलटा और पापिनी स्त्रियाँ ही स्वामी के खाने की वस्तुओं में विषैली दवाएँ मिला कर दे देती हैं। ऐसी हत्यारिनों की चर्चा करने में भी पाप है। कभी-कभी ऐसी ही दुष्टाओं के चक्कर में आकर सीधी सादी मूर्खा स्त्रियाँ भी अपने पतियों को वश करने के लिये दवाएं दे देती हैं। फल यही होता है कि, उनके स्वामी अपनी स्त्रियों के ही दोष से कोढ़ी, अन्धे, बहरे, गूँगे और पुरुषत्वहीन हो बैठते हैं। ऐसे पापों का प्रायश्चित्त भी नहीं। इससे स्त्रियों को ऐसे पापकार्यों से सदैव ही सावधान रहना चाहिये।

"हे सखी, पाण्डवों के साथ मैं जिस तरह व्यवहार करती हूँ, वह तुमसे कहती हूँ। सुनो—मैं काम, क्रोध और अहङ्कार छोड़ कर पाण्डवों की और उनकी अन्यान्य स्त्रियों की सेवा करती हूँ। अभिमान छोड़ कर प्रणय-पूर्वक अपने पतियों का मन प्रसन्न करती हूँ। कभी किसी को कड़ी बात नहीं कहती, कभी बेकायदे उठती बैठती और चलती नहीं। सदैव ही अपने ... का इशारा पाकर उनकी सेवा करती हूँ। चाहे देवता हो,

चाहे गन्धर्व और चाहे सुन्दर-सुन्दर अलङ्कार पहने हुए और ही कोई क्यों न हो, मेरा मन उसकी ओर नहीं जाता। जब तक मेरे पति स्नान और भोजन नहीं कर लेते, मैं भोजन नहीं करती। जब वे बाहर से आते हैं, तब उन्हें जल इत्यादि देकर स्वयम् उनके चरण धोती और उनकी सेवा करती हूँ।

"मैं सदैव ही घर और घर की चीजों की सफाई का ख्याल रखती हूँ। ठीक समय पर रसोई तैयार हो जाने और पतियों को भोजन करा देने के लिये सावधान रहती हूँ। दुष्टा स्त्रियों के साथ मैं कभी नहीं बैठती, पर कड़ी बात उन्हें भी नहीं कहती, केवल उनसे दूर रहती हूँ। हँसने के समय को छोड़ मैं कभी हँसी नहीं करती। हँसी और रोष छोड़कर पतियों की सेवा करना, मैं अपना प्रधान कर्तव्य समझती हूँ। उन्हें देखे बिना मुझे घड़ी भर के लिये भी चैन नहीं पड़ता। मेरे स्वामी जब कहीं बाहर जाते हैं, तो फूल आदि सुगन्धित वस्तुओं का व्यवहार करना मैं छोड़ देती हूँ। पति जो जो वस्तुएँ नहीं खाते पीते, वे मैं भी नहीं खाती पीती और जिन वस्तुओं का वे व्यवहार नहीं करते, उनके व्यवहार से मैं भी दूर रहती हूँ। मेरी सास ने जो जो भली बातें मुझे सिखा दी हैं, वे सदैव ही मुझे याद रहती हैं और उन्हीं के अनुसार मैं काम करती हूँ।

"हे भद्रे! मेरे मत में, पति की सेवा करना ही स्त्रियों का प्रधान धर्म है। पति ही स्त्रियों का देवता और पति ही की पूजा करने से उनका कल्याण हो सकता है। पति के पिता माता

बीसवाँ परिच्छेद।

द्रौपदी को दुर्वासा का भय और कृष्ण का स्मरण।

पाण्डवों को वनवासी बनाकर भी दुर्योधन, कर्ण और शकुनि को चैन नही पडा। वे उनको औरभी कष्ट पहुँचाने की युक्तियाँ करते रहे। एक दिन परम क्रोधी दुर्वासा ऋषि दुर्योधन के यहाँ आये। दुर्योधन ने उनकी बड़ी सेवा शुश्रूषा और खातिर की। दुर्वासा ऋषिका स्वभाव था कि, वे जिस के अतिथि होते उसे बहुत तङ्ग करते। उन्होंने दुर्योधन को खूब तङ्ग किया। पर दुर्योधन ने सब सह लिया और मुनि की सेवा में तनिक भी त्रुटि न होने दी। इससे दुर्वासा महाराज बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने दुर्योधन से कहा —

"हे भारत! तुम्हारा कल्याण हो, हम तुम पर प्रसन्न हैं, तुम्हारी जो इच्छा हो वर माँगो।"

दुर्योधन ने कहा —

"राजा युधिष्ठिर इस समय जङ्गल में रहते हैं। जिस तरह अपने शिष्यों के साथ आप हमारे यहाँ अतिथि होकर आये हैं उसी तरह आप उनके यहाँ भी जाकर अतिथि बनें, पर जब द्रौपदी और उसके पति भोजन करके विश्राम कर रहे हों, उसी समय ये। बस, हम यही चाहते हैं।"

महर्षि दुर्वासा ने इसे स्वीकार करके कहा —

"तथास्तु!"

एक दिन द्रौपदी ने ब्राह्मणों को भोजन कराके, पतियों को भोजन कराया और फिर स्वयम् भी भोजन करके निवृत्त हो चुकी थी कि, ठीक ऐसे ही समय क्रोधन-स्वभाव दुर्वासा महाराज अपने दस हजार शिष्यों के साथ वहाँ पहुँचे। महाराज युधिष्ठिर ने उनको उत्तम आसन पर बिठाकर चरण छुए और कहा —

"महर्षे! आप कृपा करके यहाँ पधारे हैं, यह हमारा सौभाग्य है। नित्यक्रिया समाप्त करके अपने शिष्यो समेत आप आज आतिथ्य स्वीकार करें।"

शिष्यों को साथ लेकर दुर्वासा नदी में स्नान करने के लिये चल पड़े। वे मन ही मन मार्ग में यह सोचते गये कि देखें, आज युधिष्ठिर किस तरह हमें और हमारे शिष्यो को भोजन कराते हैं।

उधर तो दुर्वासा महाराज स्नान करने गये, इधर द्रौपदी को उनके भोजन कराने के लिये अन्न की बड़ी चिन्ता हुई। सूर्यदेव ने जो अक्षय थाली दी थी, उसका यही प्रभाव था कि, जब तक द्रौपदी भोजन न करे तब तक नित्य उसमें अनेक प्रकार के अन्न बराबर बने रहें, तब तक अगणित मनुष्यों को भोजन करा देने पर भी किसी बात की कमी न हो। पर आज तो मामला उल्टा था, आज द्रौपदी भोजन कर चुकी थी, इससे सोचा कि हाय! मेरे पति धर्मात्मा युधिष्ठिर का धर्म आज लाज कैसे क्योंकर बचे?

जब उसे और कोई युक्ति न सूझी, तब वह मन-ही-मन श्रीकृष्ण की याद करने लगी। उसने कहा —

"हे कृष्ण! हे देवकीनन्दन! हे भगवान्! तुम्हारा ही मुझे सहारा है, तुम जिस की रक्षा करो, उसे किसी का भी डर नहीं। तुमने जिस तरह सभा-भवन में दुःशासन से मेरी रक्षा की थी, उसी भाँति क्रोधस्वभाव दुर्वासा से मुझे बचाओ और मेरी लाज रक्खो।"

अचिन्त्यगति, भक्तवत्सल वासुदेव द्रुपदनन्दिनी की स्तुति से उसकी विपत्ति की बात जान गये और रुक्मिणी को छोड़कर वे तत्क्षण ही वन में पहुँचे। उन्हें देखते ही द्रौपदी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और दुर्वासा के आने का सब हाल कहा।

कृष्ण ने कहा —

"द्रौपदी! हम बहुत भूखे हैं, पहले हमें भोजन करा दो, फिर और काम करना।"

द्रौपदी ने यह सुनकर लाज के मारे मुँह नीचा कर लिया और कहा —

"हे देव! सूर्यदेव की दी हुई अक्षय-स्थाली में उसी समय तक भोजन रहता है, जब तक मैं भोजन न कर लूँ। पर आज तो मैं भोजन कर चुकी हूँ, आज उसमें कुछ भी नहीं है।"

कमल के समान नेत्रों वाले भगवान् श्रीकृष्ण बोले —

"भद्रे! हम भूख से पीड़ित हैं, क्या ऐसी दशा में भी हँसी करना उचित है? तुम शीघ्र ही जाओ और वह स्थाली लाकर दिखाओ।"

द्रौपदी कृष्ण की बात न टाल सकती थी। उसने वह स्थाली लाकर कृष्ण को दिखा दी। उसके एक कोने में थोडासा भाजी का अंश रह गया था, उसे उन्होंने बडे प्रेम से खाया और उतने ही से उनकी क्षुधा शान्त हो गयी। उन्होंने द्रौपदी से कहा —

"इस भोजन से विश्वात्मा सन्तुष्ट हों।"

यह कहकर उन्होंने भीम से कहा —

"तुम शीघ्र ही जाकर दुर्वासा ऋषि और उनके शिष्यों को भोजनार्थ बुला लाओ।"

भीमसेन इधर उन ब्राह्मणों को भोजन करने के हेतु बुलाने के लिये चले, उधर वे लोग जैसे ही स्नान करके नदी से बाहर निकले, उन्हें डकारें आने लगीं, उन्हें मालूम होने लगा कि, मानों उन्होंने अभी भोजन किया है और वे तृप्त हैं, उन्हें भोजन करने की इच्छा ही नहीं, तब उन्होंने दुर्वासा से कहा —

"हे विप्रर्षे! हमारी तो भोजन करने की अब तनिक भी इच्छा नहीं है, अब क्या करें?"

दुर्वासा ने कहा —

"हम लोग राजर्षि युधिष्ठिर के निकट इस बात के अपराधी हो चुके कि, हम सब ने उन्हें वृथा ही भोजन बनवाने के लिये कष्ट दिया। वे चाहें तो इस अपराध पर अपने तेज प्रभाव से हमें भस्म कर दें। जब से अम्बरीष से मेरा मुठभेड़ा हुआ है, तब से निष्ठावान् और भगवद्भक्त लोगों से मैं बहुत डरा करता हूँ। पाण्डव लोग बड़े ही महात्मा, शौर्यशाली, कृतविद्य, व्रतधारी, तपस्वी

नारायणपरायण हैं। उनसे तो अपराधी होने पर डरने की विशेष बात है। आओ, हम लोग बिना उनसे कुछ कहे ही भाग चलें।"

शिष्यों ने गुरु दुर्वासा की बात सुनकर उनके पीछे ही भागने की ठान ली।

जब भीमसेन वहाँ पहुँचे, तो नदी किनारे न तो दुर्वासा ही थे और न उनके शिष्य ही। इससे उन्हें बडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने और ऋषियों से पता लगाया तो मालूम हुआ, कि वे अपने शिष्यों से इस तरह की बातें करते चले गये हैं।

भीमसेन ने लौटकर यह हाल युधिष्ठिर से कहा —

युधिष्ठिर को दुर्वासा का स्वभाव मालूम था। उन्हें शङ्का हुई, कि कहीं आधी रात के समय आकर वे फिर न तङ्ग करें। पर श्रीकृष्ण ने कहा —

'आप अब चिन्ता न करें। दुर्वासा अब न लौटेंगे। वे तुम्हारे धर्मतेज के प्रभाव से डरकर भाग गये हैं। धर्मनिष्ठ लोगों को कभी न डरना चाहिये। तुम्हारा कल्याण हो। अब हमें आज्ञा दो, तो लौट जायें। द्रौपदी ने हमारा स्मरण किया था, इसीसे हम इस समय उपस्थित हुए।"

पाण्डवों ने और द्रौपदी ने कृष्ण की बात सुनकर कहा —

"हे गोविन्द! आप हम सब पर जो कृपा करते हैं, उसे कैसे कहें? हम सब आज सचमुच ही दुर्वासा के डर से चिन्ता समुद्र में डूब रहे थे। आप ही ने नाव और कर्णधार बनकर उनसे



पात्यक

वे आपस में कहने लगे—

देवीमाया।"

इक्कीसवाँ परिच्छेद ।

द्रौपदी और जयद्रथ ।

एक दिन महर्षि तृणविन्दु के आश्रम में, पुरोहित धौम्य की रक्षा में, द्रौपदी को छोड, राजा युधिष्ठिर भी अपने भाइयों के साथ मृगों का शिकार करने के लिये बाहर निकल गये ।

इसी समय कुरुराज दुर्योधन के बहनोई, दु शला के पति, सिन्धुराज राजा जयद्रथ, जो अपना दूसरा विवाह करने की इच्छा से शाल्व देश गये थे, वहाँ से लौटते हुए अन्यान्य राजकुमारों के साथ काम्यक वन होकर अपने देश जा रहे थे । वहाँ पर उन्होंने देखा कि, जिस तरह काले काले बादलों को बिजली प्रकाशमान कर देती है, उसी तरह उस घने जङ्गल को प्रकाशित करती हुई एक रमणी आश्रम के दरवाजे पर एक कदम्ब-वृक्ष की डाली पकडे हुए खडी है ।

उसे देखकर राजा जयद्रथ विस्मित हो उठे । उनके साथ के अन्यान्य राजकुमारों ने भी उसे देखा और उन्हें भी बडा आश्चर्य हुआ । वे आपस में कहने लगे —

"यह कोई अप्सरा है या देवकन्या अथवा दैवीमाया ?"

राजा जयद्रथ तो उसकी सुन्दरता देखकर अत्यन्त ही व्याकुल हो उठे। उन्होंने अपने प्रिय मित्र, राजा कोटिकास्य से कहा —

"हे सौम्य! यह सर्वाङ्गसुन्दरी, भुवनमोहिनी, किस की रमणी है? जान पडता है, यह मानवी नहीं, देवी है। हम इससे अपना विवाह करने के लिये इसे राजधानी में ले जायेंगे। हे कोटिक! तुम शीघ्र जाकर इस बात का पता लगाओ कि, यह कौन है? किस को व्याही है? कहाँ से आई है? इस कण्टक भरे जङ्गल में इसके आने का क्या कारण है? और क्या यह त्रिलोकसुन्दरी ललना हमें मिल सकेगी? क्या इसे पाकर मैं अपने को कृतार्थ कर सकूँगा? क्या यह मेरे साथ विवाह करना पसन्द करेगी।"

तब कोटिकास्य ने द्रौपदी के पास जाकर कहा —

"हे सुलोचने! तुम कौन हो? हवा से काँपती हुई अग्निशिखा के समान कदम्ब की डाल झुकाकर तुम यहाँ खडी हो। ऐसे निकराल वन में तुम इस तरह निःशङ्क हो, तुम्हें तनिक भी डर नहीं लगता? तुम्हारी सुन्दरता असामान्य है। जान पडता है, तुमने किसी मानवी के गर्भ से जन्म नहीं लिया, तुम अवश्य ही अप्सरा या देवी हो? जो कुछ हो, हम यह नहीं जानते, कि तुम कौन हो और यहाँ क्यों आई हो। कृपा करके तुम अपना और अपने पिता का नाम तो बतलाओ। आने का कारण भी बतला दो, तो और भी कृपा हो। मेरा नाम है कोटिकास्य। जो उस वे

पुत्र क्षेमङ्कर

चढ़ा-चढ़ा है। उस पुष्करिणी के पास जो खड़े हुए हैं, वे इक्ष्वाकु
राज के लड़के हैं। लाल लाल घोड़े जुते हुए रथ पर सवार बार
राजकुमारों के आगे जो चल रहे हैं, साठ हजार रथी और अगणि
हाथी-घोड़े जिनके साथ हैं, वे सिन्धु-सौवीर-देश के प्रतापी राज
जयद्रथ हैं। तुमने उनका नाम अवश्य सुना होगा। देवराज इ
ही की तरह वे प्रतापी हैं और शान बान में भी इन्द्र से कम नहीं
उन्होंने भी यह जानने की इच्छा की है कि, आप का क्या नाम
और आप किस की पुत्री हैं?'

कोटिकास्य की इस तरह की शिष्ट बातें सुनकर द्रौपदी ने
कदम्ब की शाखा छोड़ दी। वह शिष्टता पूर्वक अपने वस्त्र सँभाल-
कर खड़ी हो गयी। उसने कहा —

'हे राजपुत्र! आप के साथ बातचीत करना मुझ ऐसी स्त्री
के लिये सर्वथा अनुचित है, पर करूँ क्या? यहाँ पर कोई ऐसा
पुरुष या स्त्री नहीं, जो आप की बातों का जवाब दे, इससे मुझे
स्वयम् ही आप के प्रश्नों का उत्तर देना पड़ेगा। मैं अपने धर्म में
निरत और अकेली हूँ, आप भी यहाँ पर अकेले ही आये हैं, और
अकेले में किसी से बातचीत करना ठीक नहीं। पर
करके मुझे बतला दिया है कि, आप राजा सुरथ के
मैं अपने बन्धुओं और कुल [illegible] ।।

"हे वीर! मैं राजा [illegible] मेरा
, भीम, अर्जुन, [illegible] पाँच
पति बनाया है। [illegible] के

रखकर शिकार के लिये गये हैं। वे अब आने ही वाले हैं। आप लोग सवारी से उतरकर थोड़ी देर यहाँ ठहरें, वे आकर आप का यथोचित सन्मान करेंगे।"

यह कहकर, अतिथि-सत्कार करने के विचार से, द्रौपदी पर्णशाला के अन्दर चली गयी।

राजा कोटिकास्य भी वहाँ से लौट आये। उन्होंने द्रौपदी से जिस तरह प्रश्न किया था, उसका हाल विस्तार पूर्वक अपने मित्रों से कहा —

राजा जयद्रथ बोले —

"मित्र! इस सुन्दरी ललना को जिस समय से मैंने देखा है, मैं बहुत अधीर हूँ। तुम उसके पास से क्योंकर लौट आये? मैंने इसके पहले जितनी स्त्रियाँ देखी हैं, वे सब मेरी निगाह में इसके मुकाबले बन्दरी से अधिक नहीं जँचतीं। यह तो बताओ, वह मानुषी है या नहीं?"

कोटिकास्य ने कहा —

"वह कामिनी राजपुत्री है, द्रौपदी उसका नाम है और पाँचों पाण्डवों की वह भार्या है। पाण्डव लोग उससे बड़ा प्रेम करते हैं। यदि तुम अपनी तबीयत नहीं रोक सकते, तो जब तक पाण्डव बाहर से आवें, तब तक इसे लेकर तुम सौवीर देश को ।"

कोटिकास्य की बात सुनते ही राजा

आश्रम में प्रवेश किया। भीतर जाकर

कहा —

"हे भद्रे! तुम आनन्द से तो हो? तुम सदैव ही जिन की कुशलकामना करती हो, वे और तुम्हारे पति तो कुशल पूर्वक हैं?"

द्रौपदी ने कहा —

"आप के राज्य मे तो कल्याण है? आप तो कुशलपूर्वक हैं? महाराज युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई और हम सब कुशलपूर्वक हैं। आप और जिन लोगों की बात पूछते हैं, वे भी कुशल समेत हैं। यह पाद्य और आसन ग्रहण कीजिये। मैं पाँच सौ मृग आप की भेंट करती हूँ। महाराज युधिष्ठिर आकर औरभी सुन्दर-सुन्दर पशु आप की नज़र करेंगे।"

जयद्रथ ने कहा.—

"हे वरानने! तुमने जो कुछ हमें भेंट किया है, वही बहुत है। अब हमारे रथ पर सवार होकर हमारे साथ चलो, वहाँ आनन्द से रहोगी। लक्ष्मीविहीन, राज्यविहीन, वनवासी पाण्डवों की सेवा में अब क्या रक्खा है? होशियार लोग श्रीहीन स्वामी की सेवा नहीं करते। तमाम कष्ट झलकर पाण्डवों के साथ रहने में क्या लाभ? इन्हें छोडो और हमारे साथ चलो। हम तुम्हें सिन्धु सौवीर-राज्य की महारानी बनावेंगे।"

द्रुपदतनया पाञ्चाली ने जयद्रथ के मुँह से इस तरह की हृदय कँपाने वाली बातें सुनकर भौंहें टेढ़ी कर लीं। जयद्रथ की बातों ।द९ करती हुई, वह उस स्थान से चली जाने के लिये होकर कहने लगी —

"अरे पापी! तुझे लाज नहीं आती? खबरदार, अब इस तरह की बात न कहना।"

पर दुष्ट जयद्रथ ने इस बात पर कुछ भी ध्यान न दिया, तब द्रौपदी का शरीर क्रोध के कारण काँपने लगा, उसकी आँखें लाल हो गईं, भौंहें तानकर उसने कहा —

"अरे मूढ़! यशस्वी पाण्डवों की निन्दा करते हुए तुझे लाज नहीं लगती? सज्जन लोग किसी की निन्दा नहीं करते, पापी मनुष्य ही दूसरे की बुराई किया करते हैं, इससे तू अवश्य ही पामर, नीच और पापी है। जिस तरह एक अविवेकी आदमी हाथ में एक छोटासा डण्डा लेकर मतवाले हाथी पर आक्रमण करने की इच्छा करे, ठीक वही दशा तेरी है। तू पाण्डवों से जीत जाने की धारणा रखता है! सच समझ, यह धारणा तेरे नाश की निशानी है। ऐसा कभी नहीं हो सकता, कि तू पाण्डवों को जीत ले। जिस समय तू भीमसेन को देखेगा, उस समय तू जान जायगा कि, तूने भूल करके सिंह के मुँह से उसका आहार छीनने की चेष्टा की थी। अर्जुन के साथ जिस समय तुझे युद्ध करना पड़ेगा, तेरे छक्के छूट जायँगे। नकुल और सहदेव के सामने तू कभी संग्राम में न ठहर सकेगा। जिस तरह बाँस, नल और केले अपने नाश के लिये ही फलते हैं, उसी तरह तेरी इस अभिलाषा में भी कि, तू मुझे ग्रहण करे, नाश ही का फल लगेगा।"

"हे कृष्णे ! पाण्डव लोगों का पराक्रम मुझे भली भाँति मालूम है। तुम उनके पराक्रम की बातें बखान करके मुझे न डराओ। मैंने उच्च कुल में जन्म लिया है, शूरता इत्यादि छ गुण मेरे साथ रहते हैं, इससे पाण्डवों को मैं तुच्छ समझता हूँ। तुम मेरे साथ रथ पर सवार होकर राजी-राजी चलो, नहीं तो मैं तुम्हें पकड कर ज़बर्दस्ती ले जाऊँगा और तुम फिर मेरे हाथ जोडोगी।"

द्रौपदी ने कहा —

"मुझे अबला न समझना, मुझ में तुम्हारे लिये यथेष्ट बल है। मैं योंही तुम्हारे वश में न आऊँगी। अरे मूढ ! देख तो, एक रथ पर सवार होकर कृष्ण और अर्जुन जिस की सहायता के लिये तैयार हो सकें, उसे इन्द्र का भी डर नहीं, मामूली आदमी की तो बात ही क्या ? याद रख, अर्जुन तेरी सेना को वैसे ही भस्म कर देंगे, जैसे सूखे हुए तृण के ढेर को अग्नि। अरे अधम ! जब भीमसेन, नकुल और सहदेव से तुझे लडना पडेगा, तब तू अवश्य ही पछतायेगा। मैंने पाण्डवो को छोडकर और किसी पुरुष को मनमें कभी स्थान भी नही दिया। उसी सतीत्व बल के प्रभाव से तू देखेगा कि, पाण्डव लोग तुझे रणक्षेत्र में खींचे लिये जा रहे हैं। तू मुझे बन्दी भी कर लेगा, तोभी मुझे डर नही। मैं वीर पाण्डवों के साथ इस वन में आई हूँ, अकेली नहीं आई।"

द्रौपदी इसी तरह बेधडक बातें करती रही। पापी जयद्रथ समय उसकी ओर बढ रहा था, द्रौपदी उसे अपना शरीर के लिये बार-बार मना करती और पुरोहित धौम्य को

पुकारती जाती थी। पर दुरात्मा जयद्रथ ने उसकी बात पर तनिक भी ध्यान न दिया और उनका दुपट्टा पकड लिया। उस समय पतिव्रता द्रौपदी को और कुछ उपाय न सूझ पडा तो उसने जयद्रथ को पकडकर इस जोर से खींचा, कि वह जड से कटे हुए वृक्ष की तरह धम से पृथ्वी पर गिर पडा। परन्तु वह तत्क्षण ही उठ खडा हुआ और द्रौपदी को जोरों से खींचने लगा। उसके खींचने से बहुत परेशान होकर पुरोहित धौम्य के चरणों पर गिर, वह जयद्रथ के रथ पर बैठ गई।

तब महामति धौम्य जयद्रथ से कहने लगे —

"अरे पापी! बिना पाण्डवों को हराये हुए तू इसे न ले जा सकेगा, फिर ऐसा दुष्कर्म क्यों करता है? एक बार क्षत्रियो के प्राचीन धर्म पर तो दृष्टि डाल। इसमें सन्देह नहीं कि, पाण्डव तेरे इस पाप कर्म का बहुत जल्द तुझे फल देंगे।"

यह देखकर कि, जयद्रथ उनकी कुछ भी नहीं सुनता, धौम्य इसी तरह कहते हुए पैदल सेना के साथ जयद्रथ के रथ के पीछे पीछे चलने लगे।

इधर जब पाण्डव लोग शिकार खेलकर लौटे तो उन्होंने देखा कि द्रौपदी की धात्रेयिका (दासी) धूल में लोटती हुई रो रही है।

सारथि इन्द्रसेन ने रथ से उतर, शीघ्र उसके पास जाकर पूछा —

"धात्रेयिके! तुम धूलमें लोटती हुई क्यों रो रही हो? तुम्हारा मुख सूख कर पीला क्यों पड गया है?

धात्रेयिका ने कहा :—

"सारथे ! पाप-बुद्धि जयद्रथ पाञ्चालनन्दिनी द्रौपदी को लेकर अभी अभी भाग गया है। नये रास्ते में जाने के कारण जिधर जिधर होकर उसका रथ गया है, उधर-उधर वृक्षों के पत्ते टूट गये हैं। वे पत्ते अभी तक कुम्हलाये भी नहीं। अभी वह बहुत दूर न गया होगा। पाण्डवों को उचित है कि, वे लोग शीघ्र ही अस्त्र-शस्त्र धारण करके उसका पीछा करें और द्रौपदी को छुडा लावें। उन्हें देखना चाहिये, कि देर होने से इस बात का बडा भय है कि, कुत्ता कहीं सोमरस को जूठा न कर दे।"

युधिष्ठिर को दासी की अन्तिम बात बाण ही के समान लगी। वे कहने लगे —

"भद्रे ! शान्त होओ, ऐसी कडी बातें कहकर हमारा हृदय न जलाओ। चाहे राजा हो चाहे राजपुत्र, जिस दुष्ट ने ऐसा काम किया है, वह शीघ्र ही किये हुए का फल भोगेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नही।"

यह कहकर युधिष्ठिर जयद्रथ का पीछा करने के लिये दौड पडे। उनके भाई भी साथ ही गये। थोडी ही दूर जाने पर, शत्रु सेना के घोडों की टापोंसे उडती हुई धूल उन्हें देख पडने लगी। कुछ आगे जाकर उन्होंने देखा कि, पैदल सेना के बीच से उन्हें देखकर धौम्य पुकार-पुकारकर कह रहे हैं, "जल्दी जाओ जल्दी जाओ"। उन्होंने धौम्य से कहा —

"आप घबराइये नहीं। पीछे पीछे चले आइये। हम अभी पापी जयद्रथ को उसकी करनी का फल देते हैं।"

ज्योंही पाण्डवों ने जयद्रथ के रथ को और उस पर बैठी हुई द्रौपदी को दूर से देखा, वे लोग जल उठे। सेना की कुछ भी परवा न करके वे सीधे जयद्रथ की ओर दौड़े।

अपनी ओर उन वीरों को दौड़ते हुए देखकर राजा जयद्रथ शङ्कित हो उठे। उन्होंने द्रौपदी से कहा —

"हे याज्ञसेनि! देखो, कुछ दूर पर चार पाँच रथ दिखाई दे रहे हैं। जान पड़ता है, उनमें तुम्हारे पति आ रहे हैं।"

द्रौपदी ने कहा —

"अरे मूढ! इतना बुरा काम करके अब तू मृत्यु से क्यों डरता है? अब समझ ले कि, न तू बचेगा और न तेरे साथी। इस समय भाइयों के साथ धर्मराज को देखकर मेरा सब क्लेश और मेरी सब शङ्का दूर हो गयी है। अब तू सँभल कर बैठ। जिन पाण्डवों के बल की बात को तुच्छ जानकर तू मुझे हरण कर ले आया है, उनके बाणों से अगर आज तू बच जाय, तो समझना कि तेरा पुनर्जन्म हुआ है।"

जब जयद्रथ ने देखा कि, पाण्डव लोग अब बहुत ही निकट आ गये हैं, तब उसने अपने साथियों से कहा —

"सँभल जाओ। मारो। दौड़ो। सावधान रहो।"

यह सुनते ही कोटिकास्य, क्षेमङ्कर, महामुख, त्रिगर्तराज इत्यादिक राजा और राजपुत्र लड़ाई करने लगे, पर पाण्डवों

बल के सामने कोई भी न ठहर सका। कितने ही मारे गये और कितने ही बे-तरह घायल हुए।

जब जयद्रथ ने देखा कि, उसके पक्ष के हज़ारों वीर मर चुके हैं, पर पाण्डवों का क्रोध अब भी शान्त नहीं हुआ, तब द्रौपदी को रथ से उतार दिया और रथ लेकर लडाई के मैदान से भाग निकला। यह देखकर भीमसेन द्रौपदी को युधिष्ठिर के पास ले गये और कहा —

"महाराज! द्रुपदनन्दिनी को साथ लेकर आप आश्रम को जाइये। हम अभी जयद्रथ का पीछा करेंगे। वह आज हम से बच नहीं सकता।"

युधिष्ठिर ने कहा —

"भाई! जयद्रथने यद्यपि बडा बुरा काम किया है, पर बहिन दुःशला और माता गान्धारी का खयाल करके उसका वध न करना।"

परन्तु द्रौपदी को युधिष्ठिर की यह बात न रुची। उसने भीमसेन और अर्जुन की ओर देखकर क्रोध से काँपते हुए स्वर में कहा —

"हे वीर! यदि हमें प्रसन्न रखने की कुछ भी इच्छा हो, तो उस पापी को जीता न छोडना। जो व्यक्ति स्त्री और राज्य का हरण करे, वह शरण आने पर भी वध्य है।"

द्रौपदी के कह चुकने पर भीमसेन और अर्जुन जयद्रथ को ढूँढने और उसका पीछा करने के लिये तेज़ी से दौडे। थोड़ी ही दूर जाने पर उसका पता उन्होंने पा लिया। अर्जुन ने दूर ही से

बाण चलाकर उसके रथ के घोड़े गिरा दिये, तब वह पैदल ही भागने लगा।

तब भीमसेन ने कहा —

"अरे डरपोक! क्यों भागा जाता है? इसी साहस पर द्रौपदी का हरण किया था? ठहर जा।"

पर जयद्रथ न रुका, तब भीमसेन ने फिर उसका पीछा किया और थोड़ी ही दूर पर जाकर उसे पकड़ लिया। पकड़कर उसे जमीन पर पटक दिया और लात घूसों से उसकी खूब खबर ली, यहाँ तक कि वह बेहोश हो गया।

तब अर्जुन ने कहा —

"भाई! दुःशला और माता गान्धारी के विषय में धर्मराज ने जो बात कही है, उसे भूल न जाना।"

भीम ने अर्जुन के कहने पर उसे छोड़ दिया और धार धार अर्द्ध चन्द्र बाण से उसका सिर मूँड डाला। केवल पाँच चोटियाँ रहने दीं।

जब उसे होश आया, तब उसको भीम धिक्कारने लगे और कहा —

"यदि तुम्हें अपना जीवन प्यारा हो, तो हमारे दास बनो और कहो—"दासोऽस्मि' (मैं तुम्हारा दास हूँ)। जयद्रथ बेचारा लाचार था। उसने सोचा, यदि मैं यह नहीं कहता, तो भीम छोड़ेंगे नहीं और यदि जीवन ही चला गया, तो पाण्डवों से इस अपमान का बदला न ले सकूँगा, इससे उसने कहा —

"दासोऽस्मि।"



भीमसेन का जयद्रथ के लात मारना ।

"भीमसेनने उसे ज़मीन पर पटक दिया और लात घूँसों से ..."

बाण चलाकर उसके रथ के घोड़े गिरा दिये, तब वह पैदल ही भागने लगा।

तब भीमसेन ने कहा —

"अरे डरपोक! क्यों भागा जाता है? इसी साहस पर द्रौपदी का हरण किया था? ठहर जा।"

पर जयद्रथ न रुका, तब भीमसेन ने फिर उसका पीछा किया और थोड़ी ही दूर पर जाकर उसे पकड़ लिया। पकड़कर उसे जमीन पर पटक दिया और लात घूसों से उसकी खूब खबर ली, यहाँ तक कि वह बेहोश हो गया।

तब अर्जुन ने कहा —

"भाई! दुःशला और माता गान्धारी के विषय में धर्मराज ने जो बात कही है, उसे भूल न जाना।"

भीम ने अर्जुन के कहने पर उसे छोड़ दिया और धार दार अर्द्ध चन्द्र बाण से उसका सिर मूँड डाला। केवल पाँच चोटियाँ रहने दीं।

जब उसे होश आया, तब उसको भीम धिक्कारने लगे और कहा —

"यदि तुम्हें अपना जीवन प्यारा हो, तो हमारे दास बनो और कहो—"दासोस्मि' (मैं तुम्हारा दास हूँ)। जयद्रथ बेचारा लाचार था। उसने सोचा, यदि मैं यह नहीं कहता, तो भीम छोड़ेंगे नहीं और यदि जीवन ही चला गया, तो पाण्डवों से इस अपमान का बदला न ले सकूँगा, इससे उसने कहा —

"दासोस्मि।"

तब भीमसेन ने जकड़कर उसे बन्दी कर लिया और रथ पर डालकर युधिष्ठिर के सामने ले आये।

युधिष्ठिर ने कहा —

"अब इसकी बड़ी दुर्गति हो चुकी है। इसे छोड़ दो।"

भीम बोले —

"यह हमारा दास है, इस लिये इसके सम्बन्ध में द्रौपदी से पूछिये।"

युधिष्ठिर ने फिर कहा —

"हे भीम! यदि हमारी बात मानना अपना कर्तव्य समझते हो, तो शीघ्र ही इस दुराचारी को छोड़ दो।"

युधिष्ठिर का रुख देखकर द्रौपदी बोली —

"इस नीचने तुम्हारा दासत्व स्वीकार कर लिया है और तुमने पाँच चोटियाँ छोड़कर इसका शिर भी मूँड दिया है। यदि यह मनुष्य है, तो इतने में मर चुका, अब इसे छोड़ दो।"

तब भीम ने जयद्रथ को छोड़ दिया। उस समय उसने युधिष्ठिर के चरण छुए। युधिष्ठिर को उसकी इस दीनता पर दया आगई। उन्होंने कहा —

"जाओ, तुम दासत्व से छोड़ दिये गये, पर अब कभी ऐसा काम न करना। पराई स्त्री के ऊपर बुरी निगाह डालना महापाप है। कुछ भी हो, हम तुम्हें छोड़े देते हैं। अपने हाथी, घोड़े आदि साथ लेकर अपने नगर को जाओ। ईश्वर करे, अब तुम्हारी में लिप्त न हो।"



जयद्रथ का कैदी होकर आना ।

युधिष्ठिर ने कहा—'अब इसकी बड़ी दुर्गति हो चुकी छोड़ दो।"

जयद्रथ को बड़ी लज्जा लगी। पाण्डवों से बदला लेने की आग भी उसके हृदय में भड़क उठी। इससे वह अपने देश को न जाकर, गङ्गाद्वार जाकर तपस्या करने लगा। उसने बड़ी कठिन तपस्या की। भगवान् भवानीपति शङ्कर उसकी तपस्या से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा —

"पुत्र ! वर माँगो !"

जयद्रथ ने हाथ जोड़कर कहा —

"यदि आप हमसे प्रसन्न ही हैं, तो हमें यह वर दीजिये कि, हम पाँचों पाण्डवों को युद्ध में हरा सकें।"

त्रिलोचन शङ्कर ने कहा —

"अर्जुन ने हमारी तपस्या करके हम से ही पाशुपतास्त्र माँग लिया है। इससे उन्हें छोड़कर तुम अन्य पाण्डवों को जीत सकोगे।"

यह कहकर वे अन्तर्द्धान हो गये। जयद्रथ भी अपने घर चले गये।



है। हम पहले महाराज युधिष्ठिर के भण्डार के निरीक्षक थे। हम पहलवानी भी जानते हैं, आप के पास नौकरी करने आये हैं।"

राजा विराट ने कहा —

"अच्छी बात है, आज से हम तुम को अपना प्रधान रसोइया बनाते हैं।"

इसके बाद नकुल और सहदेव भी वेश बदलकर पहुँचे। उन्होंने भी राजा विराट से नौकरी पाने की प्रार्थना की। नकुल ने अपना नाम ग्रन्थिक बतलाया और सहदेव ने तन्त्रपाल। राजा ने नकुल को अस्तबल का दारोगा और सहदेव को पशुशाला का निरीक्षक बनाकर उन्हें भी नौकर कर लिया।

इसके बाद अर्जुन पहुँचे। नाचने वालों की तरह स्त्री-वेश बनाये, कानों में कुण्डल, शिर पर लम्बे बाल, हाथों में शङ्ख की चूड़ियाँ और कड़े धारण करके वे पूरे कथिक (नर्त्तक) बने हुए थे।

उन्हें देखकर राजा ने कहा —

"तुम्हारा पुरुषों के जैसा बली शरीर और जनाना वेश देखकर हम बड़े विस्मित हैं, हमने ऐसी मूर्त्ति पहले कभी नहीं देखी। तुम कौन हो ?"

अर्जुन ने कहा —

"महाराज! हमारे भाग्य आजकल भले नहीं। पहले हम चक्रवर्ती महाराज युधिष्ठिर के अन्तःपुर में नाच-गाकर स्त्रियों का मन ... और उन्हें नाचने गाने की शिक्षा भी देते थे, पर अब

अनाथ हैं। अब आप हमें नौकर रख लें, तो आप की राजकुमारी को हम गानविद्या में दक्ष कर देंगे। हमारा नाम बृहन्नला है।"

विराट ने कहा —

"भली बात है। बृहन्नला ! तुम हमारी कन्या उत्तरा और नगर की अन्य स्त्रियों को नाचना-गाना सिखाओ और आनन्द से रहो।"

उधर द्रौपदी एक मैला कपड़ा पहने, नाइन का वेश बनाये, राजमहलों के पास पहुँची। उसे देखते ही लोगों ने कहा —

"तू कौन है ? यहाँ क्यों आई है और क्या चाहती है ?"

उसने उत्तर दिया —

"मैं सैरिन्ध्री हूँ। स्त्रियों की कङ्घी चोटी करने का काम मैं जानती हूँ। कोई मुझे इस काम पर रख ले, तो मैं नौकरी कर लूँगी, यही मेरी इच्छा है।"

पर उसका रूप देखकर किसी को इस बात पर विश्वास न आया। विराट की रानी सुदेष्णा इसी समय कोठे पर चढ़ी हुई इधर-उधर निहार रही थी। उन्होंने द्रौपदी को देखा। उसका सुन्दर रूप, पर, उसका दीन वेश, देखकर उन्हें दया आ गयी। उन्होंने उसे भीतर बुलवा भेजा।

भीतर पहुँचने पर रानी ने पूछा —

"भद्रे ! तुम कौन हो और क्या चाहती हो ?"

द्रौपदी ने कहा —

"मैं सैरिन्ध्री हूँ। स्त्रियों की कङ्घी चोटी करना जानती हूँ [illegible] चाहती हूँ।"

रानी ने कहा :—

"बहिन ! तुम्हारी सुन्दरता अद्वितीय है, तुम अवश्य ही देवी, अप्सरा या यक्षपत्नी हो। ऐसी स्त्री मैंने पहले कहीं नहीं देखी। तुम स्वयम् ही इस योग्य हो कि, सैकड़ों स्त्रियाँ तुम्हारे दासीपने का काम करें, फिर तुम नौकरी करने की बात क्यों कहती हो ?"

द्रौपदी ने कहा —

"रानी ! न मैं देवी हूँ, न अप्सरा और न यक्षपत्नी, मैं साधारण मानवी हूँ। मैं सच कहती हूँ कि, मैं सैरिन्ध्री * हूँ। मैं कङ्घी चोटी करने, शृङ्गार कराने, उबटन लगाने और मालाएँ गूँथने का काम भली भाँति जानती हूँ। पहले मैं कृष्ण की प्यारी रमणी, सत्यभामा और फिर पाण्डवों की सहधर्मिणी द्रौपदी के पास इसी काम पर नौकर रह चुकी हूँ। द्रौपदी देवी मेरा बड़ा आदर करती थी, उन्होंने मेरा नाम 'मालिनी' रक्खा था।"

रानी सुदेष्णा ने कहा —

"हे कल्याणि ! मैं तुम्हें सिर आँखों पर मानसमेत रख सकती हूँ, पर डरती हूँ कि, कहीं राजा तुम्हारी सुन्दरता पर मुग्ध होकर तुम्हारे लिये चञ्चल न हो उठें। पुरुषों की तो बात जाने दो, इस राजकुल की रमणियाँ और राजमहल में रहने वाली अन्य स्त्रियाँ तुम पर मोहित होकर एकटक तुम्हारे रूप को निहार रही हैं, वे इस समय और सब काम भूलसा गयी हैं। देखो, मेरे घर में लगे

* अन्तःपुर में स्त्रियों की कङ्घी चोटी और शृङ्गार करने वाली दासी, नीच जाति को सैरिन्ध्री कहते हैं।

वृक्ष भी मानों झुके हुए तुम्हारी मूर्त्ति देख रहे हैं। हे सुन्दरी! तुम्हारा अलौकिक रूप और तुम्हारे अङ्गों की गठन देखकर विराट-राज कहीं मुझे छोडकर तुम्हीं पर अनुरक्त न हो उठें। हे कमल-लोचने! जो कोई तुम्हें देखेगा और तुम जिस की निगाह में पडोगी, वह अवश्य ही चञ्चल हो उठेगा। तुम को घर में स्थान देकर मैं अपने ही लिये डरती हूँ कि, तुम्हारे सामने राजा कहीं मेरी ही खातिर न कम कर दें।"

द्रौपदी ने कहा ––

"रानी! राजा विराट या और कोई राजपुरुष मुझ पर बुरी दृष्टि नहीं डाल सकता, क्योंकि मैं पाँच गन्धर्वों की स्त्री हूँ। वे लोग बडे पराक्रमी हैं। वे मेरी रक्षा के लिये सदैव ही तैयार रहते हैं। जो कोई मुझे अपना जूठा नहीं खिलाता और जो कोई मुझ से अपने पैर नहीं धुलाता, मेरे पति गन्धर्व उससे बहुत प्रसन्न रहते हैं। जो कोई मोहवश मेरी ओर बुरी निगाह करता है, उसको वे लोग उसी रात को यम धाम पहुँचा देते हैं। कोई भी पुरुष मुझे मेरे धर्म से विचलित नहीं कर सकता। यद्यपि मेरे पति गन्धर्व-गण इस समय घोर दुःख में विलीन हैं और उनका भाग्य उनके अनुकूल नहीं, फिर भी वे गुप्त रूप में मेरी रक्षा करते रहते हैं।"

रानी सुदेष्णा को यह सुनकर आनन्द हुआ। जिस बात से वे डरती थीं, उसका अन्देशा उन्हें न रहा, तब उन्होंने कहा —

"हे आनन्दवर्द्धिनि ! तुम यहाँ आनन्द से रहो। तुम्हे यहाँ किसी का जूठा छूना न पड़ेगा और न कोई तुम से पैर ही धुलवायेगा।"

उसी दिन से पतिव्रता द्रौपदी राजा विराट के महलों में आनन्द से रहने लगी। उसे किसी ने भी नहीं पहचाना।

तेईसवाँ परिच्छेद ।

द्रौपदी और कीचक ।

पाण्डव लोग राजा विराट के यहाँ अपने दिन काटने लगे। समय का विपर्यय बडा बुरा होता है। जो लोग स्वयम् धराधीश थे, उन्हें छिपकर और वेश बदल कर दूसरे की नौकरी करनी पडी, पर धीरज धरकर उन्होंने सब कुछ सहा। अवसर पाकर सब भाई किसी न किसी बहाने एक दूसरे से मिल लेते और पतिव्रता द्रौपदी भी सब की आँख बचाकर कभी कभी उन्हें देख जाती। इस तरह उन्होंने दस महीने बिताये। अब अज्ञातवास के केवल दो ही महीने शेष रहे।

एक दिन राजा विराट का सेनापति, रानी सुदेष्णा का भाई, पराक्रमी कीचक अन्तःपुर में गया था। सयोगवश उसने द्रौपदी को देख लिया, उसे देखते ही उसका चित्त चञ्चल हो उठा। वह अपने मन को किसी भाँति भी सँभाल न सका। अपनी बहिन रानी सुदेष्णा से उसने कहा —

"बहिन! इस सुन्दरी स्त्री को राजमहलों में पहले मैंने कभी
नहीं देखा। जैसे शराब ... नशा से ही उन्मादित कर देती
है, इसी तरह इसके रूप ... कर दिया है।

रूपवती को अपनी दासी बनाये हुए हो, यह ठीक नहीं। इसे मुझे दे दो, मैं इसे अपनी हृदयेश्वरी बनाऊँगा।"

रानी सुदेष्णा से इस तरह कहकर दुष्ट कीचक कुछ देर तक तो चुप रहा, पर थोडी देर में ही जिस तरह एक सियार सिंहकन्या के पास जाय, उसी तरह द्रौपदी के पास जाकर कहने लगा —

"हे कल्याणि! तुम कौन हो? किस की पत्नी हो और विराट-नगर में किस लिये आई हो? अहा! कैसी रूपमाधुरी! क्या ही अनुपम कान्ति? तुम्हारा मुख चन्द्रमण्डल की भाँति सुन्दर है, तुम्हारे नेत्र कमल सरीखे हैं, तुम्हारी बोली कोकिला कीसी है। मैंने आज तक तुम्हारी जैसी सुन्दरी रमणी नहीं देखी। तुम लक्ष्मी हो या कीर्ति, अथवा कान्ति? ऐसा कौन है, जो चन्द्रमा की तरह तुम्हारा मुख और चन्द्रिका की भाँति तुम्हारी मुसकान देखकर तुम पर लट्टू न हो जाय? तुम मुझ पर कृपा करो। तुम सुख पाने के योग्य होकर भी क्यों दुखिनी बनी हो? मेरी अन्यान्य स्त्रियाँ तुम्हारी दासी होकर रहेंगी, तुम मेरे घर की शोभा और मेरे हृदय की मणि बनो।"

द्रौपदी ने कहा —

"हे सूतपुत्र! मैं कङ्घी चोटी करने वाली सैरिन्ध्री हूँ, नीच जाति में मेरा जन्म हुआ है, तुम मेरे पाने की इच्छा न करो। विशेषत, पराई स्त्री दया की पात्र है, जरा धर्म की ओर तो ेखो। पराई स्त्री को पाने की अभिलाषा करना, भले आदमियों

का काम नहीं। जो काम भला नहीं, उससे दूर ही रहना चाहिये। जो लोग ऐसा नीच काम करते हैं, उनकी अपकीर्ति ही होती है, तुम अपनी कीर्ति का ध्यान रक्खो।"

कीचक यह समझ कर भी, कि पराई स्त्री की इच्छा करना दोषों का घर है, अपनी तबीयत को न सँभाल सका। उसने फिर द्रौपदी से कहा —

"हे सुन्दरी! हम तुम्हारे ताबेदार हैं। हमारी प्रार्थना अस्वीकार न करो। राजा विराट तो यहाँ पर नाम-मात्र के राजा हैं। राज्य का सब काम मेरे ही द्वारा होता है, राज्य का वास्तविक अधिकार तो मेरे ही हाथ है। मेरे पराक्रम की बात छिपी नहीं, ऐसा कौन है, जो पराक्रमी कीचक के नाम से न डरता हो? अच्छा लो, यह सब राज्य मैंने तुम्हें दिया। अब तुम राज्य की मालकिन बनो और मेरी इच्छा पूर्ण करो।"

कीचक के मुँह से इस तरह की बातें सुनकर, पतिपरायणा द्रौपदी ने उसे फटकार बतलाते हुए कहा —

"हे सूतपुत्र! मोह में न पड़ो। क्यों अपने जीवन से हाथ धोना चाहते हो? पाँच गन्धर्व मेरे स्वामी हैं, वे सदैव ही गुप्त भाव से मेरे रक्षक रहते हैं। तुम मुझे कभी न पा सकोगे, गन्धर्व लोग तुम्हारी उद्दण्डता की बात जान जायँगे, तो वे अवश्य ही तुम्हें मार डालेंगे। सावधान हो जाओ, मौत के मुँह में मत प्रवेश करो। तुम ऐसी दुष्ट भावना करके यदि समुद्र के पार भी चले जाओ, तोभी न बचोगे; मेरे [illegible]

तुम्हें अवश्य नष्ट कर देंगे। तुम बेकार मेरी इच्छा करके यमलोक को क्यों जाना चाहते हो? जैसे माता की गोदमें बैठा हुआ अज्ञान बालक चन्द्रमा को पाने की अभिलाषा करे, वैसे ही तुम मुझे पाने के अभिलाषी हो। ऐसा मत करो, कहना मानो और सत्पथ पर दृष्टि डाल कर अपनी रक्षा करो।"

जब कीचक ने द्रौपदी से इस तरह का जवाब पाया, तो वह अत्यन्त ही अधीर होकर अपनी बहिन, रानी सुदेष्णा के पास जाकर कहने लगा,—

"बहिन! सैरिन्ध्री के रूप पर हम मोहित हैं, वह जिस तरह हमें मिले, उसकी युक्ति करो। यदि वह न मिली, तो समझ लो कि, हम जी न सकेंगे।"

अपने भाई का इस तरह अधीर होना देखकर, रानी सुदेष्णा को दया आगई, उन्होंने कहा —

इस तरह अधीर होने से काम न चलेगा। तुम किसी त्योहार पर खाने की अच्छी अच्छी वस्तुएँ और अच्छी अच्छी शराब तैयार कराना। मैं सैरिन्ध्री को किसी बहाने से तुम्हारे पास शराब लाने के लिये भेजूँगी। वहां अकेले में तुम उससे विनती करना, शायद वह तुम्हारी बात मान ले।"

अपनी बहिन की बातों से कीचक को कुछ शान्ति मिली। किसी त्योहार का कौन इन्तजार करता? दूसरे ही दिन उसने अच्छे-अच्छे रसोइयों द्वारा सुस्वादु भोजन बनवाये और बढ़िया शराब तैयार कराई। यह सब कुछ करके उसने रानी सुदेष्णा को खबर दी।

रानी ने सैरन्ध्री से कहा —

"सैरन्ध्री ! मैं बहुत प्यासी हूँ। कीचक के भवन से मेरे लिये थोड़ी अच्छीसी शराब तो ले आओ।"

द्रौपदी ने कहा .—

"रानी ! कीचक के घर में कभी नहीं जा सकती। उस निर्लज्ज की निर्लज्जता का हाल आप भली भाँति जानती हैं। एक स्वेच्छाचारिणी स्त्री की तरह मैं आप के घर में नहीं रह सकती, यह बात मैंने आप को पहले ही बता दी है। कामोन्मत्त नीच कीचक मुझे देखते ही मेरा धर्म लेने के लिये मेरी ओर झपटेगा, इससे वहाँ पर आप किसी दूसरी दासी को भेजिये।"

रानी ने कहा —

"सैरन्ध्री ! तुम हमारे भेजने से वहाँ जा रही हो। कीचक किसी तरह भी तुम्हारा अपमान नहीं कर सकता।"

यह कहकर रानी ने कपड़े से ढका हुआ सोने का एक कटोरा उसे दे दिया।

तब बेचारी द्रौपदी अपने ही भाग्य को कोसती और आँसू बहाती हुई, कीचक के घर शराब लाने के लिये जाने लगी। मन ही मन उसने कहा —

"यदि अपने पतियों को छोड़कर स्वप्न में भी मैंने किसी पर पुरुष का मुख नहीं देखा, तो उसी पुण्य के प्रभाव से मेरी रक्षा हो। हे सूर्य भगवान् ! मेरी लाज रखना।"

वह किसी तरह डरती हुई चौकन्नी

के भवन के पास पहुँची। उसे देखते ही कीचक आनन्द-पूर्वक उठ खडा हुआ।

उसने कहा :—

"हे सुन्दरी! आज बडा शुभ दिन है। आओ, आज मुझ पर कृपा करो।"

द्रौपदी बोली :—

"मुझे रानी ने शराब लेने के लिये भेजा है। वे बहुत प्यासी हैं, इससे जल्द शराब दे दो, मैं ले जाऊँ।"

कीचक ने कहा :—

"शराब कोई दूसरी दासी ले जायगी। तुम अब यहीं रहो।"

यह कहकर उसने द्रौपदी का दहिना हाथ पकड लिया। तब द्रौपदी ने कहा :—

"अरे पापी! मैं गर्व पूर्वक कह सकती हूँ, कि मैंने कभी अपने पतियों का अनादर नहीं किया। उसी पुण्यके बल से मुझे विश्वास है, कि तू नष्ट हो जायगा।"

द्रौपदी के ये तिरस्कार-वाक्य सुनकर कीचक ने उसका दुपट्टा पकड लिया। यह बात द्रौपदी को बहुत बुरी लगी, इसे वह सहन न कर सकी। क्रोध के मारे उसका शरीर काँपने लगा और उसने बल-पूर्वक कीचक को धक्का दे दिया। जैसे जड से कटा हुआ वृक्ष धक्के से गिर पडे, उसी तरह कीचक भी पृथ्वी पर गिर पडा।

कीचक को गिरा कर भागती हुई द्रौपदी राजा विराट की सभा में पहुँची। वहाँ पर युधिष्ठिर और भीमसेन भी बैठे थे।

उसी के पीछे पीछे कीचक भी पहुँचा। उसने द्रौपदी के वाल पकड़कर खींच लिये, जब वह जमीन पर गिर पड़ी, तब राजा विराट के सामने ही उसने उसकी पीठपर कसकर एक लात मारी।

युधिष्ठिर और भीमसेन अपनी प्रियतमाका यह अपमान देख-कर अत्यन्त दुखित हुए। भीमसेन तो क्रोध पूर्वक अपने दाँत पीसने लगे, उनकी आँखें लाल हो गयीं। उनके हाथ में उस समय कोई हथियार न था, इससे सभा-भवन के वाहर ही लगे हुए एक वृक्ष की ओर, उसे उखाड़ कर कीचक को मारने की नीयत से, देखने लगे।

राजा युधिष्ठिर ने मन ही मन सोचा कि, भीमसेन क्रोध में कहीं कोई अनर्थ न कर बैठे। इससे उन्होंने कहा —

"वल्लभ! क्या रसोई के लिये तुम्हें ईंधन की आवश्यकता है, जो इस वृक्ष को देख रहे हो? यदि ऐसा ही हो, तो इस वृक्ष को न तोड कर वाहर के दूसरे वृक्ष तोड़ो। इसका तोडना ठीक नहीं।"

भीमसेन युधिष्ठिर के इस इशारे को समझ गये, इससे वे चुप रहे।

द्रौपदी ने जब देखा कि, कीचक ने राजा और सभासदों के सामने ही मेरे लात मारी है और फिर भी [illegible] बैठे हैं—न [illegible] समय राजा को [illegible]

सयम् [illegible] हैं; [illegible]



कीचक द्वारा द्रौपदी का अपमान ।

उसी के पीछे पीछे कीचक भी पहुँचा। उसने द्रौपदी के बाल पकड़कर खींच लिये, जब वह जमीन पर गिर पड़ी, तब राजा विराट के सामने ही उसने उसकी पीठपर कसकर एक लात मारी।

युधिष्ठिर और भीमसेन अपनी प्रियतमाका यह अपमान देखकर अत्यन्त दुःखित हुए। भीमसेन तो क्रोध पूर्वक अपने दाँत पीसने लगे, उनकी आँखें लाल हो गयीं। उनके हाथ में उस समय कोई हथियार न था, इससे सभा-भवन के बाहर ही लगे हुए एक वृक्ष की ओर, उसे उखाड़ कर कीचक को मारने की नियत से, देखने लगे।

राजा युधिष्ठिर ने मन-ही मन सोचा कि, भीमसेन क्रोध में कहीं कोई अनर्थ न कर बैठे। इससे उन्होंने कहा —

"वल्लभ! क्या रसोई के लिये तुम्हें ईंधन की आवश्यकता है जो इस वृक्ष को देख रहे हो? यदि ऐसा ही हो, तो इस वृक्ष को न तोड़ कर बाहर के दूसरे वृक्ष तोड़ो। इसका तोड़ना ठीक नहीं।"

भीमसेन युधिष्ठिर के इस इशारे को समझ गये, इससे वे चुप रहे।

द्रौपदी ने जब देखा कि, कीचक ने राजा और सभासदों के सामने ही मेरे लात मारी है और फिर भी ये लोग चुप बैठे हैं— न सभासद लोगों ने इस समय राजा को कुछ सलाह दी न स्वयम् राजा ही कुछ बोलते हैं

अप्रासङ्गिक बात कह रहे हैं कि, "जिस की यह स्त्री होगी, वह बडा ही भाग्यवान् होगा," तब उसने भरी सभा के सामने ही कहा :—

"आज मैंने जाना कि, राजा विराट बडे अधर्मी हैं, क्योंकि एक निरपराधिनी स्त्री पर अपने साले का ऐसा अत्याचार देख कर भी वे चुप हैं। जब राजा ही कीचक का कुछ न बिगाड सके, तब मैं क्या करूँगी? सभासद लोगो! आप लोग चुप क्यों बैठे हैं? इतना अत्याचार अपनी आँखों देखकर भी आप मौन हैं, इससे अधिक अधर्म और क्या हो सकता है? मैंने जान लिया कि, राजा विराट स्वयम् अधर्मी हैं और उनके सभासद लोग भी धर्म की परवा नहीं करते। हाय! मेरे गन्धर्व पति भी मेरी खबर नहीं लेते!"

जब द्रौपदी ने रो-रोकर खुले-खुले इस भाँति राजा का तिरस्कार किया, तब राजा विराट ने कहा —

"तुम्हारे लडाई झगडे का पूरा-पूरा मामला हमें मालूम नहीं, इससे यथार्थ बात जाने बिना उसका विचार ही हम क्या करें?"

तब द्रौपदी ने सब बातें साफ साफ कह दीं। उस समय सब सभ्य कीचक की निन्दा और द्रौपदी की प्रशंसा करने लगे।

उस समय राजा युधिष्ठिर ने द्रौपदी से कहा :—

"सैरिन्ध्री! अब यहाँ पर तेरे ठहरने की आवश्यकता नहीं। यह याद रख कि, पातिव्रत-धर्म का निर्वाह करने के लिये पतिव्रता वीर स्त्रियोंने सदैव ही सङ्कट सहे हैं। तेरे गन्धर्व पति तेरी

खबर नहीं लेते, यह भी समय की ही बात है। गन्धर्व लोग धर्म की गति भली भाँति जानते हैं, समुचित अवसर आने पर वे अवश्य ही तेरी सहायता करेंगे। इस समय तेरा रोना चिल्लाना व्यर्थ है। फिर मत्स्यराज के आनन्द में विघ्न डालने से क्या लाभ? तू अब शीघ्र ही महलों के भीतर रानी सुदेष्णा के पास जाकर उनसे अपने दुःख की बात कह।"

तब द्रौपदी रानी सुदेष्णा के पास गई। उसे देखकर रानी ने कहा —

"हे शोभने! किसने तुम्हें मारा है और तुम क्यों रो रही हो?"

द्रौपदी ने कहा —

"आप की आज्ञा से, आप के लिये शराब लाने के लिये, मैं कीचक के पास गई थी। उसी दुष्ट ने मेरा अपमान किया और जब उसकी नालिश करने के लिये मैं राज सभा में गई, तो वहाँ पहुँचकर राजा के सामने ही उसने मुझे गिरा दिया और लात मारी।"

रानी सुदेष्णा बोली —

"दुष्ट कीचक ने तुम्हारे साथ कामोन्मत्त होकर ऐसा बुरा व्यवहार किया। यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो कहो, हम उसका नाश कर दें।"

द्रौपदी ने कहा —

"उस दुष्ट ने जिन का अपकार किया है, वे मेरे गन्धर्व पति ही उसे उसकी दुष्टता का फल देंगे। उसे अवश्य ही यमलोक जाना होगा।"

चौबीसवाँ परिच्छेद ।

विराट नगर में द्रौपदी और भीमसेन ।

द्रौपदी ने समझ लिया कि, जब तक कीचक जीता है, तब तक वह हमें बराबर छेड़ता और सताता ही रहेगा, इससे कोई ऐसी युक्ति करनी चाहिये कि, वह नष्ट ही हो जाय। उसने सोचा कि, इस काम को भीमसेन के सिवा और कोई नहीं कर सकता, इससे रात को किसी तरह छिपकर उसने भीमसेन के पास जाने और अपना दुःख सुनाने का विचार निश्चित कर लिया।

उसी रात को भीमसेन के पास जाकर, उन्हें चुपके से जगाते हुए उसने कहा —

"नाथ! उठो। क्या अब भी सोते ही रहोगे? कीचक ने मेरा इतना अपमान किया है और वह अब भी जीता है, यह क्यों?"

भीमसेन ने जाग कर कहा —

"प्रिये! इतनी रात बीते क्यों आई हो? तुम्हें क्या दुःख है? तुम्हारा मुँह पीला हो गया है और तुम दुबली हो गई हो, यह क्यों? सब साफ साफ कहो और कहकर चुपके से शीघ्र ही लौट जाओ। तुम्हारी जो कुछ इच्छा होगी, उसे हम अवश्य ही

द्रौपदी ने कहा —

"हे नाथ ! मेरे दुःखों का हाल जान बूझकर क्या पूछते हो ? राजा युधिष्ठिर जिस स्त्रीके पति हो, उसे सुख कहाँ ? दुर्योधन की सभा में मेरा जो अपमान हुआ है, उसकी याद करके मेरी छाती जला करती है। द्रौपदी को छोड और कौन राजपुत्री ऐसे दुःख सहन करके भी जीवित रह सकती है ? वनवास के समय पापी जयद्रथ ने मेरा जो अपमान किया है, उसे ही मुझे छोडकर और कौन सहन कर सकती है ? इस बार कीचक ने मेरे भरी सभा के सामने लात मारी और फिर भी वह जीवित है। मैं इसी भाँति बराबर दुःख पा रही हूँ और तुम मेरे दुःखों पर कुछ भी ध्यान नहीं देते, फिर मेरे जीने से लाभ ही क्या ?

"नीच कीचक राजा विराट का साला और उनकी सेनाका सेनापति है। वह जब देखो तब मुझ से कहा करता है, 'मेरी प्यारी बनो' 'मेरी प्यारी बनो।' उसकी इन बातों को सुनते सुनते मेरा हृदय फट गया है। जिन के कर्मों के फलसे मुझे यह दुःख मिल रहा है, उन जुआरी राजा युधिष्ठिर का तुम्हें तिरस्कार करना चाहिये। यदि हजारों अशर्फियों से वे नित्य-प्रति जूआ खेलते, तोभी उनका खजाना न चुकता। पर जूए के फेरी में वे इतने मत्त हो गये कि, सर्वस्व हार चुकने पर भी जूआ खेला और बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास की प्रतिज्ञा में बद्ध हुए। अब दासता करके भी वे जूआ [illegible] राजा विराट का मन बहलाया करते हैं। मेरा इतना



विराट् सभा में युधिष्ठिर का जुआ खेलना ।

द्रौपदी ने कहा —

"हे नाथ ! मेरे दुःखों का हाल जान बूझकर क्या पूछते हो ? राजा युधिष्ठिर जिस स्त्री के पति हों, उसे सुख कहाँ ? दुर्योधन की सभा में मेरा जो अपमान हुआ है, उसकी याद करके मेरी छाती जला करती है। द्रौपदी को छोड़ और कौन राजपुत्री ऐसे दुःख सहन करके भी जीवित रह सकती है ? वनवास के समय पापी जयद्रथ ने मेरा जो अपमान किया है, उसे ही मुझे छोड़कर और कौन सहन कर सकती है ? इस बार कीचक ने मेरे भरी सभा के सामने लात मारी और फिर भी वह जीवित है ! मैं इसी भाँति बराबर दुःख पा रही हूँ और तुम मेरे दुःखों पर कुछ भी ध्यान नहीं देते, फिर मेरे जीने से लाभ ही क्या ?

"नीच कीचक राजा विराट का साला और उनकी सेनाका सेनापति है। वह जब देखो तब मुझ से कहा करता है, 'मेरी प्यारी बनो' 'मेरी प्यारी बनो।' उसकी इन बातों को सुनते सुनते मेरा हृदय फट गया है। जिन के कर्मों के फलसे मुझे यह दुःख मिल रहा है, उन जुआरी राजा युधिष्ठिर का तुम्हें तिरस्कार करना चाहिये। यदि हजारों अशर्फियों से वे नित्य प्रति जूआ खेलते, तोभी उनका खजाना न चुकता। पर जूए के नशे में वे इतने मत्त हो गये कि, सर्वस्व हार चुकने पर भी जूआ खेला और बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास की प्रतिज्ञा में बद्ध हुए। अब दासता करके भी वे जूआ खेलकर राजा विराट का मन करते हैं। मेरा -

देखकर भी वे चुप बैठे हैं। इन्द्रप्रस्थ में रहते रहते सैकड़ों राजा जिन्हें सिर झुकाते और भेंट में बहुमूल्य वस्तुएँ नजर करते थे, वे ही आज विराट के नौकर हैं और नौकरी की तनख्वाह पाकर पेट पालते हैं। जो अपने तेज के प्रभाव से मेदिनी मण्डल को परितापित करते थे, वे आज राजा विराट के साधारण सभासद हैं। बहुत से राजा और ऋषि जिन की प्रशंसा किया करते थे, वे ही आज राजा विराट के चाटुकार होकर उन्हें 'महाराज!' 'महाराज!' कहते और खुशामद करते हैं। उन्हें देखकर मेरे क्रोध की आग भड़क उठती है। ऐसे धर्मात्मा धर्मराज को जीविका-निर्वाहार्थ पराधीन देखकर किस को दुःख न होता होगा? मैं अनाथा की तरह इन दुःखों को सहते सहते ऊब उठी हूँ, तुम मेरे दुःखों के विनाश के लिये यत्न क्यों नहीं करते?

"नाथ! मैं किसी की निन्दा नहीं करती, अपने दुःखों की बात ही कहती हूँ। तुम दासवृत्ति का अवलम्बन करके राजा के रसोइये बने हुए हो, लोग तुम्हें बल्लभ कहकर पुकारते हैं, इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या हो सकती है? भोजन तैयार हो जाने पर, जिस समय तुम विराट की सेवा करने के लिये जाते हो, उस समय मेरी छाती फट जाती है। जिस समय राजा अपने दिलबहलाव के लिये तुम्हें हाथियों के साथ युद्ध करने की आज्ञा देते हैं और तुम उनसे लड़ने लगते हो, उस समय कोठे पर से वह दृश्य देखकर अन्तःपुर की नारियाँ हँसने लगती हैं। वह [illegible] मुझे भली नहीं लगती, उससे मेरा अन्तःकरण क्षुब्ध हो

उठता है। एक दिन तुम महिषों और गजों के साथ युद्ध-कर रहे थे, कोठे पर चढ़ी रानी सुदेष्णा तमाशा देख रही थीं। मैं भी उनके पास ही बैठी हुई थी। हाय! मेरे पति दूसरे का मन बहलाने के लिये इन पशुओं के साथ युद्ध करें—यह सोचते ही शोक से व्याकुल, होकर मैं मोहाविष्ट हो गई। मोह में मूर्छित देखकर रानी सुदेष्णाने मुझे उठाया और सब स्त्रियों के सामने ही ये कहने लगीं, 'रसोइये को बली जीवों के साथ युद्ध करते हुए देखकर, सैरिन्ध्री सहवास सुलभ स्नेह में शोकाभिभूत हो रही है। सैरिन्ध्री अतिशय सुन्दरी है और बल्लभ भी बड़ा रूपवान् है, स्त्रियों की चित्तवृत्ति का हाल भी कोई नहीं जान सकता, उनकी तबीयत में किस समय कौनसी बात आती है, यह किसी को पता नहीं। ये दोनों किसी समय एक ही राजा के यहाँ नौकर थे। सैरिन्ध्री सदैव ही प्रियसहवास के दुःख से दुःखिनी रहती है।' हे महाबाहो! रानी इसी तरह मनमानी बातें कहकर मुझे चिढ़ाया करती हैं। मैं चिढ़ती हूँ, तो औरभी चिढ़ाने लगती हैं। ऐसी बातों से मुझे बड़ा दुःख होता है। तुम इतने पराक्रमी होने पर भी, इस तरह की नरकयातना भोग रहे हो, यह देखकर कभी कभी मैं सोचती हूँ कि, अब मेरा जीवन धारण करना ठीक नहीं।

"जिन गाण्डीवधारी अर्जुन ने समर-भूमिमें बड़े बड़े वीरों को पराजित किया है, वे इस समय विराटराज के अन्तःपुर की कन्याओं को नाचना गाना सिखाते हैं। जिन्होंने अपने बल से खाण्डव प्रस्थ में अग्निदेव को परितुष्ट किया था, वे ही कृपगन

अग्नि की तरह विराट के अन्तपुर में छिप कर रहते हैं। शत्रु गण जिन की सूरत देखकर ही डर जाते थे, वे इस समय घृणित जनाना वेश बनाये दिन काट रहे हैं, वज्र के समान कठोर जिन की भुजाएँ धनुष की डोरी तानने के कारण कठिन हो गई थी, उन्ही भुजाओं में वे शङ्ख की चूडियाँ पहने हैं, इसकी अपेक्षा शोचनीय बात और क्या हो सकती है? शत्रु लोग जिन के धनुष की टङ्कार से भयभीत हो जाते थे, इस समय आनन्द से अन्तपुर की स्त्रियाँ उनके गाये हुए गीत सुनती हैं, जिनका मस्तक सूर्य के समान चमकीले मुकुट से ढका रहता था, वही मस्तक आज लम्बे-लम्बे बालों की वेणी से आच्छादित है। हे नाथ! धनञ्जय की वह विकृत वेणी और कन्याओं से घिरे हुए उन्हें देखकर, मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है! जो महात्मा सब विद्याएँ जानते हैं और जिन्हें भाँति भाँति के अस्त्र शस्त्र चलाने आते हैं, वे इस समय
वालियाँ पहने हैं। एक दिन मैंने अर्जुन का बड़ा ऐश्वर्य
और आज उन्हें दासत्व करते हुए देखती हूँ। भाग्य का
ंय देखकर मेरी दशों दिशाएँ शून्य हो जाती हैं। जिस
पराक्रमी धनञ्जय का जन्म हुआ था, उस समय आर्या कुन्ती
था कि, उनका भय शोक सन्ताप दूर हो गया, पर उन्हें
न मालूम था कि, उन पर ऐसी विपत्ति भी पड़ेगी। हा!

"हे महाभाग! मैं वीर सहदेव को गौओं के बीच गोपाल वेशमें घूमते हुए देख देखकर ही पीली पड गई हूँ। मैं सोने जाती
सहदेव के कष्टों की याद करके नींद नहीं आती।

मैंने उन्हें कभी ऐसा कोई पाप करते नहीं देखा, जिस के कारण उन्हें इतना दुःख मिलता। राजा विराट के क्रुद्ध होने पर जब वे लाल-लाल कपड़े पहने, चरवाहों के आगे आगे चलकर राजा को प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं, तो मेरा शरीर जर्जरित हो उठता है। आर्या कुन्ती मुझ से सहदेव की प्रशंसा किया करती थी। जब हम लोग वनवास को चलने लगे, तब उन्होंने मुझसे कहा था,—'वत्से! पाञ्चालि! सुकुमार सहदेव अतिशय सुशील हैं, वे अत्यन्त ही लज्जाशील और युधिष्ठिर के एकान्त अनुगत हैं। जङ्गल में सावधानी के साथ इन्हें रखना और इनके खाने पीने की स्वयम् सुध लेना, यह कहकर आर्या कुन्ती ने रोकर उनको गले लगा लिया था। हाय! उन्हीं सहदेव को आज मैं गौएँ चराते और रात को वत्सचर्म के एक टुकड़े पर सो रहते देखकर कैसे प्राण धारण कर सकती हूँ?

"समय की विपरीतता तो देखिये। जो परम सुन्दर, रूपवान् और बुद्धिमान् हैं, वे ही वीर नकुल आज घोड़ों के अस्तबल के निरीक्षक हैं। वे जिस समय विराटराज के सामने घोड़े फेरने लगते हैं, उस समय दर्शक लोग चारों ओर पागल हो उठते हैं। मैंने अपनी आँखों देखा है कि, श्रीमान नकुल इस तरह विराटराज को घोड़े दिखलाते हैं।

"इसी तरह के कितने दुःख गिनाऊँ? तुम सब के,
ऐसी दुःखों के समूह मेरा शरीर सुखाये देते हैं, इससे
की बात और क्या हो सकती है?

"हे स्वामिन्! द्यूत प्रिय राजा युधिष्ठिर के कारण ही मैं अन्तःपुर में सैरन्ध्री बनकर रहती हूँ और रानी सुदेष्णा की सेवा करती हूँ, देखिये तो मेरी कितनी दुर्दशा हो रही है। परन्तु यही सोचकर कि, मनुष्यों का कोई भी दुःख प्रायः चिरस्थायी नहीं; हानि-लाभ, जीवन मरण, जय-पराजय आदि सभी अनित्य हैं, सुख और दुःख भी चन्द्रमा की तरह घटा बढा करते हैं, जिस के द्वारा जीत होती है, कभी-कभी वही हार का प्रधान कारण हो उठता है, मैं अपने पतियों के भाग्योदय की प्रतीक्षा कर रही हूँ।

"हे महोदय, क्या आप नही जानते कि, मैं जीती हुई भी मरी के समान हूँ? सब बातें भाग्य ही से होती हैं और भाग्य को कोई टाल नहीं सकता, इसी से मैं भाग्य की प्रतीक्षा करने की बात कहती हूँ। भाग्य ही के कारण तो द्रुपदराज की पुत्री और पाण्डवों की रानी होकर भी आज मैं दुःख भोग रही हूँ। आप लोगों की जो बुरी दशा आज हो रही है, वह भाग्य-फल नहीं तो और क्या है? पहले कौन जानता था कि, स्वर्गकासा राज्य करने वाले पाण्डवो को भी इस पृथ्वी पर दुःख भोगना पडेगा?

"समय की गति बडी विचित्र है। पहले अगणित दासियाँ मेरे पीछे चलती थीं, पर आज मुझे सुदेष्णा की दासी होकर उनके पीछे पीछे चलना पडता है। एक दुःख तो मुझे बिल्कुल ही असह्य हो उठा है। वह यह है कि, आर्या कुन्ती को छोड मैने और किसी के लिये चन्दन नहीं घिसा था, पर आज राजा विराट रानी सुदेष्णा के लगाने के लिये मुझे चन्दन घिसना पडता

है। देखिये तो, मेरे हाथ अब वैसे कोमल नहीं रहे, चन्दन घिसते घिसते उनमें घट्टे पड गये हैं। आर्या कुन्ती और आप लोगों से मैं कभी नहीं डरी, पर अब राजा विराट के घर में दासी होकर रहने के कारण उनसे डरा करती हूँ। मुझे यह भय लगा रहता है कि, मेरा घिसा हुआ चन्दन राजा को रुचे या न रुचे, क्योंकि मुझे छोड और किसी का घिसा चन्दन उन्हें पसन्द ही नहीं आता।"

द्रुपदनन्दिनी इस तरह कहकर विलाप करने लगीं। फिर उन्होंने कहा —

"जान पडता है, पूर्व जन्म में मैंने कोई घोरतर पाप किया है, नहीं तो, आज दासी और परतन्त्र होकर मुझे क्यों जीवन व्यतीत करना पडता?"

द्रौपदी का सूखा हुआ चेहरा और उनके हाथों के [illegible] पराक्रमी भीमसेन भी रो उठे। उन्होंने कहा :—

"हे प्रिये! जब तुम्हारे मुलायम [illegible] काम करने के कारण घट्टे पड गये, तो हमारे [illegible] के गाण्डीव धनुष को बारबार धिक्कार है। [illegible] की प्रतिज्ञा करते हैं। उन्हीं के [illegible] सब सभासदों के सामने ही [illegible] देने। कौरव सभा में जिन [illegible] रे अभी तक जीते हैं, यह बात [illegible] सुना करती है [illegible]

छोडना, तुम्हारे तिरस्कार-वाक्य सुनकर राजा युधिष्ठिर अवश्य ही प्राण छोड देंगे। उनके प्राण त्याग करने पर अर्जुन, नकुल और सहदेव कभी नहीं जी सकते। इन लोगों के न रहने पर हमारा जीवन धारण करना भी असम्भव है।

"पूर्वकाल में भृगुवशीय राजा च्यवन ने इतनी तपस्या की थी कि, उनके शरीर की वेंवौर (बामी) वन गई थी। उस समय तक भी उनकी पत्नी सुकन्या ने उनका साथ नहीं छोडा। भुवनविख्यात रूपवती चन्द्रसेना ने अपने बूढे पति का साथ न छोडा। जनकराज-दुहिता सीता स्वामी के साथ वन जाने के कारण ही रावण द्वारा हरी गई और लङ्का में रहकर उन्होंने नाना प्रकार के दु ख भोगे, पर उन्होंने पतिके चरणों का आश्रय नहीं छोडा और उनके साथ वन में जाने की वात को अपना गौरव माना। रूपयौवन सम्पन्ना लोपामुद्रादेवी ने अलौकिक ऐश्वर्यों को त्याग कर अपने पति अगस्त्य के पीछे पीछे रहने ही में सुख माना। मनस्विनी सावित्री तो पति के पीछे-पीछे यमलोक तक गई। हे कल्याणि! तुम भी इन पतिव्रताओं के समान ही सर्वगुण सम्पन्ना और सुलक्षणा हो। अज्ञातवास के केवल पन्द्रह दिन शेष हैं, धीरज धरो। वनवास और अज्ञातवास के दिन पूरे हो जाने पर तुम फिर राजरानी वनोगी।"

द्रौपदी ने कहा —

"हे नाथ! मैं राजा युधिष्ठिर का तिरस्कार नहीं करती। दु खों को सहते सहते ऊब उठी हूँ, इसीसे मेरी आँखों से

आँसू निकल रहे हैं। कीचक बड़ा नीच और पापी है। वह मेरी घात में है, उसका नाश करना आप ही के मान की बात है। जिस तरह सदैव आपने मेरे अनुरोध की रक्षा की है, उसी तरह इस बार भी लाज रखिये। यदि कीचक न मारा गया, तो मैं जहर खाकर मर जाऊँगी।"

भीमसेन ने कहा —

"प्रिये! घबराओ नहीं। तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी होगी। हम कल कीचक को अवश्य मारेंगे।"

यह कह और कुछ गुप्त बातें बताकर भीमसेन ने द्रौपदी को विदा किया।

पच्चीसवाँ परिच्छेद।

कीचक और उसके भाइयों का विनाश।

द्रौपदी को विदा करते समय भीमसेन ने उसे समझा दिया कि, राजा विराट ने एक नृत्यशाला बनवाई है। वहाँ पर कन्याएँ दिन को नृत्यगान की शिक्षा पाकर, रात को अपने-अपने घर चली जाती हैं। रात को वह नाच-घर सूना रहता है। कीचक को धोखा देकर कल रात्रि को वहीं बुलाओ, पर इस बात की किसी दूसरे को कानोंकान खबर न हो। हम वहाँ पहले ही से जाकर छिप रहेंगे। वहाँ पहुँच कर कीचक ज्योंही तुम से बातचीत करेगा, हम उसे यमधाम पहुँचा देंगे और सारा बखेड़ा मिट जायगा।

द्रौपदी इस बात पर राजी हो गई और लौट कर अन्त पुर में सो रही।

प्रात काल होते ही दूसरे दिन कीचक ने द्रौपदी से कहा —

"हे सुन्दरी! कल राजा के सामने ही हमने तुम्हें लात मारी, पर राजा ने क्या किया? विराट तो यहाँ पर नाम मात्र के राजा हैं। वास्तव में राज्यसत्ता तो हमारी ही है। तुम हमारी प्रणयिनी रहो, तो कभी तुम्हें किसी प्रकार का दु ख न होगा और

जब तक जीवन रहेगा तब तक हम तुम्हारे दास रहेंगे! हम अभी तुम को बहुतसी मुहरें और अमूल्य वस्तुएँ उपहार में देंगे।"

द्रौपदी ने कहा —

"हे कीचक! हम तुम्हारी बात मानने के लिये राजी हैं, परन्तु तुम्हारे भाई या और कोई इस बात को न जाने, क्योंकि किसी के जान जाने से उन यशस्वी गन्धर्वों की अपकीर्ति होने का डर है। यदि छिप कर तुम चाहो, तो हम तुम से मिल सकेंगी, जिस से गन्धर्वों को इस बात का पता न लगे।"

कीचक ने कहा —

"सुन्दरी! तुम जो कुछ कहो, उसे करने के लिये हम तैयार हैं। जहाँ तुम बताओ, अकेले में हम तुम से मिलें। इसकी किसी को खबर न होगी।"

द्रौपदी ने कहा —

"विराटराज ने जो नृत्यशाला बनवाई है, वह रात को सूनी रहती है। भली भाँति अँधेरा हो जाने पर, आज सन्ध्या के बाद, तुम वहीं मौजूद रहो।"

नीच कीचक इस बात पर राजी हो गया। उसे यह खबर भी न हुई कि, स्त्रियों की इस तरह की बातें उसकी मृत्यु की निशानी हैं। उसकी बातों पर उसने विश्वास कर लिया।

इधर द्रौपदी ने इन सब बातों की सूचना भीमसेन को दे दी। वे भी तैयार हो रहे।

सन्ध्या हो आने [illegible] मान पर जा

भीमसेन पहले ही से वहाँ छिपे हुए थे, उन्हें ही सैरिन्ध्री समझ उनका आलिङ्गन करके वह कहने लगा —

"सुन्दरी! तुम्हारे लिये हमने बहुत से बहुमूल्य उपहार भेजे हैं। हमारे अन्त पुर की नारियाँ हम से कहा करती हैं कि, उन्होंने हमारी तरह सुन्दर आदमी ससार में कहीं नहीं देखा।"

तब भीमसेन बोले —

"ठीक है! सचमुच तुम से सुन्दर पुरुष तुम्हारे घर की स्त्रियों ने न देखा होगा। तुमने भी ऐसे स्पर्श-सुखका अनुभव कभी न किया होगा। आहा! तुम्हारी सुन्दरता का क्या कहना?"

यह कहकर भीमसेन ने कहा —

"अरे दुष्ट! तेरी बहिन के सामने ही हम तुझे यमलोक पहुँचायेंगे, जिस से सैरिन्ध्री को कष्ट देने वाला न रह जाय।"

तब दोनों में खूब गुत्थमगुत्था होने लगा। दोनों बड़े पराक्रमी थे, पर अन्त में भीमसेन के सामने उसकी एक भी न चली। उन्होंने उसे गिरा कर अधमरा कर दिया। इसके बाद वहीं पर थोड़ीसी आग जलाकर द्रौपदी को उसकी दशा दिखलाई और फिर कीचक के लात मार कर उस पतिव्रता के अपमान का पूरा बदला ले लिया। इसके पश्चात् उसका सिर, हाथ और पैर मरोड कर उसी के पेट में घुसेड दिये और इस प्रकार उसके शरीर के मास की एक गठरीसी बनाकर वहीं फेंक दी।

यह सब कुछ करके अपने पीछे-ही पीछे वहाँ से चली आने के ~~ द्रौपदी से कहकर, भीमसेन बाहर निकल आये।

द्रौपदी जब बाहर निकली,तो पास के लोगों से उसने कहा –

"कीचक ने मुझ पर बलात्कार करने की इच्छा की थी, इससे मेरे गन्धर्व पतियों ने उसे मार डाला है।"

लोगों ने जाकर नाच-घर के भीतर कीचक की बिगडी हुई लाश देखी और राजा विराट को उसकी खबर दी।

कीचक के १०५ भाई थे। वे लोग इस सम्वाद को सुनते ही घटनास्थल पर पहुँचे। पास ही खम्भे में हाथ लपेटे हुए सैरिन्ध्री भी वहीं पर उन्हें देख पडी। तब उन्होंने कहा –

"इसी स्त्री के कारण हमारे भाई की जान गई है। मरते समय इसी से मिलने की उनको अभिलाषा थी। मरे हुए मनुष्य की प्रिय बात लोग उसके मर जाने पर भी करते हैं, इससे आओ, कीचक की आत्मा की शान्ति के लिये, इसे भी कीचक के साथ चिता पर जला दें।"

इस अमानुषी कार्य के लिये उन्होंने राजा विराट से आज्ञा भी प्राप्त करली और सैरिन्ध्री को बाँधकर वे लोग श्मशान की ओर ले चले।

तब द्रौपदी चिल्ला चिल्लाकर कहने लगी —

"कीचक के भाई बन्धु मुझे श्मशान लिये जा रहे हैं, अब गन्धर्व लोग मेरी रक्षा करें।"

द्रौपदी का यह चिल्लाना भीमसेन ने सुन लिया। उन्होंने वेश बदल डाला और दीवार फाँद कर बाहर [illegible] आये। वे सीधे श्मशान की ओर दौडे। वहाँ पहुँचते [illegible] वृक्ष उखाड लिया और कीचक के भाइयों [illegible]

द्रौपदी जब बाहर निकली,तो पास के लोगों से उसने कहा —

"कीचक ने मुझ पर बलात्कार करने की इच्छा की थी, इससे मेरे गन्धर्व पतियों ने उसे मार डाला है।"

लोगों ने जाकर नाच-घर के भीतर कीचक की बिगडी हुई लाश देखी और राजा विराट को उसकी खबर दी।

कीचक के १०५ भाई थे। वे लोग इस सम्वाद को सुनते ही घटनास्थल पर पहुँचे। पास ही खम्भे में हाथ लपेटे हुए सैरन्ध्री भी वहीं पर उन्हें देख पडी। तब उन्होंने कहा —

"इसी स्त्री के कारण हमारे भाई की जान गई है। मरते समय इसी से मिलने की उनको अभिलाषा थी। मरे हुए मनुष्य की प्रिय बात लोग उसके मर जाने पर भी करते हैं, इसलिये आओ, कीचक की आत्मा की शान्ति के लिये, इसे भी कीचक के साथ चिता पर जला दें।"

इस अमानुषी कार्य के लिये उन्होंने राजा विराट से आज्ञा भी प्राप्त कर ली और सैरन्ध्री को बाँधकर वे लोग श्मशान को ओर ले चले।

तब द्रौपदी चिल्ला चिल्लाकर कहने लगी —

"कीचक के भाई बन्धु मुझे श्मशान लिये जा रहे हैं, अब गन्धर्व लोग मेरी रक्षा करें।"

द्रौपदी का यह चिल्लाना भीमसेन ने सुन लिया। उन्होंने वेश बदल डाला और दीवार फाँद कर बाहर निकल आये। वे सीधे श्मशान की ओर दौडे। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने एक वृक्ष लिया और कीचक के भाइयों पर झपटे।



कीचक के भाइयों का द्रौपदी पर आक्रमण।

"वे सैरिन्ध्री को बाँध कर श्मशान की ओर ले चले।" (पृष्ठ २२१)

द्रौपदी



भीमसेन द्वारा कीचक के भाइयों का विनाश।

कीचक के भाइयों ने समझा कि, सचमुच गन्धर्व आ गये और डरकर उन्होंने भागने का विचार किया, पर भीमसेन ने उन्हें घेर लिया और एक एक करके सबको यमधाम भेजने लगे। इस तरह पर उन्होंने कीचक के १०५ भाइयों को मार डाला।

इसके बाद उन्होंने द्रौपदी का बन्धन खोल दिया और कहा –

"हे प्रिये! अब तुम राजमहलों को लौट जाओ। हम भी दूसरे मार्गसे पहुँच जायँगे। तुम्हारे साथ जो कोई दुष्ट बुरा बरताव करेगा, उसकी यही दशा होगी।"

यह कहकर कीचक की चिता में आग लगा कर दूसरे मार्ग से वे राजमहलों को लौट आये और सो रहे।

सैरिन्ध्री भी राजमहलों को लौट आई।

यह उत्पात और उपद्रव देखकर और गन्धर्वों के भय से भयभीत होकर, राजा विराट ने अपनी रानी सुदेष्णा से दूसरे दिन कहा —

"प्रिये! तुम्हारी सैरिन्ध्री बडी रूपवती है और पाँच गन्धर्व उसके वश में हैं। उसका अब राजमहलों में रहना ठीक नहीं है। आगे न जाने क्या अनर्थ उठ खडा हो। इससे उसे विदा कर दो।"

अपने पति की आज्ञा पाकर रानी सुदेष्णा ने सैरिन्ध्री से कहा —

"सुभगे! राजा अब तुम्हारे राजमहलों में रहने से शङ्कित रहते हैं। उन्हें तुम्हारे गन्धर्वों का डर है। इससे अब तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, वहाँ चली जाओ।"

सैरिन्ध्री ने उत्तर दिया —

रानी! तेरह दिन मुझे यहाँ और रहने दो। इसके बाद मेरे गन्धर्वपति अपने दुःख से छुटकारा पा जायेंगे और मुझे आकर ले जायेंगे। ऐसा करने से आप का, राजा का और उनके बान्धवों का अवश्य ही कल्याण होगा। इसमें सन्देह नहीं।"

रानी और राजा गन्धर्वों से इतना डरे हुए थे कि, उन्हें कुछ कहने का साहस न हुआ। उन्होंने चुपके से सैरिन्ध्री की बात मान ली। उन्हें भय लगा कि, कहीं सैरिन्ध्री को निकाल देने से भी वे गन्धर्व रुष्ट न हो जायँ और कोई उत्पात न खड़ा कर दें।

यह खबर बहुत शीघ्र इधर-उधर फैलने लगी कि, कीचक और उसके भाईयों को गन्धर्वों ने मार डाला।



राजा विराट ने इस बात को स्वीकार कर लिया और उत्तरा के विवाह की तैयारियाँ धूमधाम के साथ होने लगीं। राजा विराट ने अपने सम्बन्धियों और इष्ट मित्रों को निमन्त्रण भेजा और राजा युधिष्ठिर ने भी यादवों और पाञ्चाल लोगों तथा अन्य सम्बन्धियों एवं इष्ट मित्रों को बुलाया।

यदुश्रेष्ठ बलराम और कृष्ण अभिमन्यु को लेकर धूमधाम से अन्य यदुवंशियों समेत पधारे। कई दिनों तक बड़ा उत्सव रहा और अभिमन्यु के साथ उत्तरा का विवाह आनन्दपूर्वक हो गया।

इधर यह खबर भी जोरों से फैलने लगी कि, पाण्डव लोगों ने अज्ञातवास का एक वर्ष भी पूरा कर दिया और वे राजा विराट के यहाँ हैं।

राजा द्रुपद, राजा विराट, बलराम, श्रीकृष्ण, धृष्टद्युम्न, सात्यकि और पाँचों पाण्डव दूसरे दिन यह सलाह करने के लिये बैठे कि, पाण्डवों को अब क्या करना चाहिये। अन्त में, वाद विवाद के बाद, यह निश्चित हुआ कि, राजा धृतराष्ट्र के पास एक दूत भेजा जाय, जो उनसे जाकर निवेदन करे कि, पाण्डव लोग वनवास और अज्ञातवास के दिन बिता चुके और अब वे अपना राज्य पाने के अधिकारी हैं। इधर अन्य राजाओं के पास भी युद्ध में सहायता देने के लिये प्रार्थना की जाय, क्योंकि दुर्योधन से यह आशा नहीं कि, बिना युद्ध किये वह मान जाये, बल्कि, वह युद्ध की तैयारी भी कर रहा होगा। इसके बाद राजा युधिष्ठिर उपप्लव्य नगर को चले आये।

छब्बीसवाँ परिच्छेद ।

सन्धि की चर्चा पर कृष्ण और द्रौपदी ।

अज्ञातवास का समय पूरा हो जाने पर पाण्डवों ने अपना परिचय दिया। राजा विराट ने उनसे कहा —

"हम से जो कुछ अपराध हुआ हो, आप क्षमा करें।"

पाण्डवों ने कहा —

"जैसे बालक एक वर्ष तक माता के गर्भ में रक्षा पाता है, उसी तरह हम लोगों ने आप के पास अज्ञातवास का समय बिताया है। हम आप के बहुत कृतज्ञ हैं।"

तब राजा विराट बोले —

"महापराक्रमी अर्जुन के साथ हम अपनी राजकुमारी उत्तरा का विवाह कर देना चाहते हैं।"

अर्जुन ने कहा —

"हम एक वर्ष तक अन्तःपुर में राजकुमारी के गुरु होकर रहे हैं। इससे उसके साथ हमारा विवाह सम्बन्ध होना किसी भाँति भी उचित नहीं। यदि आप की इच्छा हो, तो सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए हमारे पुत्र अभिमन्यु के साथ आप राजकुमारी का ब्याह कर दें। पाण्डवों और मत्स्यों में विवाह सम्बन्ध होने से उनका मैत्री भाव उत्तरोत्तर दृढ़ होता रहेगा।"

राजा विराट ने इस बात को स्वीकार कर लिया और उत्तरा के विवाह की तैयारियाँ धूमधाम के साथ होने लगी। राजा विराट ने अपने सम्बन्धियों और इष्ट मित्रों को निमन्त्रण भेजा और राजा युधिष्ठिर ने भी यादवों और पाञ्चाल लोगों तथा अन्य सम्बन्धियों एवं इष्ट मित्रों को बुलाया।

यदुश्रेष्ठ बलराम और कृष्ण अभिमन्यु को लेकर धूमधाम से अन्य यदुवंशियों समेत पधारे। कई दिनों तक बड़ा उत्सव रहा और अभिमन्यु के साथ उत्तरा का विवाह आनन्दपूर्वक हो गया।

इधर यह खबर भी जोरों से फैलने लगी कि, पाण्डव लोगों ने अज्ञातवास का एक वर्ष भी पूरा कर दिया और वे राजा विराट के यहाँ हैं।

राजा द्रुपद, राजा विराट, बलराम, श्रीकृष्ण, धृष्टद्युम्न, सात्यकि और पाँचों पाण्डव दूसरे दिन यह सलाह करने के लिये बैठे कि, पाण्डवों को अब क्या करना चाहिये। अन्त में, वाद विवाद के बाद, यह निश्चित हुआ कि, राजा धृतराष्ट्र के पास एक दूत भेजा जाय, जो उनसे जाकर निवेदन करे कि, पाण्डव लोग वनवास और अज्ञातवास के दिन बिता चुके और अब वे अपना राज्य पाने के अधिकारी हैं। इधर अन्य राजाओं के पास भी युद्ध में सहायता देने के लिये प्रार्थना की जाय, क्योंकि दुर्योधन से यह आशा नहीं कि, बिना युद्ध किये वह मान जाये, बल्कि, वह युद्ध की तैयारी भी कर रहा होगा। इसके बाद राजा युधिष्ठिर उपप्लव्य नगर को चले आये।

छब्बीसवाँ परिच्छेद ।

सन्धि की चर्चा पर कृष्ण और द्रौपदी ।

अज्ञातवास का समय पूरा हो जाने पर पाण्डवों ने अपना परिचय दिया। राजा विराट ने उनसे कहा —

"हम से जो कुछ अपराध हुआ हो, आप क्षमा करें।"

पाण्डवों ने कहा —

"जैसे बालक एक वर्ष तक माता के गर्भ में रक्षा पाता है, उसी तरह हम लोगों ने आप के पास अज्ञातवास का समय विताया है। हम आप के बहुत कृतज्ञ हैं।"

तब राजा विराट बोले —

"महापराक्रमी अर्जुन के साथ हम अपनी राजकुमारी उत्तरा का विवाह कर देना चाहते हैं।"

अर्जुन ने कहा —

"हम एक वर्ष तक अन्त पुर में राजकुमारी के गुरु होकर रहे हैं। इससे उसके साथ हमारा विवाह सम्बन्ध होना किसी भाँति भी उचित नही। यदि आप की इच्छा हो, तो सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए हमारे पुत्र अभिमन्यु के साथ आप राजकुमारी का व्याह कर दें। पाण्डवो और मत्स्यों में विवाह सम्बन्ध होने से उनका मैत्री भाव उत्तरोत्तर दृढ होता रहेगा।"

राजा विराट ने इस बात को स्वीकार कर लिया और उत्तरा के विवाह की तैयारियाँ धूमधाम के साथ होने लगीं। राजा विराट ने अपने सम्बन्धियों और इष्ट मित्रों को निमन्त्रण भेजा और राजा युधिष्ठिर ने भी यादवों और पाञ्चाल लोगों तथा अन्य सम्बन्धियों एव इष्ट मित्रों को बुलाया।

यदुश्रेष्ठ बलराम और कृष्ण अभिमन्यु को लेकर धूमधाम से अन्य यदुवशियों समेत पधारे। कई दिनों तक बडा उत्सव रहा और अभिमन्यु के साथ उत्तरा का विवाह आनन्दपूर्वक हो गया।

इधर यह खबर भी जोरों से फैलने लगी कि, पाण्डव लोगों ने अज्ञातवास का एक वर्ष भी पूरा कर दिया और वे राजा विराट के यहाँ हैं।

राजा द्रुपद, राजा विराट, बलराम, श्रीकृष्ण, धृष्टद्युम्न, सात्यकि और पाँचों पाण्डव दूसरे दिन यह सलाह करने के लिये बैठे कि, पाण्डवों को अब क्या करना चाहिये। अन्त में, वाद विवाद के बाद, यह निश्चित हुआ कि, राजा धृतराष्ट्र के पास एक दूत भेजा जाय, जो उनसे जाकर निवेदन करे कि, पाण्डव लोग वनवास और अज्ञातवास के दिन बिता चुके और अब वे अपना राज्य पाने के अधिकारी हैं। इधर अन्य राजाओं के पास भी युद्ध मे सहायता देने के लिये प्रार्थना की जाय, क्योंकि दुर्योधन से यह आशा नहीं कि, बिना युद्ध किये वह मान जाये, बल्कि, वह युद्ध की तैयारी भी कर रहा होगा। इसके बाद राजा युधिष्ठिर ~ नगर को चले आये।

इस मन्त्रणा की खबर जासूसों द्वारा दुर्योधन को भी लग गई और उसने भी युद्ध में सहायता देने के लिये राजाओं से प्रार्थना करने के लिये दूत भेज दिये

राजा द्रुपद का भेजा हुआ दूत राजा धृतराष्ट्र के पास गया। हस्तिनापुर से सञ्जय युधिष्ठिर के पास आये। युधिष्ठिर पाँच गाँव लेकर भी सन्धि करने के लिये राजी हो गये, पर कोई बात साफ न हुई।

तब राजा युधिष्ठिर ने कृष्ण से कहा —

"भगवन्! लड़ाई-झगड़ा बचाने के लिये हमने पाँच गाँव लेकर भी सन्धि करनी चाही, पर इसकी भी आशा नहीं। अब हमें क्या करना चाहिये?"

कृष्ण थोड़ी देर तक तो सोचते रहे। फिर वे बोले —

"हे धर्मराज! हमारी इच्छा है कि, युद्ध होने के पहले एक बार हम स्वयम् हस्तिनापुर जायें और इस बात की चेष्टा करें कि, आपस में किसी तरह समझौता हो जाये और बन्धु-विरोध से कुरुकुल का सत्यानाश न हो।"

युधिष्ठिर ने कहा —

"माधव! आप का हस्तिनापुर जाना ठीक नहीं। राज्य के मोह से कौरवों की बुद्धि मारी गयी है और दुर्योधन बड़ा उद्दण्ड है। यदि वहाँ पर तनिक भी आप का अपमान हुआ, तो हमारा यह दुःख कभी न मिटेगा।"

कृष्ण ने कहा —

"आप हमारे लिये चिन्ता न कीजिये। यदि कौरव मोहवश हमारा अपमान करने की चेष्टा करेंगे, तो उनको दण्ड देने की हम में काफी शक्ति है।"

भीमसेन बोले —

"दुर्योधन कुलाङ्गार है, वह कुरुकुल के नाश ही के लिये उत्पन्न हुआ है। फिर भी, यदि वह शान्त किया जा सके तो भला है। धर्मराज तो नम्रता से सदैव ही काम लेते हैं, अर्जुन भी इस वश-नाशक युद्ध को अच्छा न समझेंगे और हमारी भी राय है कि, यदि हमें नम्र होने की जरूरत हो तो भरतकुल की रक्षा के लिये हमें नम्रता धारण करनी चाहिये।"

भीमसेन के मुँह से इस तरह नम्रता की बातें सुनकर कृष्ण को बडा आश्चर्य हुआ, क्योंकि भीम बड़े उग्रस्वभाव और युद्धप्रिय थे। तब कृष्ण ने कहा —

"भीमसेन! क्या दुर्योधन ने द्रौपदी का जो अपमान किया है, उसे तुम भूल गये और क्या तुमने वन चलने के समय जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, उन्हें भी भूल गये? क्या समझकर तुम नम्रता दिखाने की सलाह दे रहे हो? दुर्योधन की अधिक सेना देखकर तुम्हें मोह तो नहीं हो आया?"

भीमसेन ने समझ लिया कि, कृष्ण उनकी चुटकी ले रहे और उन्हें इशारे से कायर बना रहे हैं। तब उन्होंने कहा —

"हे कृष्ण! इतने दिनों से आप हमें जानते हैं, पर जान पडता है कि, आपने हमारे स्वभाव को अच्छी तरह नहीं जाना।

छोडकर और कोई ऐसी बात कहता तो हम उसे बतला देते कि हम में क्या शक्ति है, पर आप से क्या कहें ? हम आत्मश्लाघा नहीं करते, पर हमारा वंश संसार में बहुत प्रसिद्ध है। वह ध्वंस न हो जाय, इसी ममता से हम अपने क्लेश और अपने दुःख भूलकर शान्ति स्थापन की इच्छा रखते हैं।"

तब कृष्ण भीमसेन को शान्त करते हुए कहने लगे —

"सम्भव है कि, हमारी शान्ति-चेष्टा व्यर्थ जाय और कौरवों से युद्ध ही करना पडे। युद्ध में हम को तुम्हारे ही पराक्रम पर पूरा पूरा भरोसा रखना पड़ेगा, इससे तुम्हारी नम्रता को देखकर हमने तुम्हारे तेज को प्रज्वलित करना ही अच्छा समझा।"

अर्जुन ने कहा —

"आप की बातों से तो यही झलक पाई जाती है कि, शान्ति होना एक प्रकार से असम्भव है। पर हमारा विचार है कि, ऐसी कोई बात ही नहीं, जो आप के चेष्टा करने से न हो सके, इसीसे सन्धि को भी हम असम्भव नहीं समझते। कौरव और पाण्डव दोनों आप के मित्र हैं और इस समय सारा संसार आप को मान्य समझता है, इससे पहले ही से इस तरह का सिद्धान्त मन में स्थापित कर लेना कि, सन्धि न हो सकेगी, ठीक नहीं। आप को दोनों पक्षों को बराबर समझना और दोनों की मङ्गल-कामना करके सन्धि की चेष्टा करनी चाहिये।"

कृष्ण ने कहा —

'हे धनञ्जय ! तुमने यथार्थ बात कही है। हम दोनों पक्षों को बराबर समझकर दोनों की हितचिन्तना करेंगे।"

नकुल ने कहा —

"यदि शान्ति स्थापन करने में पहले सफलता न हो, तो डर दिखाकर भी अपना काम निकाल लेना चाहिये, पर शान्त हो जाना ही भला है।"

तब सहदेव कहने लगे —

"हे केशव ! हमारे बड़े भाई भले ही शान्ति के नाम पर चुप रहें, पर द्रौपदी के अपमान की बात हम नहीं भूल सकते। जब तक दुर्योधन के रक्त से यह पृथ्वी रञ्जित न होगी, तब तक हमारे हृदय का सन्ताप किसी भाँति भी दूर नहीं हो सकता।"

सहदेव की बात का समर्थन करते हुए, सात्यकि ने कहा —

"हे पुरुषोत्तम ! वीर सहदेव ने बहुत ही ठीक कहा है। कौरवों ने जो अपमान पाण्डवों का किया है, युद्ध करके और उन्हें नीचा दिखाकर ही उसका ठीक ठीक बदला लिया जा सकता है। बिना दुर्योधन को मारे, उन बातों का प्रकृत परिशोध नहीं हो सकता।"

पतिपरायणा द्रौपदी वहाँ पर बैठी हुई ये सब बातें सुन रही थी। राजा युधिष्ठिर के नम्र स्वभाव को वह पहले ही से जानती थी, पर भीमसेन, अर्जुन और नकुल के मुँह से भी नम्रता की बातें सुनकर उसका रहा सहा धीरज जाता रहा, वह जीती हुई भी मुर्दा बन बैठी। वह मन ही मन कौरव सभा में अपने अपमान की याद करके कुढ़ने लगी। परन्तु पराक्रमी सहदेव और

बातें सुनकर उसे फिर कुछ ढाढस हुआ। उस समय वह चुप न रह सकी। रोती हुई वह कृष्ण से कहने लगी —

"हे मधुसूदन! धृतराष्ट्र के पुत्रों ने जिस तरह पाण्डवों को सुख-विहीन कर दिया है, वह बात आप से छिपी नहीं। धर्मराज युधिष्ठिर पाँच गाँव लेकर भी सन्धि के लिये तैयार थे और सञ्जय के द्वारा उन्होंने महाराज धृतराष्ट्र के पास यह सन्देशा भी भेजा था, पर कौरव उस पर भी सहमत न हुए और दुर्योधन इस प्रस्ताव पर राज़ी न हुआ, इसकी भी खबर आप को लग गयी होगी।

"कुछ भी हो, यदि अब भी आप शान्ति और सन्धि हो जाने की इच्छा से हस्तिनापुर जाना चाहते हैं तो जाइये, पर इस बात को ध्यान में रखियेगा कि, बिना पाण्डवों का पूरा राज्य वापस लिये, किसी दूसरी शर्त्त पर सन्धि करना ठीक नहीं। पाण्डव और सञ्जयगण मिलकर अनायास ही कौरवों की सेना को हरा सकते हैं, इससे युद्ध से डरने की कोई बात नहीं। समझाने बुझाने से कौरव लोग कभी मानने वाले नहीं, इससे उन पर दया दिखना बेकार है। जब शत्रु समझाने बुझाने से न माने, तो उसे दण्ड देना ही उचित है, यही नीतिज्ञों का मत है। क्षत्रियों का यही धर्म है कि, ब्राह्मण को छोड इतर जाति के शत्रुओं को अपने पराक्रम द्वारा नष्ट ही कर दे।"

"हे जनार्दन! धर्मविद् पण्डित लोगों ने कहा है कि, जिस

१० अवध्य व्यक्ति का वध करने में पाप है, उसी तरह वध्य व्यक्ति छोड देने में भी पाप है। फिर आप ऐसी युक्ति क्यों नहीं करते

कि, व य कौरव मारे जायें और पाण्डव तथा सञ्जयगण उन्हें छोडकर व्यर्थ पाप के भागी न बनें ?

"हे माधव ! इस भूमण्डल पर मुझ सरीखी अभागिनी स्त्री कौन है ? मैं राजा द्रुपद की कन्या, धृष्टद्युम्न की बहिन, महाराज पाण्डु की पतोहू, पराक्रमी पाण्डवों की सहधर्मिणी और तुम्हारी प्रिय सखी हूँ। पाँच पतियों के औरस से मेरे गर्भ से पाँच महारथी पुत्रों ने जन्म लिया है, अभिमन्यु के समान तुम उनको प्यार करते हो। इतनी भाग्यशालिनी होकर भी, तुम्हारे, पाण्डवों और पाञ्चाल लोगों के जीते हुए भी, कुरु सभा में अपने बालों के खींचे जाने का दु ख मुझे सहना पडा। उस समय जब मैंने देखा कि, मेरे पति मेरी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते, तो मैंने आप का स्मरण किया। आपने मेरी लाज रख ली।

"हे जनार्दन ! मेरे उन दु खों की बात आप भली भाँति जानते हैं। अब आप मेरी रक्षा कीजिये। मेरा इतना अपमान करके भी दुष्ट दुर्योधन आज तक जीवित है, इससे भीमसेन के पराक्रम और अर्जुन के गाण्डीव धनुष को धिक्कार है। अब आप ही का मुझे सहारा है। यदि आप मुझ पर कृपा करते हैं, तो धृतराष्ट्र के पुत्रों पर क्रोध करके उनके बुरे कर्मों का उन्हें फल दीजिये।"

यह कहकर कमललोचना द्रुपदनन्दनी रोने लगी। अपने काले काले बालों को हाथ में लेकर दीनता के साथ उन्होंने कृष्ण से कहा —

"हे जनार्दन ! ने मेरे इन्हीं

र खींचा था। जब शत्रुओं से सन्धि की वातचीत होने लगे, तब पुण्डरीकाक्ष! मेरे इन बालों को बात याद रखियेगा।

"भीम और अर्जुन नम्रता दिखाकर यदि सन्धि की बात छेडते तोभी कोई हर्ज नहीं। मेरे वृद्ध पिता अपने महारथी पुत्रों को थ लेकर सग्राम करेंगे। मेरे पाँचों पुत्र अभिमन्यु को आगे के कौरवों से लडेंगे और उनका नाश करेंगे। जब तक दुरात्मा शासन की साँवली भुजा पृथ्वी पर गिर धूल में न लोटने लगे, तक मुझे शान्ति कहाँ? तेरह बरस से मेरे हृदय में बदला की आग जल रही है, वह विना बदला लिये कैसे बुझ सकती ' बहुत दिनों से मैं समुचित समय आने की प्रतीक्षा कर रही , पर दुखों की शान्ति का अब भी कोई उपाय नहीं देखती। ज धर्मपरायण भीमसेन की बातें सुनकर तो मेरी छाती और फट गयी है।"

यह कह द्रौपदी और भी रोने लगी। गरम-गरम आँसुओं से की छाती भीग गयी। यह दशा देखकर और उसे अत्यन्त कुल जानकर कृष्ण ने कहा —

'हे कृष्णे! तुम थोडे ही दिनों में देखोगी कि, कौरव महिएँ रो रही हैं। तुम जिस तरह रो रही हो, अपने अपने पतियों र पुत्रों का मरना सुन सुनकर वे इससे भी अधिक रोयेंगी। पाण्डवों के साथ होकर शीघ्र ही कौरवों के नाश में दत्तचित्त

यदि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने मेरी बात न मानी

और सियार

द्रौपदी



बालों की बात।

"जब शत्रुओं से सन्धि की बात चीत होने लगे, तब हे पुण्डरीकाक्ष! मेरे इन बालों की बात याद रखियेगा।" (पृष्ठ [illegible]

चाहे हिमालय अपना स्थान छोड दे, चाहे पृथ्वी उलट पुलट हो जाये, चाहे नक्षत्रों के साथ आकाशमण्डल टूटकर गिर पडे, चाहे इससे भी अधिक असम्भव बात सम्भव हो-जाये, पर मैंने जो कुछ कहा है, वह कभी मिथ्या नहीं हो सकता। हे कृष्णे! रोना बन्द करो, हम तुम से सच कहते हैं कि, तुम्हारे पति शीघ्र ही अपना राज्य पायेंगे और तुम राजरानी बनोगी।"

कृष्ण के इस प्रकार धीरज दिलाने से द्रौपदी को कुछ शान्ति मिली। तब अर्जुन ने कहा —

"हे कृष्ण! आप कौरवों की कल्याणकामना से सन्धि का प्रस्ताव लेकर जा रहे हैं, यह बहुत भली बात है। आप चाहेंगे, तो अवश्य सन्धि हो जायगी। यदि आप का कहना भी दुष्ट दुर्योधन ने न माना, तो जो कुछ उसके भाग्य में बदा होगा वही होगा।"

कृष्ण ने कहा —

"हे धनञ्जय! प्राणिमात्र का हित करना ही हमारा धर्म है। इससे हम शीघ्र ही राजा धृतराष्ट्र के पास जायेंगे।"

दूसरे दिन प्रातःकाल सुन्दर रथ पर सवार होकर और सात्यकि को साथ ले, कृष्ण हस्तिनापुर को रवाना हो गये।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद ।

द्रौपदी के पुत्रों का विनाश और अश्वत्थामा पर उसका क्रोध ।

श्री कृष्ण हस्तिनापुर गये। उन्होंने सन्धि की बड़ी चेष्टा की, पर फल कुछ न हुआ। दुर्योधन ने कहा, 'हम पाण्डवों को उतनी भूमि भी न देंगे, जितनी सुई की नोक से छिद सकती है।" तब श्रीकृष्ण ने कर्ण के द्वारा यह सन्देशा कहला भेजा कि, अब युद्ध अवश्यम्भावी है, कौरवों को युद्ध के लिये तैयार रहना चाहिये।

फिर क्या था, कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध का श्रीगणेश हो गया। ग्यारह अक्षौहिणी सेना कौरवों की तरफ थी और सात अक्षौहिणी पाण्डवों की ओर। कौरवों के सेनापति बने महात्मा भीष्म और पाण्डवों की सेना के सेनानायक हुए वीर धृष्टद्युम्न। कृष्ण अर्जुन के सारथी बने। परस्पर बन्धुओं में तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया। भाई से भाई, गुरु से शिष्य, मित्र से मित्र और बूढ़े से बालक भिड गये। उनके बीच में अब पुराना भाव शेष न रहा, एक पक्षवाले लोगों को दूसरे पक्षवालों ने शत्रु ही की दृष्टि और अपने अपने पक्ष की जय के लिये, समराग्नि में अपने स्वाहा कर दिये।

भीमसेन ने दुर्योधन के दुःशासनादि भाइयों को मार डाला। दुःशासन की भुजा उखाड़ कर उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करली। अन्त में उन्होंने दुर्योधन की जङ्घा में गदा मार कर गिरा दिया। गदायुद्ध के प्रवीण लोगों ने भीम के इस कृत्य की वारम्वार निन्दा की, पर युद्ध के दिनों में ऐसी निन्दा और स्तुति की कौन परवा करता है?

कौरवों की ओर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा केवल तीन वीर शेष रहे। पाण्डवों की ओर पाँचों पाण्डव श्रीकृष्ण, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, धृष्टद्युम्न और कुछ सेना रह गई। पर अभी और भी स्वाहा होना बदा था। रणचण्डी को उतनी आहुति से तृप्ति न हुई थी। इससे विधि ने और ही करतब रचा।

महावीर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने गदायुद्ध में दुर्योधन की जङ्घा टूटने का सवाद सुना, तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे ढूँढते ढूँढते दुर्योधन के पास दौड़े आये। दुर्योधन की दशा उस समय शोचनीय थी। जो किसी समय राजराजेश्वर था, वह आज भिखारी से भी बदतर था। उसके सारे शरीर पर धूल लिपट रही थी और क्रोध के कारण उसकी भौंहें टेढ़ी हो रही थीं। उस समय अश्वत्थामा ने कहा --

"हे राजेश्वर! तुम्हें इस तरह धूल में लिपटते हुए देखकर हमें बड़ा दुःख हो रहा है। सचमुच ही यह संसार अनित्य है और माया यहाँ के जीवधारियों को कठपुतली की तरह नचा रही है। हाय! हाय!! कहाँ तुम्हारा वह प्रबल प्रताप और कहाँ तुम्हारी यह दशा! हा! शोक!!"

अश्वत्थामा को इस प्रकार विलाप करते हुए सुनकर दुर्योधन ने आँखें पोंछी और कहा —

"हे वीरवर ! सचमुच ही मनुष्य का जीवन क्षणभङ्गुर है। जो पैदा हुआ है, वह अवश्य ही एक दिन मरेगा। सम्पत्ति और विपत्ति दोनों मनुष्यों के भोग के लिये हैं। हमें सन्तोष इसी से है कि, हमने क्षत्रिय होकर युद्ध से मुँह नहीं मोडा और अन्तिम समय में भी हम युद्ध के मैदान में मारे गये, पर दुःख इस बात का है कि, पाण्डवों और उनके साथियों ने छल से ही भीष्म को शरशय्या दिलाई, छल ही से गुरु द्रोण को मारा, छल ही से कर्ण को गिराया और छल ही से, अधर्म करके, गदायुद्ध के नियमों का उल्लङ्घन कर पापी भीम ने मेरी जाँघ पर गदा मारी। गदायुद्ध में नाभि से नीचे गदा मारना मना है, पर उन्होंने इसकी परवा न की। खैर, जो कुछ भाग्य में बदा था, वह हुआ। आप लोगों ने हमारी बडी सहायता की, हमारी जीत के लिये जी होम करके लड़े, पर जीतना हमारे भाग्य में न बदा था। ईश्वर आप का कल्याण करे। आप हमारे लिये शोच न कीजिये, हमें विश्वास है कि, हमें स्वर्ग मिलेगा।"

दुर्योधन की ये बातें सुनकर अश्वत्थामा को अपने पिता द्रोण के मारे जाने की बात याद हो आई। छल करके ही उनसे कहा गया था कि, अश्वत्थामा मारे गये, और पुत्रशोक के कारण जब उन्होंने अपनी इच्छा से प्राण त्याग कर दिये थे, तब धृष्टद्युम्न ने शिर के बाल पकड कर तलवार से उनका शिर काटा था।

अश्वत्थामा का यह विश्वास दृढ हो गया कि, सचमुच पाण्डवों ने पद पद पर चालबाजी और अधर्म किया है। यह सोचकर अश्वत्थामा का क्रोध उबल उठा। उन्होंने कहा —

"महाराज! पाण्डव लोग सचमुच बड़े नीच हैं। खैर, आज तक हमने जो कुछ पुण्य-कार्य किये हैं, उनकी शपथ खाकर कहते हैं कि, उनके अन्यायों का हम आज अवश्य बदला ले लेंगे। आप हमें आज्ञा दीजिये।"

तब राजा दुर्योधन ने जल मँगाया और कृपाचार्य के सामने अश्वत्थामा के मस्तक पर तिलक लगाकर, उसे सेनापति के पद पर अभिषिक्त कर दिया।

अश्वत्थामा अपने पिता के ही सदृश पराक्रमी, रणकुशल और अस्त्र शस्त्रों का ज्ञाता था। उसने दुर्योधन को गले लगाया और अपने भीषण सिंहनाद से दशों दिशाओं को कँपा दिया।

इसके बाद कृपाचार्य और कृतवर्मा को साथ लेकर अश्वत्थामा वहाँ से चल दिया। एक बरगद के वृक्ष के नीचे रथ खोलकर, रात भर वहीं पर उसने विश्राम करने की ठानी। कृपाचार्य और कृतवर्मा तो सो गये, पर अश्वत्थामा के हृदय में बदला लेने की तीव्र आग जल रही थी और दुर्योधन के सामने उसने शपथ भी खाई थी, इससे उसे नींद न आई। वह पाण्डवों से बदला लेने का उपाय सोचने लगा।

सामने ही एक पेड़ पर बहुत से कौवे रहते थे। वे सुख से सो रहे थे। इतने में एक पीला पीला उल्लू वहाँ आया।

चुपके-चुपके शनै-शनै कौवों का नाश आरम्भ दिया। किसी के पङ्ख उखाड डाले, किसी का सिर काट लिया, किसी के पैर तोड दिये। इसी तरह सारे कौवों को उस उल्लू ने मार डाला।

चाँदनी में वीर अश्वत्थामा ने यह सब तमाशा भली भाँति देखा। यह देखकर उनके मनमें नीति के भाव पैदा होने लगे। उन्होंने सोचा —

"पाण्डवों ने पद-पद पर हमारे साथ अन्याय और नीचता की है। वे लोग सशस्त्र और जीत के नशे में मत्त हैं। प्रत्यक्ष मुकाबला करके हमारा उनसे जीतेना कठिन है। हम दुर्योधन के सामने प्रतिज्ञा भी कर चुके हैं, वह भी हमें पूरी करनी है। इससे अच्छा तो यह है कि, उन्होंने अधर्म युद्ध करके हमारे पिता को मारा और दुर्योधन की जङ्घा तोडी है, हम भी अधर्म युद्ध करके उनसे बदला लें। जैसे को तैसा मिलना ही चाहिये। आज सोते हुए ही में, उन पर हम चुपचाप आक्रमण करें।"

अश्वत्थामा ने कृपाचार्य को जगाकर, उनसे यह सब हाल कहा, पर कृपाचार्य इधर उधर की कहने और धर्म बघारने लगे। उन्होंने कहा —

"ऐसा करना अधर्म है। तुमने आज तक कोई अधर्म नहीं किया, यदि आज ऐसा करोगे तो तुम्हारा यह काम सफेद कपडे पर खून के धब्बे की तरह सब को खटकेगा।"

पर अश्वत्थामा ने एक भी न मानी। उसने कहा —

"मामा! पिता का बदला लेने की आग हमारे हृदय में जल

रही है। विना धृष्टद्युम्न और पाञ्चाल लोगों का नाश किये, हमें चैन नहीं। अधर्मी के साथ अधर्म करना भी न्याय सङ्गत है। हमें ऐसा करने से मत रोको। शिविर के भीतर जाकर हम सब का विनाश करेंगे। तुम केवल यही करना कि, शिविर से वाहर निकल कर कोई भाग न जाने पावे।'

कृपाचार्य, अश्वत्थामा के मामा और द्रोण के साले थे; इसमे अश्वत्थामा के वहुत कहने पर वे राज़ी हो गये।

फिर क्या था? रथ पर सवार होकर अश्वत्थामा ने पाण्डवों के शिविर की ओर प्रस्थान कर दिया, कृपाचार्य और कृतवर्मा भी उसके पीछे पीछे गये।

शिविर के पास पहुँचकर अश्वत्थामा ने मुख्य द्वार छोड दिया। वहाँ से थोडी दूर हटकर उन्होंने कृपाचार्य और कृतवर्मा को खडा कर दिया। इसके वाद सन्तरी लोगों की नजर वचाकर वे एक और ही रास्ते से शिविर के भीतर घुसे।

भीतर पहुँचकर उन्होंने पहले धृष्टद्युम्न को और फिर द्रोपदी के पाचों पुत्रों को मार डाला। पीछे वे और वीरों का सहार करने लगे। कुछ लोगों ने उठकर अपने-अपने हथियार भी सम्हाले, पर अश्वत्थामा के सामने उनकी एक न चली। वीर अश्वत्थामा ने रुद्रास्त्र से हजारों वीर वात की वात में मार डाले।

जो लोग शिविर से भागे, वे वाहर कृपाचार्य और कृतवर्मा के वाणों से न वचे।

इधर चारों ओर भीषण कोलाहल होने से, डरके मारे हाथियों

और घोड़ों ने अपने-अपने बन्धन तोड डाले और सारे शिविर में बेतहाशा दौड़ने लगे। बहुत से वीर उनके पैरोंके नीचे पड़कर कुचल गये। इसी बीच में कृतवर्मा ने शिविर में जगह-जगह आग लगा दी। सारा शिविर धाँय-धाँय जलने लगा। उस समय कृपाचार्य और कृतवर्मा भी अश्वत्थामा के साथ आ मिले। फल यह हुआ कि, इन तीनों वीरों ने वहाँ एक योद्धा भी शेष न रक्खा।

संयोग की बात कि, कृष्ण और अर्जुन शिविर में न थे। वे, सात्यकि और अन्य पाण्डवों के साथ नदी के किनारे युद्ध की समाप्ति का मङ्गलकार्य करके वहीं विश्राम कर रहे थे। कृष्ण के कौशल और अर्जुन के भुजबल की सहायता न पाने से—उनके द्वारा रक्षित न होने से—बची हुई सेना का नाश हो गया और द्रौपदी के पुत्र भी मारे गये।

अश्वत्थामा को सफलता हो जाने पर बड़ी प्रसन्नता हुई। कृतवर्मा और कृपाचार्य को साथ ले लौटकर उसने यह संवाद दुर्योधन को सुनाया। दुर्योधन के शरीर में उस समय तक प्राण थे, उन्होंने सुनकर प्रसन्नता से कहा —

"हे वीर! महाबली भीष्म, धनुर्धर कर्ण और तुम्हारे पिता से जो काम नहीं हुआ, वह भोजराज कृतवर्मा और कृपाचार्य की सहायता से तुमने कर दिखाया। महानीच पाञ्चाल लोगों के मारे जाने का संवाद सुनकर हम आज अपने को अत्यन्त ही भाग्यशाली समझते हैं।"

यह कहकर दुर्योधन ने आँखें बन्द कर ली। उनकी जीवन-

लीला समाप्त हो गयी। अश्वत्थामा आदि वीर भी कहाँ से चल दिये।

शिविर में और वीर तो मार डाले गये थे, पर धृष्टद्युम्न का एक सारथी कृपाचार्य और कृतवर्मा की निगाह से बच गया था। उसने प्रातःकाल होते ही राजा युधिष्ठिर और उनके भाइयों को सन्देशा दिया कि, अश्वत्थामा ने शिविर में घुसकर वीर धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों एवं अन्य वीरों को मार डाला। जो भागे, वे बाहर कृपाचार्य और कृतवर्मा द्वारा यमधाम को पहुँचाये गये। अब शिविर में कोई वीर शेष नहीं रहा।

यह संवाद सुनकर युधिष्ठिर को बड़ा दुःख हुआ। उन्हें यह जानना भी शेष न रहा कि कौरवों की ओर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा केवल तीन वीर और पाण्डवों की ओर पाँचों पाण्डव, कृष्ण ओर सात्यकि को छोड़ अट्ठारह अक्षौहिणी सेना का संहार हुआ है।

पुत्र शोक से व्याकुल होकर राजा युधिष्ठिर रोने लगे। पर कृष्ण ने उन्हें बहुत समझाया और शान्त किया।

शान्त होकर राजा युधिष्ठिर ने नकुल को उपलव्य नगर से द्रौपदी और अन्य पाञ्चाल रमणियों को लाने के लिये भेजा। नकुल आज्ञा पाकर एक शीघ्रगामी रथ पर सवार होकर गये और सब को लिवा लाये।

शिविर के पास पहुँच, अपने पुत्रों का अत्यन्त ही अप्रिय मृत्यु संवाद सुनकर द्रौपदी विलख विलखकर रोने लगी। धर्म-

राज के पास आकर वह पृथ्वी पर अचेत होकर गिर पड़ी। सच है, पुत्रशोक से बढ़कर इस संसार में और कोई शोक नहीं।

भीमसेन, द्रौपदी की यह दशा देखकर उसे सान्त्वना देने और समझाने लगे। जब उसे कुछ होश आया, तब उसने सब के सामने धर्मराज से कहा —

"महाराज! पुत्रों को क्षात्रधर्मानुसार काल कवल में निक्षेप करके आप किस सुख से राज्यभोग करेंगे? वीर पुत्रों की मृत्यु का संवाद सुनकर, इस शिविर में आप कैसे सुस्थिर बैठे हैं? पापी, नीच अश्वत्थामा ने सोते हुए मेरे पुत्रों और भाइयों को मारा है, यह सुनकर मेरा हृदय शोक की आग में जल रहा है। जब तक आप उस पामर, नृशंस हत्यारे द्रोण-पुत्र को न मार डालेंगे, तब तक मैं अन्न जल न ग्रहण करूँगी।"

तब राजा युधिष्ठिर द्रौपदी को समझाकर कहने लगे —

"हे याज्ञसेनि! तुम्हें क्या समझावें? तुम वीर क्षत्राणी हो। तुम्हारे पुत्र और भाई युद्ध में मारे गये हैं, उनके लिये तुम्हें शोक न करना चाहिये। क्षत्राणियाँ इसी लिये पुत्र पैदा करती हैं, कि वे रणाङ्गण में वीरों को मारें, और वीरों के हाथों मर जायें। द्रोण पुत्र अश्वत्थामा यहाँ से बहुत दूर दुर्गम जङ्गलों में भाग गया है, उसकी मृत्यु का हाल ही तुम्हें कैसे विश्वसनीय होगा?"

तब द्रौपदी ने कहा —

"महाराज! मैंने सुना है कि, अश्वत्थामा के मस्तक पर एक सहजमणि है। यदि उस पापात्मा को गिराकर आप वह मणि

उससे छीन लावें और उसे अपने मस्तक पर धारण करें, तो किसी न किसी तरह धीरज धरकर मैं जीवित रह सकूँगी।"

यह कहकर चारुदर्शना द्रौपदी ने भीमसेन से कहा —

"हे नाथ! क्षात्रधर्म के अनुसार आप को मेरी रक्षा करनी चाहिये। सुरराज ने जिस तरह शम्बर को मारा था, उसी तरह आप पापात्मा अश्वत्थामा का सहार कीजिये। इस ससार में आप के बराबर पराक्रमशाली और कौन है? आपने बड़े बड़े काम किये हैं, हिडिम्ब और कीचक सरीखे पराक्रमी दुष्टों को आप ही ने मारा है। आप ने सर्वैव ही मेरी प्रार्थना स्वीकार की है, इससे इस बार भी आप ही से कहती हूँ कि, दुष्टात्मा अश्वत्थामा को मार कर मेरा दुःख दूर कीजिये।"

यह कहकर द्रौपदी विलाप करती हुई आहें भरने लगी। उसका दुःख भीमसेन से न देखा गया। वे नकुल को सारथी बनाकर रथ पर सवार हो गये और अश्वत्थामा का पता लगाने के लिये दौड़ पड़े। जिधर जिधर अश्वत्थामा का रथ गया था, उसके पहियों के निशान बने थे। उन्हीं निशानों के आधार पर भीमसेन ने नकुल को रथ चलाने की आज्ञा दी।

जब कृष्ण को मालूम हुआ कि, भीमसेन अकेले उसका पीछा करने गये हैं, तब उन्हों ने युधिष्ठिर से कहा —

"महाराज! अश्वत्थामा बड़ा ही चञ्चल है। एक बार वह द्वारका गया था। वहाँ पर उसने गुरु द्रोण का बतलाया हुआ ब्रह्मशिरस्-अस्त्र हमें देने की इच्छा कर हमारा चक्र माँगा।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद ।

(उपसंहार)

द्रौपदी [illegible]

इसके बाद पाण्डवों ने सब का यथोचित मृतक-कर्म किया। साम और ऋग्वेद की ध्वनि तथा स्त्रियों के रोने से दशों दिशाएँ गूँज उठीं।

उस समय अपने सम्बन्धियों और मित्रों की याद करके राजा युधिष्ठिर दुःखित हृदय से विलाप करने लगे। उन्होंने सब से कहा —

"हाय! राज्य के लोभ से पागल होकर हमने अपने इष्ट-मित्रों और सम्बन्धियों का नाश कराया। हम बड़े ही मूढ़ हैं। हाय! न मालूम कितने राजकुमारों को हमारे लिये सांसारिक सुख छोड़ना और परलोकगमन करना पड़ा, हमारे दोष से ही उनकी स्त्रियाँ विधवा और उनकी माताएँ पुत्रहीना हो गयीं। इस पाप का प्रायश्चित्त तभी हो सकता है, जब हम सब कुछ दान करके तपस्या करने चले जायें। इससे अब हम तुम लोगों से विदा होकर वन को चले जायेंगे। हमें राज्यसुख न चाहिये।"

[illegible] की बात से उदास होकर भीमसेन, अर्जुन, नकुल

और सहदेव युधिष्ठिर को समझाने लगे, पर धर्मराज ने उनकी बातों का कुछ भी उत्तर न दिया।

तब धर्म का रहस्य जानने वाली द्रौपदी ने कहा —

"नाथ! तुम्हारे ये भाई चातक की तरह सूखे कण्ठ से बार-बार चिल्ला रहे हैं, पर तुम एक बार भी इनकी बातों पर ध्यान नहीं देते। तुम्हारा कर्त्तव्य है कि, अपने भाइयों का, जो बहुत दिनों से तुम्हारे साथ दुःख भोग रहे हैं, युक्तियुक्त और मीठी मीठी बातें कहकर, आनन्द बढाओ। द्वैतवन में तुमने कहा था कि, जब शत्रुओं की लाशों से पृथ्वी भर जायेगी और निकट युद्धरूपी यज्ञ की दक्षिणा हमें मिलेगी, तब हमारे वनवास का दुःख सुखदायक हो उठेगा। अब वह समय प्राप्त होने पर आप उदासीनता क्यों दिखलाते हैं? जिस पृथ्वी को बड़े-बड़े वीरों पर विजय प्राप्त करके आपने पाया है, उसका भोग करना ही उचित है। आप अपने भाइयों की ओर क्यों नहीं देखते? आप की दशा देखकर वे लोग व्याकुल हो उठे हैं। आर्या कुन्ती ने मुझ से कहा था कि, युधिष्ठिर असंख्य नृपतियों को नाश करके तुझे अत्यन्त सुखी करेंगे। आर्या की बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती, पर आप आज जिस तरह चुपचाप बैठे हैं, उसे देखकर तो यही जान पडता है कि, वह बात मिथ्या हो जायेगी। आप इस समय जैसी बातें करते हैं, कल्याण लाभ से वञ्चित मूढ व्यक्ति ही वैसी बातें करते हैं। मेरे पुत्र मारे गये हैं, पर आप के लिये मैं जीवित रहने की इच्छा करती हूँ और आप पृथ्वी छोडकर अगाध दुःखसागर में डूबने जा रहे हैं। हे महा-

सब भाइयों ने यह बात मान ली और युधिष्ठिर की महाप्रस्थान की इच्छा का अनुमोदन किया। तब धमराज ने अभिमन्यु के पुत्र, परीक्षित, को राज्यगद्दी दे दी और युयुत्सु को उनका अभिभावक (वली) नियत किया।

फिर उन्होंने सुभद्रा से कहा —

"भद्रे! तुम्हारा यह पौत्र, परीक्षित, कौरव राज्य का स्वामी हुआ। कृष्ण के पौत्र को हमने पहले ही इन्द्रप्रस्थ का राजा बना दिया है। इन दोनों बालकों की तुम देख-भाल करना।"

इसके बाद यज्ञ करके द्रौपदी के साथ पाण्डव लोग राजधानी से निकल पडे। सब के आगे धर्मराज, उनके पीछे क्रम से भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और सब के पीछे यशस्विनी द्रौपदी चली। एक कुत्ता भी उनके साथ हो लिया।

नगरनिवासी और प्रजागण उन्हें बहुत दूर तक पहुँचाने गये। उनको महाराज युधिष्ठिर ने लौटा दिया। सिर्फ वह कुत्ता न लौटा, वह साथ ही-साथ चलने लगा।

समुद्र के किनारे पहुँचकर, अर्जुन ने अपना गाण्डीव धनुष और कवच अग्निदेव के हवाले कर दिया। इसके बाद वे द्वारकापुरी पहुँचे। वहाँ से हिमालय पार करने के विचार से जल्दी जल्दी वे लोग उत्तर की ओर चलने लगे। मरुभूमि पार करने के बाद उन्हें सुमेरु की चोटी दिखाई देने लगी।

स्थान से पहाडी रास्ता धीरे-धीरे तङ्ग पडने लगा। द्रौपदी परिश्रम के कारण योगाभ्यास न साधन



पाण्डवों का महाप्रस्थान ।

'युधिष्ठिरादि पाँचों भाई ... यशस्विनी
एक कुत्ता भी उनके स।